कृतज्ञता-प्रकाश

स्वर्गीय श्रीमान बड़ोदा-नरेश महाराज सयाजीराव गायक-
ड़ महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर
ो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी,
सी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ-साहित्य-माला" के
काशन का कार्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुन्दर
ौर मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रन्थन किया जा रहा है उनकी सुरभि
: समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस माला'
: द्वारा हिन्दी-साहित्य की जो श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य
ेय स्वर्गीय श्रीमान बड़ौदा-नरेश महोदय को है। उनका यह
ह्न्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिये अनुकर-
ीय है।

निवेदक-मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग

दो शब्द

हिन्दी-साहित्य में प्राचीन काव्यों के कई संग्रह-ग्रन्थ हैं; किन्तु अभी तक ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसमें केवल वीर-रस के प्रतिनिधि कवियों की श्रेष्ठ कविताओं का संग्रह हो और उन पर आलोचनात्मक तथा विवेचनात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला गया हो। प्राचीन साहित्य में भक्ति और शृङ्गार की रचनाओं के साथ ही वीरकाव्य का एक अलग महत्व है। समय के प्रभाव से हिन्दी की विभिन्न परम्पराओं में परिवर्तन होता गया और उनका स्थान नयी परम्पराएँ ग्रहण करती गईं। किन्तु वीर-काव्य की परम्परा आदिकाल से वर्तमान काल तक किसी न किसी रूप में अपना एक स्थायी महत्व किस प्रकार ग्रहण किये रही यह इस संग्रह-ग्रन्थ से स्पष्ट विदित होता है। प्राचीन काव्य के अध्ययन के लिए अब यह आवश्यक है कि तत्कालीन प्रचलित परम्पराओं के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर खोजपूर्ण तथा आलोचनात्मक प्रकाश डाला जाय, जिससे हिन्दी के साहित्यिक विद्यार्थी और पाठक अपना एक मत स्थिर करके विस्तृत दृष्टिकोण से उस पर अध्ययन तथा खोज-पूर्ण कार्य कर सकें। इसी दृष्टिकोण को सामने रख कर इस संग्रह ग्रंथ का निर्माण किया गया है।

इस ग्रन्थ में आदिकाल से रीतिकाल के अन्तिम समय तक के वीररस के बारह प्रतिनिधि कवियों के जीवन तथा उनके काव्यों पर आलोचनात्मक प्रकाश डाला गया है, साथ ही उनकी चुनी हुई कविताएँ

भी संग्रहीत क गई हैं। प्रारम्भ में वीररस के साहित्य पर विस्तृत रूप से अध्ययन-पूर्ण आलोचना लिखी गई है जिससे पिछले एक हज़ार वर्ष से प्रचलित वीर-काव्यों का गति-विधि का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है। इसके सम्पादक श्रीभगीरथप्रसाद दीक्षित 'साहित्य-रत्न' और श्री उदयनारायण तिवारी एम० ए०, 'साहित्य-रत्न' हिन्दी के माने हुए विद्वान और आलोचक हैं। आशा है, यह ग्रन्थ हिन्दी के उच्च श्रेणी के पाठकों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा और उनमें साहित्य के भिन्न-भिन्न पहलुओं के अध्ययन और मनन की ओर सुरुचि उत्पन्न होगा। सम्मेलन के लोकप्रिय और जागरूक परीक्षा-मन्त्री पंडित दयाशंकर दुबे की प्रेरणा से इस सुन्दर ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है। आशा है, हिन्दी-प्रेमी इस ग्रन्थ को अपनाकर भविष्य में विद्वान् लेखकों को और भी अधिक अध्ययन-पूर्ण साहित्य के सृजन करने का अवसर देंगे।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग
१ सितम्बर १९४०

विनीत—
ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
साहित्य-मंत्री

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
भूमिका	१ से १०३
चन्द बरदाई	१
विद्यापति	४५
केशवदास	७१
मान	९८
भूषण	१२२
गोरेलाल	१५८
श्रीधर	१७८
सदानन्द मिश्र	२०३
सूदन	२२७
जोधराज	२५६
पद्माकर	२८६
चन्द्रशेखर	३१६
टिप्पणियाँ	
नामानुक्रमणिका	

भूमिका

मनुष्य को जन्मजात जो अनेक शक्तियाँ मिली हैं, उनमें एक अभिव्यञ्जना की भी शक्ति है। जिस समय भाषा की भी उत्पत्ति नहीं हुई थी और सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र में मनुष्य तथा वन्य-जन्तुओं में केवल नाम मात्र का ही भेद था, उस समय भी वह अपने सुःख दुख की अनुभूति की अभिव्यक्ति भावभङ्गी तथा इंगित द्वारा करता था। आगे चलकर मनुष्य ने संस्कृति के क्षेत्र में उन्नति की। इस उन्नति के साथ साथ उसकी अनुभूति की परिधि में भी अभिवृद्धि हुई और जब मनुष्य उन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में निरत हुआ तो अनेक कलाओं की उत्पत्ति हुई।

काव्य का स्वरूप

कहीं अपनी कोमल भावनाओं को कठोर पाषाण पर अङ्कित करके उसने 'मूर्तिकला' को अस्तित्व प्रदान किया, तो कहीं अपनी रागात्मिका-वृत्ति का अभिव्यञ्जन भाषा द्वारा 'काव्य-कला' के रूप में करके वह हर्षातिरेक से उत्फुल्ल हो उठा।

भौतिक उपकरणों की अप्रधानता तथा भावव्यञ्जना के आधिक्य के कारण ही, आलोचकों ने 'काव्य-कला' को श्रेष्ठतम स्थान प्रदान किया। अब प्रश्न यह उठता है कि 'काव्य' की परिभाषा तथा परिधि क्या है। जहाँ तक परिभाषा का सम्बन्ध है, आलोचकों में गहरा मतभेद है। एक पाश्चात्य आलोचक ने तो 'कला' 'सौन्दर्य' तथा 'काव्य' की परिभाषा देते समय कदाचित

रुष्ट होकर यहाँ तक कह डाला है कि कला, कला है, सौन्दर्य, सौन्दय और कविता, कविता। एक दूसरे समीक्षक ने परिभाषा के वाग्जाल से बचने के लिए केवल कतिपय प्रसिद्ध काव्यों की ओर इङ्गित भर कर दिया है। किन्तु परिभाषा की इस कठिनाई के होते हुए भी यह निर्विवाद है कि कविता' साहित्य का एक प्रधान अङ्ग है और साहित्य है जीवन। इसी कारण एक पाश्चात्य आलोचक ने कविता को जीवन की व्याख्या कहा है।

पौर्वात्य आचार्यों ने काव्य की परिभाषा मे 'रीति' 'वक्रोक्ति' 'अलङ्कार' तथा रस आदि का उल्लेख किया है। 'रसगङ्गाधर' के प्रणेता पडितराज जगन्नाथ ने 'रमणीय अर्थ प्रति पादक शब्द'* को ही काव्य माना है। आप के अनुसार 'लोकोत्तर आह्लाद जनक ज्ञान की गोचरता ही रमणीयता है' और अनुभव से ज्ञेय आह्लाद गत चमत्कार ही लोकोत्तरत्व है। साहित्य दर्पणकार की परिभाषा 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है' का खडन करते हुए, पडितराज ने अपनी उपर्युक्त परिभाषा दी है, किन्तु स्पष्टता की अपेक्षा उसमे जटिलता ही अधिक आ गई है।

वास्तव मे दर्पणकार की काव्य की परिभाषा साहित्य शास्त्र क विद्यार्थियों के लिए अपेक्षाकृत अधिक सरल तथा सुबोध है। इस परिभाषा को दर्पणकार ने निम्नलिखित रूपक की सहायता से स्पष्ट किया है —

"शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं। रसादिक आत्मा हैं। ओज, माधुर्य तथा प्रसाद गुण, वीरता तथा कोमलता की भाँति हैं। काव्य म कर्णकटुत्वादि दोष कानेपन और बहरेपन की भाँति तथा वैदर्भी, पाँचाली आदि रीतियाँ, अवयवों की गठन के

*रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द काव्यम्।

सदृश है। उपमादिक अलङ्कार कानों में पहने जाने वाले कुंडलादि के समान हैं।*

उपर्युक्त रूपक को सामने रखकर विश्वनाथ ने मम्मट की परिभाषा, "दोषरहित गुणयुक्त तथा अलंकारों से विभूषित शब्द तथा अर्थ को काव्य कहते हैं, यदि अलङ्कार कहीं स्पष्ट न हो तो भी कोई हानि नहीं,"† का खण्डन किया है। आप का तर्क यह है कि—जिस प्रकार मनुष्य-शरीर आत्मा के अभाव में निर्जीव है उसी प्रकार शब्द तथा अर्थ, अलङ्कारों से युक्त तथा दोष से रहित होने पर भी रस के अभाव में, काव्य की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकते।

दर्पणकार ने वामन की परिभाषा "रीति ही काव्य की आत्मा है"‡ का भी खण्डन किया है। आप तर्क करते हैं कि जब रीति शरीर के अवयवों के संगठन के समान है तो वह भला काव्य की आत्मा कैसे होगी?

आगे चलकर दर्पणकार ने 'ध्वनिकार' तथा 'वक्रोक्तिकार' की परिभाषाओं का भी क्रमशः खण्डन किया है। ध्वनिकार के अनुसार "काव्य की आत्मा ध्वनि"§ तथा वक्रोक्तिकार के अनुसार "वक्रोक्ति ही काव्य का जीवन है।"* विश्वनाथ का तर्क है कि

---

* काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्चात्मा, गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयवसंस्थानविशेषवत्, अलंकाराः कटककुण्डलादिवत्।"

† तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि —मम्मट

‡ रीतिरात्मा काव्यस्य —वामन

§ काव्यस्यात्माध्वनिः।

* वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्।

ध्वनि तथा वक्रोक्ति काव्य की आत्मा नहीं हो सकते, क्योंकि ये दोनों अलङ्कार कुण्डलादि के सदृश काव्य में गौण हैं।

उपर्युक्त तर्क-वितर्क तथा खण्डन के पश्चात् अन्त में विश्वनाथ अपनी परिभाषा देते हैं। आपके अनुसार 'रसात्मक-वाक्य ही काव्य है'*। वास्तव में काव्य में रस ही प्रधान अथवा सारभूत वस्तु है। अतएव रस को ही काव्य की आत्मा मानना उचित ा है।

अब काव्य में रस क्या वस्तु है, इसे भी स्पष्टतया जान लेने ी आवश्यकता है। हमारे जीवन में अनेक ऐसे अवसर उपस्थित ोते हैं जब हम किसी विशेष रचना को पढ़कर आनन्द से झूमने लगते हैं। वास्तव में यह काव्यानन्द ही रस है।

राम का सर्व प्रथम सैद्धान्तिक निरूपण आचार्य भरत ने अपने नाटय-शास्त्र में किया है। आपके कथनुसार "रस की निष्पत्ति विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से होती है"†। काव्यानन्द आस्वाद्य होने के कारण-अस्वाद्यत्वात् रसः—रस नाम से कहा जाता है। यदि काव्य में आनन्, अर्थात् रस न हो तो वह काव्य ही न कहा जायगा। अब यह देखना यह है कि रस का स्वरूप क्या है।

ऊपर इस बात का उल्लेख हो चुका है कि काव्यानन्द ही है। वास्तव में आनन्द एक प्रकार की भावना है। मनुष्य के सर हृदय में सदैव अनेक प्रकार के भाव विद्यमान रहते हैं। इ न में

*वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।

† विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगात् रस निष्पत्तिः।

— भरत

जो भाव प्रबल होते हैं उन्हीं का नाम स्थायीभाव है। इस प्रकार के स्थायी भाव भी मनुष्य के हृदय में अनेक होते हैं। उदाहरण के लिए उत्साह, रति, शोक आदि। इन में से जब कोई भाव अपने प्राबल्य के कारण मनुष्य पर पूर्ण प्रभाव उत्पन्न करता है, तो उसकी संज्ञा रस हो जाती है। उन भावों को उद्बुद्ध करने के लिए विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों की सहायता अपेक्षित होती है। इसी बात को साहित्य-दर्पण-कार ने निम्न-लिखित शब्दों में व्यक्त किया है :—

"सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से व्यक्त हुआ रत्यादि स्थायी भाव ही रस रूप में परिणत हो जाता है*।"

ऊपर कहा जा चुका है कि विभावादिकों से रस की अभिव्यक्ति होती है। इस वाक्य-खण्ड से साहित्य शास्त्र के प्रायः सभी विद्यार्थी भलीभाँति परिचित होते हैं, किन्तु 'अभिव्यक्ति' शब्द को पूर्णतया न समझने के कारण वे कभी कभी उलझन में भी पड़ जाते हैं। प्रायः मिथ्या धारणा के कारण लोग समझते हैं कि जिस प्रकार अन्धकार में रखा हुआ घट दीपक से अभिव्यक्त (प्रकाशित) होता है, उस प्रकार विभावादिकों द्वारा रस भी अभिव्यक्त होता है। इस सादृश्य में कठिनाई यह है कि दीपक तथा घट दोनों की स्वतन्त्र सत्ता है; इसी कारण से दीपक के अभाव में भी घट स्थित रहता है। किन्तु रस के सम्बन्ध में यह बात नहीं।

*विभावेनानुभावेन व्यक्तः सचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम् ।।१।। सा. द. परि ३

वास्तव में न तो स्थायीभाव ही रस है और न घट और दीपक की भाँति विभावादिकों से पृथक् उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि विभावादिकों से परिपुष्ट स्थायीभाव ही रस रूप में परिणत हो जाता है। एक दूसरे उदाहरण द्वारा इस सम्बन्ध में यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार मट्ठे के संयोग से दूध, दही के रूप में परिवर्तित हो जाता है, उसी प्रकार सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित स्थायीभाव ही विभावादिकों से उद्‌बुद्ध होकर रस रूप में परिणत हो जाता है।*

रसानुभूति

अब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य को रस की अनुभूति किस प्रकार (कैसी) होती है? साहित्य-दर्पणकार ने रस का स्वरूप बतलाते हुए उसे, 'अखण्ड, अद्वितीय, †स्वयंप्रकाश-स्वरूप, आनन्दमय और चिन्मय (चमत्कारमय) कहा है। वास्तव में रस के साक्षात्कार के समय अन्य विषयों का मनको स्पर्श तक नहीं होता। इसी कारण इसे 'ब्रह्मास्वादसहोदर' भी कहा गया है। जिस प्रकार ब्रह्मास्वाद (समाधि) के समय योगियों को ब्रह्मानन्द के अतिरिक्त अन्य किसी विषय का ज्ञान नहीं रहता उसी प्रकार रसा-स्वाद के समय में मनुष्य अन्य सभी भावनाओं से मुक्त रहता है। इतना ही नहीं, जिन विभावादिकों के कारण उसके हृदय में स्थित स्थायीभाव रस में परिणत

* व्यक्तो दध्यादिन्यायेन रूपान्तरपरिणतो व्यक्तीकृत एव रसः। न तु दीपेन घट इव पूर्वसिद्धो व्यज्यते। सा० द० परि० ३

† सत्त्वोद्रेकादखंडस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः। सा० द० परि० ३।

होता है, उनका भी अनुभव उसे नहीं होता। वह यह नहीं बतला सकता है कि इस रस के अनुभव में कितना अंश विभाव का है, कितना अनुभाव का तथा कितना व्यभिचारी भाव का हाँ, इतना अवश्य है कि यदि किसी रस में किन्हीं भावों का अंश अधिक है तो वह कह सकेगा कि इस रस में इस भाव का अंश अधिक है; *किन्तु यह भी रसानुभव के समय नहीं।* वास्तव में जब रसानुभव के पश्चात् वह उस अनुभव की विवेचना करने बैठेगा तभी इन सब बातों का ज्ञान उसे हो सकेगा।

यहाँ "रस का अनुभव" इस वाक्यखण्ड का विश्लेषण भी आवश्यक है। अनुभव पूर्वसिद्ध वस्तु का ही होता है। अनुभव शब्द का अर्थ ही है 'पीछे से उत्पन्न'। किन्तु रस के सम्बन्ध में 'अनुभव' शब्द का अर्थ यह नहीं होगा, क्योंकि वह पूर्वसिद्ध नहीं है। यहाँ अनुभव से आस्वाद मात्र ही अभिप्रेत है।

रसानुभूति के सम्बन्ध में एक बात और जान लेनी आवश्यक है। बात यह है कि रस के अनुभव के समय मनुष्य का मन राजस और तामस भावों से मुक्त होकर सात्विक भावों में पूर्णतया लीन हो जाता है। इसी कारण इस अवस्था में मनुष्य अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है। कभी कभी इस सम्बन्ध में लोगों के मन में यह आशंका उठती है कि जब रस आनन्दमय है तो करुण, बीभत्स आदि रस नहीं कहे जायेंगे, क्योंकि ये तो दुःखमय होते हैं। इस शङ्का का समाधान करते हुए साहित्य-दर्पण-कार ने लिखा है कि करुण आदि रसों में भी परम आनन्द होता है किन्तु उसमें केवल सहृदयों

का अनुभव ही प्रमाण है।* तात्पर्य यह है कि करुण-रस में भी सहृदय आनन्द का ही अनुभव करते हैं। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य कारुणिक काव्यों को कभी भी न पढ़ता और न इस प्रकार के काव्यों तथा नाटकों की साहित्य में रचना ही होती।†

ऊपर कहा जा चुका है कि काव्यानन्द ही रस है और शृङ्गार तथा करुण रस से प्रसूत आनन्द में कोई भेद नहीं है। अब प्रश्न यह उठता है कि तब रस के आठ नव या दस‡ भेद का आधार क्या है? यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इस विभेद का आधार उपाधि का ही है। जिस प्रकार, कार्य-भेद के कारण, एक ही मनुष्य ब्राह्मण, गुरु, पुरोहित तथा शिष्य आदि अनेक रूपों में देखा जा सकता

रस के भेद

---

*करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्।
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्।४। परि० ३

†संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भवभूति ने "एको रसः करुण एव" लिखकर 'करुण रस' को ही प्रधान माना है। भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' में करुण रस ही प्रधान है। इसके अतिरिक्त ग्रीक तथा अंग्रेजी में भी अनेक दुःखान्त नाटकों की रचना हुई है।

‡रस नव हैं—शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त। कतिपय साहित्याचार्यों ने इन नव रसों के अतिरिक्त वात्सल्य तथा भक्ति आदि कुछ और भी रस माने हैं। किन्तु आचार्य मम्मट के अनुसार रसों की संख्या नव ही है और वात्सल्य तथा भक्ति को क्रमशः पुत्रादि विषयक रतिभाव में और देव-विषयक रति भाव के अन्तर्गत मानना चाहिए।

है, उसी प्रकार आनन्द स्वरूप एक ही रस विभावादिकों के विभिन्न होने के कारण आठ, नव अथवा दस प्रकार का होता है

इसी विषय पर अग्नि पुराण में भी कुछ विवेचन है। इसमें शृंगारादि रस निरूपण के अन्तर्गत केवल चार रस ही प्रधान माने गए हैं। वे हैं, क्रमशः शृङ्गार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स अग्निपुराण में रस की परिभाषा इस प्रकार की गई है :—

"अक्षर स्वरूप, परमसनातन, अजायमान व्यापक ब्रह्म को एक चैतन्य स्वरूप ईश्वर कहते हैं। उसका स्वाभाविक आनन्द जब कभी व्यक्त होता है तब वह चैतन्य-चमत्कार-स्वरूप अभिव्यञ्जना ही रस नाम से कही जाती है।*

इस पुराण में ब्रह्म के प्रथम विकार को अहंकार सज्ञा दी गई है। इसी अहंकार से अभिमान तथा अभिमान से 'रति' की उत्पत्ति होती है। व्यभिचारी आदि सामान्य भावों से परिपुष्ट होकर यह रति ही शृङ्गार रस में परिणत हो जाती है।†

*अक्षर परम ब्रह्म सनातनमजं विभुम्।
वेदान्तेषु वदन्त्येक चेतन्यं ज्योतिरीश्वरम्॥१॥
आनन्दः सहज स्तस्य व्यज्यते स कदाचन।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया॥२॥
अ० पु० अ० ३३९

†आद्यस्तस्य विकारो यः सोऽहकार इति स्मृतः।
ततोऽभिमानस्तत्रेद समाप्तं भुवनत्रयम्॥३॥
अभिमानाद्रतिः साच परिपोषमुपेयुषी।
व्यभिचार्यादिसामान्यात् शृङ्गार इति गीयते॥४॥
अ० पु०

अग्निपुराण के अनुसार 'राग' से 'शृङ्गार' तथा 'तैक्ष्ण्य' से 'रौद्र-रस' उत्पन्न होते हैं। 'अवष्टम्भ' (अनम्रता या दर्प) से वीर तथा 'संकोच' से वीभत्स रस की उत्पत्ति होती है। अग्निपुराण-कार इन्हीं प्रधान चार रसों से अन्य चार रसो की उत्पत्ति मानते हैं। आपके अनुसार शृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत तथा वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है।

अग्निपुराण-कार भरत द्वारा कथित वात्सल्य रस को नहीं मानते और-शान्त रस को मानते हुए भी उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे मौन हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अग्निपुराण-कार चार रसों को ही प्रधान मानते हैं। इन चार रसों मे एक वीर-रस भी है। यहाँ वीर-रस के विषय मे विस्तार के साथ लिखा जायगा क्योंकि यह संग्रह वीर-रस को दृष्टि मे रखते हुए ही तैयार किया गया है।

'वीर रस'

साहित्य-दर्पणकार ने 'उत्तम प्रकृतिर्वीरः' लक्षण देकर वीर-रस' को अन्य रसों से श्रेष्ट माना है। आप के अनुसार इसका स्थायीभाव उत्साह, देवता महेन्द्र और रंग सुवर्ण के सदृश होता है। इसमे जीतने योग्य रावणादि आलम्बन विभाव होते हैं और उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। युद्ध के सहायक (धनुष, सैन्य, आदि,) का अन्वेषणादि इसका अनुभाव होता है। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्चादि इसके सञ्चारी भाव हैं। यह दान, धर्म, युद्ध और दया के कारण

चार प्रकार का होता है, यथा (१) दानवीर (२) धर्मवीर (३) दयावीर और (४) युद्धवीर।*

अब इन चारो प्रकार के वीरो का आलम्बन तथा उद्दीपन सहित विवरण, नीचे दिया जाता है।

(१) दानवीर

स्थायीभाव—	त्याग मे उत्साह
आलम्बन —	दान योग्य-ब्राह्मणादिक
उद्दीपन—	ब्राह्मणादिकों की सत्यगुणादि परायणता।
अनुभाव—	सर्वस्व-परित्यागादि
संचारी—	हर्ष, गर्व, मति आदि

(२) धर्मवीर—

स्थायी भाव—	धर्म मे उत्साह
आलम्बन—	धर्म तथा धार्मिक ग्रन्थ आदि
उद्दीपन—	यज्ञ, अनुष्ठान आदि
अनुभाव—	धर्माचरण, धर्मार्थ कष्ट सहन आदि
संचारी—	धृति मति आदि

---

*उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साह स्थायिभावकः।
महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः।२३२।
आलम्बनविभावास्तु विजेतव्यादयो मताः।
विजेतव्यादिचेष्टाद्या स्तस्योद्दीपनरूपिणः।
अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः।२३३।
संचारिणस्तु धृति-मति-गर्वस्मृति-तर्क-रोमाञ्चाः।
स च दानधर्मयुद्धै र्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्।२३४।

सा० द० परि० ३

(३) युद्धवीर

स्थायीभाव—	युद्ध में उत्साह
आलम्बन—	शत्रु
उद्दीपन—	शत्रु-पराक्रम
अनुभाव—	गर्वोक्ति
संचारी—	गर्व, तर्क, धृति, स्मृति, रोमांच आदि

(४) दयावीर

स्थायी भाव—	दया में उत्साह
आलम्बन—	दया के पात्र
उद्दीपन—	दीन दशा
अनुभाव—	सान्त्वना के वाक्यादि
संचारी—	धृति, मति, रोमांचादि ।

ऊपर युद्धवीर का आलम्बन शत्रु बतलाया गया है, कि 'रौद्ररस' का भी आलम्बन शत्रु ही होता है। इस कारण दो की अभिन्नता में आशंका उठ सकती है। इस शंका के समाधा में साहित्य-दर्पणकार कहते हैं कि "नेत्र तथा मुख का ला होना रौद्र-रस में होता है, वीर-रस में नहीं क्योंकि वहाँ उत्सा ही स्थायी होता है। यही इन दोनों रसों का परस्पर भेद है"*।

रसों का परस्पर विरोध भी होता है। वीर-रस के शृङ्गा शान्त तथा भयानक-रस विरोधी हैं।

वीर-रस के भेदों के सम्बन्ध में आचार्यों का पारस्परिक म भेद भी है। साहित्य-दर्पण-कार 'दानवीर' 'धर्मवीर' 'युद्धवी तथा 'दयावीर' इन चारों को ही मानते हैं, इसका उल्लेख ऊप

* रक्तास्यनेत्रता चात्र भेदिनी युद्धवीरतः ।२३१। सा० द० परि०

हो चुका है। किन्तु अग्निपुराण मे 'वीररस' के केवल तीन ही भेद माने गए हैं। उसमें 'दयावीर' को स्थान नहीं है। रस गङ्गाधर कार पण्डितराज जगन्नाथ ने भी वीर रस के इन चार भेदों को स्वीकार किया है। आप के अनुसार वीर-रस के चार प्रकार होने का कारण चार प्रकार का उत्साह ही है। * आगे चलकर पण्डितराज ने यह भी कह दिया है "वास्तव मे शृङ्गार-रस की तरह वीर-रस के भी अनेक भेद हो सकते हैं। † यथा सत्यवीर पाण्डित्यवीर, बलवीर, क्षमावीर आदि। इस प्रकार के भेद का कारण भी स्पष्ट है। और वह है उत्साह की अनेकरूपता। सच तो यह है कि उत्साह के जितने भी स्वरूप विद्यमान हैं अथवा अनुमान किए जा सकते हैं, उतने ही वीररस के भी भेद होंगे।

इन भेदों का परस्पर मे अन्तर्भाव नहीं हो सकता। इसी बात का समर्थन करते हुए पण्डितराज कहते हैं कि यदि कोई यह कहे कि सत्य धर्म का ही एक अङ्ग है, अतएव सत्यवीर का अन्तर्भाव धर्मवीर में हो जायगा तो यह ठीक नहीं है, क्यो कि दान तथा दया भी तो धर्म के ही अङ्ग हैं। जब दान तथा दयावीर का अन्तर्भाव धर्मवीर में नहीं हो सकता तब सत्यवीर का अन्तर्भाव उसमे किस प्रकार होगा ?

यदि इस प्रकार सूक्ष्म विवेचन किया जाय, तो वीर-रस के अनन्त भेद हो जायँगे और वीर-रस की परिधि इतनी विस्तृत हो जायगी कि उस मे सभी रसो का समावेश हो जायगा। सम्भवत इसी विचार मे श्री वियोगी हरिजी ने अपनी

---

* दानदयायुद्धधर्मैस्तदुपाधिभिस्तस्य चतुर्विधत्वात्। रस गङ्गाधर

† वस्तुतस्तु बहवो वीररसस्य शृङ्गारस्येव प्रकारा निरूपयितुं शक्यन्ते। र० ग०

"वीर सतसई" मे अनेक वीरो के उदाहरण उपस्थित किए हैं। यथा शूरवीर, दयावीर, सत्यवीर, धर्मवीर, विरहवीर, युद्धवीर आदि । इन मे 'विरहवीर' ध्यान देने योग्य है । इस सम्बन्ध मे श्री वियोगी हरि जी लिखते हैं,—

"साहित्यिकों ने इस नाम का वीरों मे कोई विभाग नहीं किया है। पर वीर-रस का स्थायीभाव 'उत्साह' विशुद्ध विरह मे अच्छी मात्रा मे, पाया जाता है। इसीसे हमने अद्वितीय विरहिणी ब्रजांगनाओं को 'विरहवीर' नाम के नए वीर-विभाग मे स्थान देने की धृष्टता की है" ।*

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो ससार का कोई ऐसा कार्य नहीं है जो बिना उत्साह के सम्पन्न हो सके, और यह उत्साह ही है वीर-रस का स्थायीभाव । इस प्रकार यह 'उत्साह' बीजस्वरूप प्रायः सभी रसो मे विद्यमान रहेगा। किन्तु उससे वीर-रस के इस प्रकार अनेक भेद मानना उपयुक्त न होगा। अन्यथा वीर-रस में अनवस्था उत्पन्न हो जायगी। यहाँ भारतीय प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य मे वीर-रस के सम्बन्ध मे थोडा निवेदन करके अन्त मे हिन्दी साहित्य मे वीर रस का दिग्दर्शन कराते हुये, यह निबन्ध समाप्त किया जायगा।

भारतीय-साहित्य का मूल, सस्कृत साहित्य ही है। सुविधा के लिये संस्कृत साहित्य के इतिहास को भी वैदिक-काल तथा लौकिक सस्कृत-काल, इन दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है। इनमे प्रथम काल मे वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि की गणना होगी तो द्वितीय मे महाकाव्य, पुराण तथा नाटकादि का समावेश होगा।

सस्कृत साहित्य मे वीर रस

* वी० स० ०५८

· वेद मे आर्य ऋषियो ने स्थान स्थान पर देवताओ की स्तुति
ो है, शत्रु-नाश तथा अभ्युदय के लिए उनसे याचना की है।*
दिक आर्य पशुपालक, कृषक तथा युद्ध प्रिय थे, यही कारण है
क ऋचाओ में कही कही ओज तथा शक्ति का प्राबल्य है,†
कन्तु यह होने हुए भी इस युग की साहित्यिक प्रेरणा का मूल
ोत धर्म ही है।

लौकिक सस्कृत काल मे, महाकाव्यो के अन्तर्गत सर्वप्रथम
ामायण तथा महाभारत की गणना की जाती है। इनमें भी
ाल क्रमानुसार वाल्मीक-कृत रामायण ही का स्थान प्रथम है।
दाचित इसी को दृष्टि मे रखकर आचार्यो ने महाकाव्य का
क्षण निर्धारित किया है' किन्तु यदि वीर-रस की दृष्टि
रामायण का अध्ययन किया जाय तो उसमें युद्धो के इस
कार के अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन मिलते हैं कि असख्य राक्षसो
ा मारा जाना तथा दिग्गजो एव पृथ्वी का कम्पायमान होना
ा एक साधारण बात हो जाती है। वास्तव मे वीर रस के
पण के लिए आवश्यक हैं ओज-पूर्ण उक्तियां। किन्तु इस प्रकार

* वृद्दस्त इन्द्र वर्धत न
सचा सा वाँ सुमतिर्भूत्वस्मे।
अविष्ट धियो जिग्रत पुरधीर्
जजस्तमर्यो वनुषा मराती ॥

† यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
य युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमान बभूव
यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्र ॥

की नक्तियों का रामायण में अभाव है। नीचे के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी —

> तत्र कोपान्महेन्द्रस्य कुम्भकर्णो महाबल:।
> निकृष्यैरावताद्दन्तं जघानोरसि वासवम्॥ युo काo ६१-१७

उधर महाबली कुम्भकर्ण ने कुपित होकर और ऐरावत हाथी का दाँत उखाड़कर इन्द्र की छाती में मारा।

महाकवि कालिदास विश्व-साहित्य की विभूति हैं। उनकी उपमायें सर्वश्रेष्ठ हैं, किन्तु वीर रस की दृष्टि से इन्हें भी सफल कवि नहीं कहा जा सकता। कदाचित् कालिदास ने अपनी त्रुटियों का अनुभव करके ही वीररस सम्बन्धी रचना का प्रयास नहीं किया और जहाँ किया वहाँ पूर्णतया असफल भी हुए। रघुवंश में राम-ताड़का युद्ध के वर्णन में आप लिखते हैं —

> राम-मन्मथ शरेण ताडिता दु:सहेन हृदये निशाचरी।
> गन्धवद्रुधिर चन्दनोक्षिता जीवितेश-वसतिं जगाम सा।

राम रूपी कामदेव के दु:सह बाण से हृदय पर चोट खाई हुई वह राक्षसी, गन्धयुक्त रक्त रूपी चन्दन से निलेपित होकर, अपने प्राणनाथ यम के पास गई।

यद्यपि स्त्री हत्या के कारण ऊपर का उदाहरण वीर-रस का न होकर रसाभास का उदाहरण होगा किन्तु विरोधी शृंगार-रस की उपस्थिति के कारण यह रसाभास का निकृष्ट ही उदाहरण कहा जायगा।

अर्थ गौरव के कारण, महाकवि भारवि की रचना का संस्कृत साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान है। 'किरातार्जुनीय' में, द्रौपदी युधि-

-उर के उत्साह तथा क्रोध को जागृत करने के लिए अत्यन्त तीव्र शब्दों में कहती हैं:—

> अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम-
> श्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।
> विहाय लक्ष्मीपति-लक्ष्म-कार्मुकम्
> जटाधरस्सञ्जुहुधीह पावकम्।

यदि पराक्रम से रहित आप क्षमा को ही शाश्वत सुख का साधन समझते हैं, तो विष्णु के चिन्ह धनुष को छोड़कर और जटा बढ़ाकर अग्नि में आहुति दिया करें।

× × ×

प्रलय के समान भयङ्कर गाण्डीव धारी अर्जुन किरात से युद्ध करने जा रहे हैं। उनके बाणों के कारण दिशायें विक्षिप्त हो जाती हैं, सूर्य प्रभाहीन हो जाता है, वायु व्याकुल हो उठता है और पर्वतों के साथ पृथ्वी भी कम्पायमान हो जाती है। इस दृश्य का चित्रण भारवि निम्नलिखित श्लोक में करते हैं। इसे पढ़ते ही वीर अर्जुन का रूप आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है:—

> दिशः समूहन्निव विक्षिपन्निव,
> प्रभारहेराकुलयन्निवानिलम्।
> मुनिश्चचाल क्षय-काल-दारुणः,
> क्षितिं सशैलां चलयन्निवेषुभिः।

संस्कृत नाटकों में भी स्थान स्थान पर वीर रस का अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है। भवभूति कृत उत्तरराम-चरित में करुणरस

की ही प्रधानता है। किन्तु चतुर्थ अङ्क के अन्त में इस नाटक एक अत्यन्त ओजपूर्ण श्लोक मिलता है। लव अपने धनुष व आरोपित करके कहता है:—

प्रत्यंचा रूपी जिह्वा से वेष्टित, उन्नत कोटिरूप दाँतवान घनघोर घर्घर घोष करने वाला, ग्रसने मे आसक्त, हँसते हुए य के मुखयंत्र की जँभाई का अनुकरण करने वाला विकट उद वाला यह धनुष हो।

श्लोक निम्नलिखित है:—

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र-
मुद्भूरिघोरघनघर्घरघोष मेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र-
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम्।

ऊपर के श्लोक के पढ़ने मे ही यह बात स्पष्ट हो जाती है वि किसी भयङ्कर वस्तु का वर्णन किया जा रहा है। पाठक को एव ओर काल का विकराल मुख तो दूसरी ओर लव का विकट धनुष दिखलाई पड़ता है।

× × ×

वीर-रस में कभी कभी वक्रोक्ति अत्यन्त उपयुक्त जँचती है। व्यङ्ग्यात्मक तर्कयुक्त होने के कारण ऐसी ओजपूर्ण उक्तियाँ बडी प्रभावोत्पादक होती हैं। उत्तरराम-चरित मे चन्द्रकेतु राम की प्रशसा कर रहा है। इसपर लव निम्ननिखित तर्कपूर्ण उक्तियों द्वारा उसका उत्तर देता है:—

वृद्धास्ते न विचारणीयचरिता स्तिष्ठन्तु हुं वर्तते,
सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते।

यानि श्रीस्यस्तोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने,
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राऽभिज्ञो जनः।

वे वृद्ध हैं अतएव इनका चरित्र विचारणीय नहीं (अर्थात् वे टीका-टिप्पणी की सीमा के बाहर हैं)। ताड़का स्त्री के वध करने पर भी जिनका यश अप्रतिहत है, वे संसार में (सचमुच) महान हैं। खर राक्षस के वध में जिन्हें तीन पग पीछे हटना पड़ा था और जिन्होंने छलद्वारा बालि का वध किया था, उन्हें संसार के लोग भली-भाँति जानते हैं।

वीर-रस का जितना सुन्दर परिपाक भट्टनारायण कृत 'वेणी-संहार' नाटक में हुआ है उतना संस्कृत के अन्य नाटकों में नहीं। प्रथम अङ्क का निम्नलिखित श्लोक तो प्रायः संस्कृत के विद्यार्थियों की जीभ पर रहता है। भीम क्रोध में सहदेव की ओर देखकर कहते हैं:--

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपा-
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन॥*

---

*क्रोध कै कौरव नायक के,
सतबन्धुन को रण में न सहारिहौं।
सोनित पान के कारज लागि,
कहा न दुशासन को हियो फारिहौं।
त्यों अपने प्रण पालन को,
न कहा दुर्योधन-जङ्घ बिदारि हौं।
सन्धि करैं कछु गाँवनि लै,
तुम भाई भलै पै न ताहि बिचारि हौं।
[वेणीसंहार अनु० हरदयालु

मैं रण में क्रुद्ध होकर सौ कौरवों का विनाश न करूँगा और न दुःशासन के हृदय का रक्त ही पान करूँगा। अपनी गदा से सुयोधन की दोनों जँघाओं को भी चूर्ण न करूँगा। युधिष्ठिर पण से (पाँच गाँव लेकर) सन्धि कर लें। क्योंकि के कारण भीम द्वारा कथित निषेधपर वाक्यों का अर्थ विधि परक ही लिया जायगा।

वीर रस में गर्वोक्तियों का भी एक विशेष स्थान है। जब अश्वत्थामा कर्ण को 'राधागर्भभारभूत' तथा 'सूतापसद' कह कर सम्बोधित करता है तो कर्ण भी क्रोधित होकर कह उठता है —

> निवार्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम्।
> यथा पाञ्चालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना।
> सूतो वा सूत पुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
> दैवायत्त कुले जन्म मदायत्त तु पौरुषम्। *

उत्साह सवर्द्धन के लिए 'वेणी संहार' में अश्वत्थामा की निम्नलिखित उक्ति भी कम मार्मिक नहीं —

> यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो-
> र्भयमिति युक्तमितोऽन्यत प्रयातुम्।

---

* हौं निर्बल अथवा सबल आयुध दीन न त्यागि।
महाबली तव जनक जिमि धृष्टद्युमन भय लागि।
सूत हौंहु वा सूतसुत, अथवा सब विधि हीन।
बस जनम है भाग्यबस, पौरुष निज आधीन।

—वे० स अनु० हरदयाल सिंह

अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे।*

यदि रणक्षेत्र छोड़कर अन्यत्र चले जाने से मृत्यु का भय नहीं है, तब तो उचित ही है। किन्तु यदि प्राणियों की मृत्यु ध्रुव है तो [अन्यत्र भागकर] यश को मलिन करना ठीक नहीं।

अब यहाँ हिन्दी-साहित्य में वीर-रस की प्रगति पर विचार किया जायगा। वास्तव में सम्राट हर्षवर्द्धन के राजत्वकाल से ही देशी भाषाओं का महत्व प्रारम्भ होता है। अतएव हिन्दी-साहित्य के आरम्भ का युग भी इसी समय को मानना समीचीन होगा। जिस प्रकार आधुनिक हिन्दी-भाषा प्राचीन वैदिक भाषा का ही विकसितरूप है, उसी प्रकार आधुनिक हिन्दी-साहित्य भी उस प्राचीन साहित्य के ही विकास का फल है। इस प्रकार आधुनिक साहित्य में जो प्रवृत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं वे परिवर्तित तथा परिवर्द्धित होकर प्राचीन साहित्य से ही उद्भूत हुई हैं। परिवर्तन परिवर्द्धन में अनेक धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक घटनाओं का सहयोग है, जिनका अध्ययन साहित्य के इतिहास के विद्यार्थियों के लिए भी परमावश्यक है। नीचे इन्हीं घटनाओं का संक्षेप मे वर्णन किया जायगा और हिन्दी-साहित्य के इतिहास के साथ उनका समन्वय दिखलाकर अन्त मे वीर-रस की प्रगति पर विचार किया जायगा।

---

* छाँड़ि समर को खेत, मीचु-भय जो नहिं होई।
तो ह्वै चो रस-विमुख, उचित भाखै सब कोई॥
तनु धारिन को मरन अहै, निहचै जग माहीं।
करिबो याते जसहिं मलिन, कैसेहु भल नाहीं।
—वें० सं० अनु० हरदयाल सिंह

धार्मिक दृष्टि के विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि सातवीं आठवीं शताब्दि में बौद्ध तथा जैन धर्म में अवनति आरम्भ हो गई और उनके स्थान पर वैदिक-धर्म की प्रतिष्ठापना होने लगी थी, किन्तु इस वैदिक-धर्म में अपेक्षाकृत अनेक परिवर्तन हो गए थे। अब शाक्त-धर्म प्रधानता ग्रहण करने लगा था और सर्वत्र शिव की पूजा आरम्भ हो गई थी। ह्वानच्वाङ्ग के विवरण से विदित होता है कि गान्धार, काश्मीर तथा पंजाब से लेकर मथुरा तक हीनायान के स्थान पर महायान बौद्ध धर्म का स्थापना हो चुकी थी।

महायान सूत्रों में सब से प्रसिद्ध 'सद्धर्मपुण्डरीक' है। इस सूत्र में बुद्ध मानवता से ऊपर उठकर स्वयम्भू तथा लोकरक्षक बन जाते हैं। गृद्धकूट पर्वत पर उनके भ्रूसञ्चालन मात्र से ही सहस्रलोक प्रकाशित हो उठते हैं। यद्यपि इस सूत्र का समय निश्चित करना कठिन है तथापि श्री विन्टर्निट्ज़ महोदय इसका काल ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दि मानते हैं। सातवीं आठवीं शताब्दि में तो इसी महायान धर्म से मन्त्रयान, वज्रयान की उत्पत्ति हुई।

पं० जयचन्द्र विद्यालङ्कार इस समय की वस्तुस्थिति का वास्तविक चित्र निम्नलिखित शब्दों में अङ्कित करते हैं* —

"किन्तु इसके (वाकाटक गुप्त युग) बाद भारतीय मस्तिष्क मानो थककर अपने को पूर्णता तक पहुँचा अनुभव करने लगता और आगे बढ़ना छोड़ देता है। वह पुराने का भाष्य, व्याख्या, टीका और टिप्पणी करना ही अपना काम समझ लेता और

* अखिल-भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन (२५वां अधिवेशन) के इतिहास परिषद् का अभिभाषण पृ० ८

कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटने लगता है। आठवीं शती का काश्मीरी दार्शनिक जयन्त भट्ट* पुकार कर कहता है—'कुतो वा नूतनवस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमा':—हममें नई वस्तु कल्पना करने की शक्ति कहाँ है? भारतीय कला इस युग में अपने चरम सौन्दर्य पर पहुँचती है, पर उसमें गुप्त युगवाली जान और ओजस्विता नहीं रहती। वैदिक से गुप्त युग तक भारत में अनेक सवराज्य या गणराज्य थे; मध्यकाल में किसी गणराज्य का नाम भी नहीं सुना जाता। जनता अपने राजनैतिक कर्तव्य की उपेक्षा करने लगती है। पहले ग्रामों, श्रेणियों और निगमों की सभायें तथा जनपदों की परिषदें कानून बनाती और स्मृतियां केवल उनकी व्याख्या करती थीं; अब प्राचीन स्मृतियां जीवित मनुष्यों के ठहरावों का स्थान ले लेती हैं। दूर और नई जगह ब्याह-शादी करने से लोगों को झिझक मालूम होने लगती है और समाज में अब तक दर्जों का जो तरल भेद था, वह अब पथराकर ठोस जाति पाँति बन जाता है। शिल्प और व्यापार की समृद्धि से जुटनेवाली फालतू पूँजी मन्दिरों की ललितकला पर ढेर की ढेर संचित होने लगती है।······१३वीं-१४वीं शताब्दि में हेमाद्रि नीलकण्ठ और कमलाकर भट्ट धर्मिष्ठ हिन्दू की बरस भर की चर्या के लिए करीब २००० व्रतों, पूजाओं आदि का विधान करते हैं। ऐसी मन स्थितिवाली जाति संसार के संघर्ष में कैसे खड़ी रह सकती है?"

ऊपर सातवीं तथा आठवीं शताब्दि के धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन संक्षेप में कराया गया है। निश्चित है कि जिस जाति की मन.स्थिति जैसी होगी उसीके अनुरूप वह साहित्य का सृजन भी करेगी, क्योंकि साहित्य

* इतिहास प्रवेश भाग १ पृ० २३४

वास्तव में जातीय जीवन का सच्चा दर्पण है। हिन्दी मे इस का
की जो कविता उपलब्ध हुई है, वह सिद्धो की है। इन सिद्धों
'सरहा' का समय ७५० ई०, महाराज धर्मपाल के समकाली
लुइपा का समय ७६९-८०९ ई० तथा कण्हपा का काल
८४२ ई० है।* सिद्ध लोग सहजिया सम्प्रदाय के अनुयायी
मन्त्रयान तथा वज्रयान की भाँति सहजयान भी महायान
धर्म की ही एक शाखा थी।

सिद्ध कवि रहस्यवादी थे और इनकी कविता की
सन्ध्या बतलाई गई है। नाथपन्थ के प्रसिद्ध गोरखनाथ
सिद्धो मे से ही एक थे। आगे चलकर इन सिद्धों की विचार
हिन्दी के सन्त कवियो की वाणियो में विलीन हो गई।
समय भी सन्तों की वाणियो का अध्ययन करके सिद्धों के वि
का अन्वेषण किया जा सकता है।

सिद्धो की सख्या चौरासी बतलाई जाती है। इस
अधिकाश का सम्बन्ध विहार प्रान्त तथा नालन्दा विश्वविद्य
से था। इस कारण इनकी कविता की भाषा का वर्तमान वि
बोलियो से घनिष्ट सम्पर्क है।

इन सिद्ध कवियों का असली नाम क्या था, यह ज्ञात न
आजकल सरहा, कण्हपा, लुइपा, शबरपा आदि नाम जो वि
हैं वे सिद्धि प्राप्त करने के बाद के उपनाम ही हैं। आधुनिक
के उपनाम-धारी कवियों की श्रेणी मे ये सिद्ध कवि निस्स
प्राचीनतम हैं। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि आधुनिक

*ओरियन्टल कान्फ्रेन्स बड़ौदा (सन् १९३३) की हिन्दी शा
सभापति श्री राहुल सांकृत्यायन का भाषण।

कदाचित इतने सिद्ध बनने का उद्योग नहीं करते कि लोग उनके मूल नाम को भूल जायँ।

दर्शन के क्षेत्र में सिद्ध-कवि शून्यवादी हैं। इस शून्यवाद की चर्चा गोरख, कबीर तथा अन्य सन्त कवियों की कविता में मिलती है। किन्तु 'माध्यमिक कारिका' के प्रणेता नागार्जुन के 'शून्यवाद' तथा इन सिद्धों और सन्तों के शून्यवाद में क्या अन्तर है, यह हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थी के लिए अध्ययन तथा अन्वेषण का सुन्दर विषय है।

ऊपर कहा जा चुका है कि सिद्ध कवि रहस्यवादी थे। मद्य-मांस का उपभोग करते हुए, ये लोग मस्ती से जीवन व्यतीत करते थे। ये लोग नाटक की क्रियाओं में सिद्ध-हस्त थे। राजा तथा गृहस्थ लोग परम सिद्ध समझकर इनकी पूजा करते थे। ऐसे कवियों से वीर-रस की कविता की आशा करना ही दुराशा मात्र है।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के इस आदि युग में कतिपय जैन पण्डितों की कवितायें भी उपलब्ध हैं जिनकी भाषा कहीं-कहीं अपभ्रंश तथा छन्द 'दूहा' है। इन पण्डितों में 'श्रावका-चार' के लेखक देवसेन (सं० ९९०)' 'सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासन' के रचयिता हेमचन्द्र (सं० ११४५-१२२९), 'कुमार-पाल-प्रतिबोध' के प्रणेता सोमप्रभु सूरि (सं० १२४१) तथा प्रबन्ध-चिन्तामणि' के निर्माता जैनाचार्य मेरुतुंग (सं० १३६१) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'शार्ङ्गधर-पद्धति' के रचयिता, वैद्यराज शार्ङ्गधर भी अच्छे कवि तथा सूत्रकार थे। शार्ङ्गधर-पद्धति' में स्थान स्थान पर 'देश-भाषा' के वा[illegible] ए हैं।

इन अपभ्रंश के दूहों में प्राय वीर-रस का अभाव ही है। इस प्रकार की कविता में वीर-रस की पुट हमें सर्व प्रथम मैथिल कोकिल विद्यापति (सं०१४६०) कृत कीतिलता में मिलती है। इसकी विस्तृत आलोचना आगे चलकर विद्यापति के प्रकरण में की जायगी।

साहित्य के क्षेत्र से अपभ्रंश के हटते ही उसके स्थान पर हिन्दी पूर्ण रीति से आसीन हुई। ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का यह घोर अशान्ति तथा विप्लव का काल था। इस समय केन्द्रीय शक्ति के अभाव में सम्पूर्ण भारतवर्ष अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभाजित हो चुका था। इन राज्यों को सवरूप में सगठित करने वाली कोई शक्ति न थी। इसी प्रकार राष्ट्रीय एकता की भावना का भी अभाव ही था। परिणाम स्वरूप सब लोग 'अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग' वाली कहावत चरितार्थ कर रहे थे।

इस युग में भारतवर्ष में सर्वत्र राजपूतों का ही राज्य था। उत्तरी भारत में दिल्ली, कन्नौज, अजमेर, धार तथा कालिंजर के राज्य प्रसिद्ध थे। उनमें क्रमश तोमर, राठौर चौहान, चालुक्य और चन्देल राजपूत राज्य करते थे। इन राजपूतों में पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष का प्राबल्य था। नवीन वैदिक धर्म ने इन्हें उत्साह तो प्रदान किया किन्तु उसमें स्थायित्व न था। समाज में भीतर से घुन लग गया था और जाति निर्बल हो चली थी। ठीक इसी समय तुर्कों ने पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण किया। राजपूत वीर हँसते हँसते बलिदान होने लगे किन्तु उत्साह से उत्तेजित नवागत शत्रुओं को रोक रखना किसी एक राजा का कार्य न था।

यहाँ राजपूतों की वीरता के सम्बन्ध मे भी दो शब्द कह देना आवश्यक है। राजपूतों मे व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था किन्तु वास्तव मे उसका कोई आदर्श न था। विवाह जैसा मङ्गल कार्य भी इनके यहाँ बिना युद्ध के सम्पन्न नहीं हो सकता था।

युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए कौशल भी एक आवश्यक साधन है, किन्तु राजपूतों मे इसका प्राय. अभाव ही था। उधर अन्ध-विश्वास ने भी उनकी पराजय मे सहायता की। "कन्नोज के गुर्जर प्रतिहार सम्राटों के लिए कई ऐसे मौके आए जब वे मुलतान को आसानी से जीत सकते थे। किन्तु जब ऐसा अवसर आता तभी मुलतान के तुर्क-शासक सूर्य-मन्दिर को तोड़ने की धमकी देते और कन्नौज की सेना लौट जाती।"*

ऊपर कहा जा चुका है कि देश की राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक स्थिति का साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। यह बात इस युग के हिन्दी साहित्य के अध्ययन से भी स्पष्ट जाती है। इस काल की कविता मे राजपूतों को सुसगठित कर उन्हें तुर्कों के आक्रमण से देश की रक्षा करने मे दत्तचित्त बनाने की प्रवृत्ति नहीं मिलती, अपितु इसके विपरीत कविगण अपने आश्रयदाताओं के शौर्य पराक्रम की प्रशसा मे ही परम सन्तोष मानते हैं। इस प्रकार की कविता के लिए जहाँ वीर-पूजा की भावना तथा देश की आन्तरिक परिस्थिति से उत्तेजना मिली है वहाँ आश्रयदाताओं से धन लाभ की आशा ने भी कम सहायता नहीं की है। इसका एक प्रत्यक्ष परिणाम तो यह हुआ कि देश की अपेक्षा व्यक्तियों को प्रधानता मिली और अन्य देशों की

* इतिहास प्रवेश पृ० २२५

भाँति हिन्दी में देशभक्ति सम्बन्धी कविता न हुई और दूसरे अतिशयोक्ति तथा अतिरंजन से हिन्दी-कविता आप्लावित हो उठी। उदाहरण स्वरूप कीर्तिसिंह की प्रशंसा में विद्यापति 'कीर्तिलता' में लिखते हैं :—

> जहि जहि सघल सत्तु घल, ताहि ताहि पल तरवारि।
> शोणित मज्जे मेइनी, कित्तिसिंह कर मारि।

छंद

> पले रुण्ड मुण्डो खरो बाहुदण्डो,
> सिआरू फलक्कोइ कङ्काल खण्डो।
> धरा धूरि लोट्टन्त टुट्टन्त काया,
> लरन्ता चलन्ता पभालेन्ति पाआ।
> अरुज्झाल अन्तावली जालवद्धा,
> वसा वेग बूडन्त उड्डन्त गिद्धा।
> गआरण्डो करन्तो पिवन्तो भरन्तो,
> महामासु खण्डो परन्तो भरन्तो।
> सिआसार फेक्कार रौल करन्तो,
> बुभुक्खा बहू डाकिनी ढक्करन्तो।

मध्ययुग में तो हिन्दी कविता प्रायः अतिशयोक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। अब्दुर्रहीम खानखाना जैसे शान्तिप्रिय व्यक्ति की तलवार की प्रशंसा में गङ्ग कवि कहते हैं कि उसने इतने शत्रुओं का वध किया कि खून की नदियाँ बह निकलीं और उनकी बाढ़ से संपूर्ण भूमण्डल डूबने लगा :—

> एते मान छौनित की नदियाँ उमड़ चलीं,
> रही न निसानी कहूँ महि में गरद की।

गौरी गह्यो गनपति, गनपति गह्यो गौरी,
गौरीपति गह्यो पूँछ लपकि वरध की।

वीर-काव्य की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में रासो ग्रन्थों की बड़ी प्रतिष्ठा है। इन ग्रन्थों में कुछ तो मुक्तक-वीर-गीत के रूप में उपलब्ध हैं तो अन्य प्रबन्ध-काव्य के रूप में। इनमें पहली श्रेणी में वीसलदेव रासो तथा आल्हखंड की गणना होगी तो दूसरी श्रेणी में खुमान रासो तथा पृथ्वीराज रासो को रखना उपयुक्त होगा। 'रासो' शब्द की उत्पत्ति 'तासी' ने 'राजसूय' शब्द से मानी है किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसकी उत्पत्ति 'रसायण' शब्द से मानते हैं। ये रासो ग्रन्थ—खुमान रासो, वीसलदेव रासो तथा पृथ्वीराज रासो—आज से कुछ दिन पूर्व भाषा तथा ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से हिन्दी की विभूति माने जाते थे, किन्तु इधर इनकी प्रामाणिकता में सन्देह उपस्थित किया जाने लगा है। नीचे इस सम्बन्ध में निवेदन किया जाता है।

'रासो-ग्रन्थों' में सर्व प्रथम दलपतिविजय कृत 'खुमान रासो' का उल्लेख मिलता है। विद्वानों का मत है कि इसमें चित्तौड़ के दूसरे खुमाण के युद्धों का वर्णन था। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल* इस खुमाण का समय सं० ८७० से ९०० तक मानते हैं। खुमान रासो की एक अपूर्ण प्रति पूना के 'भण्डारकर इन्स्टिट्यूट' में उपलब्ध है।† इस में कुल १३९ पृष्ठ हैं। पुस्तक आठ खंडों में विभक्त है।

* हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २६

† इस सम्बन्ध में नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २० वर्ष ४४ अ० ४ पृ० ३८७ में अगरचंद नाहटा का 'खुमान रासो' शीर्षक लेख देखो।

प्रथम खंड में मङ्गला चरण तथा बप्पा रावल से लेकर खुम्माण तक आठ पीढ़ियों का वर्णन है। भाषा के उदाहरण के लिए इस खण्ड से निम्नलिखित कवित्त उद्धृत किया जाता है —

भ्रुकुटि चन्द्र भल हलें,
गग गनहलैं मनुप्रम।
एकदन्त उभरो मुकुट-
सनदमैं हटट गम।
पुहप धूप प्रगसे,
मैग गलस्मे मोद मन।
धुम नेत्र पर ऊसे—
अग घराले मधुन यन।

द्वितीय खण्ड में 'रति सुन्दरी' से खुमान के पाणिग्रहण का वर्णन तथा तृतीय खण्ड में उसकी नलवर-गढ़-यात्रा का वर्णन है। चतुर्थ खण्ड में महमूद गजनी से युद्ध, पंचम में खुम्माण सन्तान राणा 'राहप' और समरसिंह तथा षष्टम में रतनसिंह, पद्मिनी, एवं गोरावादल का वर्णन है। सप्तम खण्ड में चौहानों की वंशावली का वर्णन है।

ऊपर खुमान रासो के सम्बन्ध में संक्षेप में विचार किया गया है। अब उसकी ऐतिहासिकता पर विचार किया जाता है।

इस पुस्तक में राणा राजसिंह का वर्णन भी मिलता है। राजसिंह का जन्म सम्वत् १६८६, सिंहासनारूढ़ काल सं० १७०९ तथा मृत्यु समय सं० १७३७ है। इससे इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि इस ग्रन्थ का अधिकांश भाग राजसिंह के राजत्व-काल में

ही लिखा गया होगा। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड के अन्त मे निम्नलिखित छन्द मिलता है:—

त्रिपुरा सतत तखय सु पसाय,
रच्या खड दूजो कविराय।
तप्य गच्छ गिरुत्रा गणधार,
सुमनी साधु बसे सुखकार।
पडित पद्मविजय गुरु राय,
पटोदया गिरि रवि कहवाय।
जय बुध शान्ति विजय नो शीश,
जो पै दौलत मनह जगीश।

इस छन्द मे पद्मविजय, जयविजय तथा शान्तिविजय, इन तीन जैन धर्मावलम्बी कवियो की चर्चा की गई है। इनमे शान्तिविजय का समय सम्वत् १७३३ निश्चित है। दौलत विजय इसी काल मे हुए थे, अतएव उनके ग्रन्थ का रचना काल भी यही होगा।

ऊपर कहा जा चुका है कि बीसलदेव रासो की रचना मुक्तक गीतो के रूप में हुई है। अब ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टि मे भी उस पर विचार करना आवश्यक है। वास्तव मे इसके रचयिता नरपति नाल्ह के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नही है। कवि ने न तो अपना परिचय स्वय कही दिया है और न उसके सम्बन्ध मे अन्य किसी कवि ने ही उल्लेख किया है। ऐसी दशा मे कवि के विषय मे कुछ भी निश्चित रूप से कहना कठिन है।

बीसलदेव रासो चार खण्डो मे विभक्त है। इसकी कथा सक्षेप मे निम्नलिखित है.—

प्रथम खंड—सांभर के राजा बीसल देव का मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती से विवाह।

द्वितीयखड—बीसलदेव का राजमती से रूठकर उड़ीसा की ओर प्रस्थान करना तथा वहाँ एक वर्ष तक रहना।

तृतीयखड—राजमती का विरह-वर्णन तथा बीसलदेव का उड़ीसा से लौटना।

चतुर्थ खड—भोज का अपनी पुत्री को अपने घर लिवा ले जाना तथा बीसलदेव का वहाँ जाकर राजमती को फिर चित्तौड़ लाना।

बीसलदेव रासो की प्रामाणिकता —

अब तक 'बीसलदेव रासो' की दो हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध हुई हैं, एक जयपुर से दूसरी बीकानेर से। प्रथम प्रति में ग्रन्थ का निर्माण काल स० १२१२ और दूसरी में स० १०७४ दिया हुआ है —

बारह से बहोत्तर हाँ मँझारि,
जेठ बदी नवमी बुधवारि।

—जयपुर

संवत् सहस तिहत्तर जाणि,
नाल्ह कवीसर रसीय बखाणि।

—बीकानेर

इस प्रकार अब तक 'बीसलदेव रासो' का समय जो स० १२१५ माना जा रहा था, वह विवाद का विषय हो गया।

सम्वत् १२१२ मे इसकी रचना को ठीक बतलाते हुए 'बीसलदेव रासो' के सम्पादक महोदय ने तो इसकी भाषा को प्राचीनतम हिन्दी का नमूना माना है। इधर "हिन्दी के कवि और काव्य" के संपादक 'बीसलदेव रासो' के सम्पादक के इस प्रमाण का खण्डन करते हुए लिखते हैं —

"अभी हाल ही मे राय बहादुर हीरालाल जी की खोज मे बरार प्रान्त मे करंजा के जैन मन्दिरो मे जैनी साधुओं के लिखे हुए कुछ ग्रन्थ मिले हैं। इनका रचनाकाल दशवी शताब्दी का है। इन साधुओं मे पुष्पदन्त श्रीचन्द्र तथा देवसेन सूरि के ग्रन्थो की भाषा कुछ अन्शो मे अपभ्रंश और कुछ मे पुरानी हिन्दी दोनों ही की कही जा सकती है। संभव है किसी खोज करने वाले को भविष्य मे इससे भी पुरानी हिन्दी के नमूने मिले। परन्तु जो हो 'बीसलदेव रासो' के सम्पादक का यह दावा कि 'बीसलदेव रासो' की भाषा ही प्राचीनतम हिन्दी का नमूना है, अब अन्यथा सिद्ध हो गया है* ।'[1]

बीसलदेव रासो में अनेक ऐतिहासिक भूलें हैं। वास्तव में 'बीसलदेव' से शाकम्भर तथा अजमेर के राजा से तात्पर्य है। ये अर्णोराज के तीन पुत्रो जगदेव, बीसलदेव तथा सोमेश्वर में से एक थे। इनके भाई जगदेव अपने पिता की हत्या करके सिंहासनारूढ हो गये। इस पर बीसलदेव उसे सिंहासन से

---

[1] हिंदी के कवि और काव्य पृ० ६०

* यहां पर 'हिंदी के कवि और काव्य' के सम्पादक महोदय ने भ्रमवश करंजा के जैनमन्दिरों से प्राप्त पुस्तकों की खोज का श्रेय रायबहादुर स्वर्गीय हीरालाल जी को दिया है। वास्तव में इन ग्रन्थों के सम्पादक अमरावती कालेज के अध्यापक हीरालाल जैन एम० ए० हैं। सम्पादक

उतार कर स्वयं राजा बन बैठा। इसका समय ८०१८१... जिल्द २ पृ० ७३५ पर सं० १०६६ से ११३० तक दिया गया है, किन्तु पंडित ईश्वरीप्रसाद ने इसका समय सं० १२१० से १२२४ माना है*। इस प्रकार बीकानेरवाली प्रति में जो समय दिया हुआ है वह टॉडराजस्थान के समय में और जयपुरवाली प्रति का समय पं० ईश्वरीप्रसाद द्वारा निर्धारित समय से मिलता है। टाडराजस्थान में केवल एक ही बीसलदेव की चर्चा है। किन्तु ये दोनो संवत् ठीक नहीं माने जा सकते, या तो इनमें से कोई एक सम्वत् ठीक है अथवा सम्भवतः दोनों ही अशुद्ध हैं।

जहाँ तक टॉड राजस्थान में वर्णित 'बीसलदेव' के समय से सम्बन्ध है, इसके लिए न तो कोई शिलालेख ही प्राप्त हुआ है और न कोई अन्य ऐतिहासिक प्रमाण ही उपलब्ध हुए हैं किन्तु शाकम्भर देश के विग्रह-राज के विषय में अनेक प्रमाण मिले हैं।

इनमें फिरोजशाह की दिल्ली की लाट पर खुदवाई हुई इनकी एक प्रशस्ति सं० १२२० की प्राप्त हुई है। इसमें बीसल देव की दिग्विजय का वर्णन है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह विग्रहराज (बीसल देव) ही नरपति नाल्ह द्वारा रचित 'बीसल-देवरासो, का नायक है। जयपुर से प्राप्त 'बीसलदेव रासो' की प्रति से भी यह बात प्रमाणित हो जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि नरपति नाल्ह बीसलदेव का समकालीन था अथवा नहीं ?

बीसलदेव रासो' में दिए हुए सम्वत् से तो यही प्रतीत होता है कि कवि 'बीसलदेव' का समकालीन था किन्तु रासो

* मेडिइविल इण्डिया पृ३

मे दी हुई घटनाओ से इसकी पुष्टि नही होती। अपने ग्रन्थ मे कवि ने दो विशेष घटनाओ का विस्तार से वर्णन किया है। इनमे से एक है, वीसलदेव का धार के परमार राजा भोज की कन्या राजमती से विवाह और दूसरी घटना है, वीसलदेव की उड़ीसा यात्रा। जहां तक पहली घटना का सम्बन्ध है, ऐतिहासिक दृष्टि से वह सर्वथा कपोल कल्पित प्रतीत होती है। अवस्था मे भोजकी कन्या से वीसलदेव का विवाह असम्भव है क्योंकि दोनो के समय मे बहुत अन्तर है। इसके अतिरिक्त फिरोज शाह वाली लाट पर उसकी उड़ीसा यात्रा की भी चर्चा नही है।

विग्रहराज (वीसलदेव) अपने वश मे सब से अधिक प्रतापशाली राजा था। श्री राखालदास वनर्जी इसके सम्बन्ध में लिखते हैं*:—

"विग्रहराज के राज्य का विस्तार गुजरात की सीमा तक था। कहा जाता है कि उसने जयसिंह सिद्धराज को पराजित किया था। भोज प्रथम, की भाँति इसने भी अजमेर मे एक विद्यालय की स्थापना की थी जिसकी पत्थर की दीवारो पर अनेक साहित्यिक ग्रन्थ खुदवाये गए थे। एक पत्थर पर "हर केलि नाटक" मिला है जो सम्भवतः "वीसलदेव' की ही रचना है। एक दूसरा नाटक ललितविग्रहराज भी इसी रूप मे "अढ़ाई दिन का झोपड़ा" नामक स्थान मे मिला है। इसकी रचना कवि सोमदेव ने सम्वत १२१० मे 'विग्रहराज' की ह प्रशंसा में की थी।"

*"प्रि हिस्टारिक एंशिएन्ट एन्ड हिन्दू इन्डिया" पृ० २४६

अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि 'नरपति नाल्ह' ने ऐसे वी रा॰ा के न तो शौर्यादि ही का वर्णन किया और न उसव दिग्विजय ऐसी महत्वपूर्ण घटना का ही अपने रचित ग्रन्थ मे उल्लेख किया। यदि नाल्ह सचमुच वीसलदेव का समक लीन होता तो उसके द्वारा वर्णित घटनाओ मे न तो प्रामाणि कता का ही अभाव होता और न वह महत्वपूर्ण घटनाओ का चित्रण करने से चूकता ही।

'वीसलदेव रासो' की भाषा अस्तव्यस्त है। अतएव उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे इससे कुछ भी सहायता नही मिल सकती। साहित्यक दृष्टि स तो यह एक नगण्य ग्रन्थ है। वीर रस का तो इसमे लेश भी नही हैं इसी कारण इस सग्रह में इसके किसी भी अश को देने का लोभ सवरण करना पडा।

एक बात और है। वीसलदेव रासो की जयपुर वाली प्रति सम्वत् १६६९ में लिपि बद्ध हुई थी। अतएव यदि इसकी रचना सम्वत् १२१२ मे हुई तो प्राय. चार सौ वर्षो तक इसकी मौखिक परम्परा ही चलती रही। ऐसी दशा मे यह निर्णय करना कि इसमे कितना वास्तविक तथा कितना प्रक्षिप्त अश है, एक प्रकार से असम्भव है।

ऊपर इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि 'नाल्ह', 'वीसलदेव' का समकालीन न था। उसके विषय मे 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा' के लेखक का यह अनुमान ठीक प्रतीत कि "वह बहुत पढा-लिखा हुआ कवि नही, वल्कि एक साधारण योग्यता का रमता फिरता भाट था, जो अपनी तुकबदियो द्वारा जनसाधारण को प्रभावित कर अपनी उदरपूर्ति करता था।"*

*राजस्थानी साहित्य का रूपरेखा, पृ० २८, २९

इसी समय हेमचन्द्र नामक एक वैयाकरण हुए हैं। इन्होंने अपभ्रंश के उदाहरण स्वरूप कतिपय दोहे उद्धृत किये हैं। ये तत्कालीन वीर-रस की कविता का दिग्दर्शन कराने में पूर्णतः समर्थ हैं :—

> भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि म्हारा कन्तु।
> लज्जेज तु वयसिअहु, जइ भग्गा घर एन्तु।
> पुत्तें जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
> जा बप्पा की भुँहडी चम्पइ अवरेण।

कालिंजर के राजा परमाल (परमर्दिदेव) के दरबार में जगनिक नामक एक कवि था। जगनिक कृत आल्हखंड, हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। परमाल सं० १२२२ वि० में गद्दी पर बैठे थे इनके समय के दो शिलालेख उपलब्ध हैं। (१) बटेश्वर में परमाल के मन्त्री सलक्षण के बनवाए हुए विष्णु-मन्दिर की शिलापर सं० १२५१ वि० में अंकित (२) महोबा में तालाब के किनारे बने हुए मन्दिर की एक शिला पर अंकित। आल्हखंड का रचना काल विक्रम की तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध अनुमान किया जाता है।

यह प्रसिद्ध है कि आल्हखंड का रचयिता जगनिक स्वयं महान् योद्धा तथा राजनीतिज्ञ था। पृथ्वीराज के महोबा पर आक्रमण करने पर परमाल की स्त्री मल्हना ने उसे आल्हाऊदल को बुलाने के लिये कन्नौज भेजा। आल्हखंड से ज्ञात होता है कि जगनिक परमाल का भानजा था। अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए जगनिक कन्नौज पहुँचा और वहाँ से आल्हाऊदल के अतिरिक्त, जयचन्द के भतीजे लाखन को, पचास हजार सेना के साथ ले आया। इसका वर्णन आल्हखंड में इस प्रकार है—

मल्हना आई दरवाजे पर जल्दी चलो हमारे साथ।
जगनिक आये दरवाजे पै मल्हना छाती लयो लगाय।
रोय के मल्हना बोलन लागी हम पर बीर चढ़े चौहान।
बिपति हमारी तुम मिटवायो आल्हे खबर जनाओ जाय।
बोले जगनिक तब मल्हना सों तुम सुनि लेऊ धर्म की बात।
तीन तलाके दइ राजा ने भरि भादों में देय निकारि।
हम जो जैहैं उन आल्हा पै हमको मारं तुरत बँधाय।

इत्यादि।

यह सुनकर मल्हना ने जगनिक को समझा बुझाकर, च[illegible] जाने के लिये प्रस्तुत किया।

पृथ्वीराज रासो में एक महोबा खड है। वह परमाल रास[illegible] के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसमें जगनिक के कन्नौज जाने [illegible] वर्णन इस प्रकार दिया गया है —'

गय जगनक कनवज्ज, दीन्ह आल्हा कर पतिय।
ईदल ऊदल जागे दई, देवल दे मन्निय।

× × ×

सुनि जगनक किय वत्त आल्ह बुल्यौ करि वानिय।
लुटौ महोबौ नगर कुइ चन्देल गुमानिय।

× × ×

जब जगनक कह निरद विसालह। दीनी अरज लिखी परमालह
करै चाकरी सेवा ठाइय। पिथ्थज पर सुर कुमक पठाइय

इसमें जगनिक की वीरता का उल्लेख इस प्रकार है:—

रुपि जगनक रन माहि, हथ्थ वाहै वर हथ्थिय।
कियौ कान्ह मुरछाह, वियौ वै मास समथ्थिय।

आल्हखण्ड प्रारम्भ से ही ग्रामीणों के गायन की वस्तु रही। इसका लिपिबद्ध रूप बहुत ही बाद को हुआ। इसका स्वरूप दिन प्रतिदिन बदलता जा रहा था। भाषा का प्रारम्भिक रूप तो नष्ट ही हो गया, बहुत कुछ अशों में भाव भी परिवर्तित हो गए। आल्हखण्ड को सर्वप्रथम लिपिबद्ध कराने का श्रेय फर्रुखाबाद के कलेक्टर स्वर्गीय श्री चार्ल्स इलियट को है। उन्होंने तीन चार प्रसिद्ध आल्हा गायकों को बुलवाकर उनकी स्मरण-शक्ति के सहारे स० १९२२ वि० में इसे लिपिबद्ध कराया था। फर्रुखाबाद तथा कन्नौज समीपवर्ती नगर हैं। आल्हाऊदल का क्रीडा क्षेत्र कन्नौज होने से इसकी वास्तविकता का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

चार्ल्स इलियट के आग्रह से इसके कतिपय चुने हुए अंशों का पद्यबद्ध अंग्रेजी अनुवाद 'बंगाल सिविल सर्विस' के वाटर फील्ड नामक सज्जन ने किया था। इसका कुछ अंश स० १९३२ ३३ वि० के 'रिव्यू' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। वाटर फील्ड को यह भ्रम हो गया था कि एक यह स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर, पृथ्वी-राज रासो का एक अंश मात्र है।

यद्यपि परंपरा में यह प्रसिद्ध है कि आल्ह-खंड के रचयिता चन्देल के दरबारी कवि जगनिक थे। किन्तु इस ग्रन्थ में रचयिता रूप में जगनिक का कोई उल्लेख नहीं है। इसका कारण वीर रस की स्फूर्ति हो सकती है। वीर कवि आत्मप्रशंसा के लालायित नहीं होते। आल्ह-खंड की अपेक्षा परमाल रासो में जगनिक का अच्छा वर्णन है।

जितनी लोकप्रियता इस ग्रन्थ को प्राप्त हुई उतनी बहुत ही कम ग्रन्थों को प्राप्त हुई है। उत्तर-भारत की ग्रामीण जनता

मे 'रामायण' के अनन्तर इसी का स्थान है। छोटे छोटे बच्चे
आल्हाऊदल की कहानी जानते है।

आल्ह खड इतने अधिक लोकप्रिय होने पर भी उसर
साहित्यिक तथा भाषा-विषयक कोई विशेष महत्व नहीं है।
किन्तु वीर-रस के प्रचार मे इससे विशेष सहायता पहुँची है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका महत्व नहीं के समान है।
इसमे वर्णित अनेक घटनाएँ पीछे की है। आल्ह-खड मे
की लडाई" एक प्रसिद्ध घटना है। किन्तु माँडो नगर तथा वह
का किला ही अलाउद्दीन के समय मे बनाया गया है। दक्षराज
तथा वत्सराज को परमाल का भतीजा मानने मे भी कोई ऐतिहासिक
ठोस प्रमाण नही है। इसी प्रकार पृथ्वीराज के ताहर नाम के
पुत्र तथा बेला नाम की पुत्री का होना इतिहास से प्रमाणित
नहीं है। इस प्रकार आल्ह खड एक परपरा पालन मात्र के रू
मे ही है।

पृथ्वीराज के समकालीन जयचन्द के दरबार मे कतिपय
कवियों का पता चलता है। 'जयचन्द प्रकाश' नामक महाकाव्य
के रचयिता भट्ट केदार तथा 'जयमयक जस चद्रिका' के रचयित
मधुकर कवि जयचन्द के दरबार मे ही थे। उल्लिखित दोनो ग्रन्थ
अप्राप्य हैं। इनका उल्लेख सिघायच दयालदास कृत "राठौड़
री ख्यात" मे ही मिलता है। यह 'ख्यात' बीकानेर के राज पुस्तका
लय में सुरक्षित है। इसमे लिखा है कि कन्नौज का सारा वृत्तान्त
उल्लिखित दो ग्रन्थों के आधार पर ही लिखा गया है।

इसके अनन्तर स० १३६० वि० के लगभग शार्ङ्गधर-कृ
हम्मीर-काव्य' और 'हम्मीर रासो' तथा नल्लसिह कृत 'विजयपा
रासो' का पता चलता है। तक अब इनका कोई उदाहरण प्राप्त नहीं
हुआ है।

सोलहवीं शताब्दी में जोधपुर-नरेश वीरभानसिंह के दरबार अजबेश नामक कवि का पता चलता है। 'शिवसिंह' सरोज अनुसार इनका समय सोलहवीं शताब्दी का अन्तिम ग है। इनकी रचना का उदाहरण निम्न-लिखित है:—

बड़ी बादशाही ज्योंहीं सलिल प्रलय के बढ़ैं,
राना राव उमराव सबको निपात भो।
बेगम बिचारी बही कतहूँन थाहल ही,
आधौ गढ़ गाढ़ो गढ़ता के पच्छपात भो।
शेरशाह सलिल प्रलय को बढ़्यो अजबेश,
बूड़त हुमायूं के बड़ोई उतपात भो।
बलहीन बालक अकब्बर बचाइबो को,
बीरमनि भूपति अखैबट को पात भो।

सत्रहवीं शताब्दी में ब्रह्मराय मल ने 'श्रीपाल रासौ' की ा (सं० १६३० वि०) की। इस ग्रन्थ की रचना उज्जैन हाराज महपाल के जामाता श्रीपाल के लिये हुई थी। ा उल्लेख सन् १९०० की खोज रिपोर्ट नं० १२४ पर किया है। 'रासो' होने पर भी इसमें वीर-रस का कोई रण नहीं है।

ब्रह्मराय मल के अनन्तर केहरी कवि का उल्लेख शिवसिंह र में किया गया है। ये सं० १६४० वि० में वर्तमान थे। आश्रयदाता का नाम रतनसिंह था। इनकी रचना का दाहरण नीचे दिया जाता है:—

ते शाहिजादे जू बजाये सारसूचनि,
उतै कोट भीतर दबाये दल ह्वै रह्यो।

'केहरि' सुकवि कहै सूरमारे मे हाथिन तहाँ,
अवतरनि तमाशे आनि वै रह्यो।
औचक गलीन में गनीमदल गाजि उठो,
तुंड गजराजन के मद आग च्वै रह्यो।
रतन सहारे भटभेदैं रवि मंडल को,
मंडल घरीक नट कुंडल सों ह्वै रह्यो।

यद्यपि बुंदेलखंडीय कवि केशव की गणना शृंगारी कवियों में की जाती है, किन्तु उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी होने के कारण उनकी वीर-रस की कतिपय रचनाएँ उपलब्ध हैं। इन्होंने सं० १६५० वि० के लगभग रतन-बावनी, वीरसिंहदेव चरित तथा जहाँगीर चंद्रिका नामक वीर-काव्यों की रचना की थी। इनमें से प्रथम दो का विस्तृत विवरण इस संग्रह में दिया गया है।

सं० १६५२ वि० के लगभग काशी-निवासी कवीन्द्राचार्य सरस्वती नामक कवि वर्तमान थे। ये साधु होने के कारण शान्त-रस की ही रचना करते थे, किन्तु इनका एक छन्द शाहजहाँ की प्रशंसा में वीर-रस का भी मिलता है। इन्होंने 'कवीन्द्र कल्पलता' नामक ग्रन्थ की रचना भी की थी। वह छन्द इस प्रकार है —

मंडत घमंडिकै अखंड नवखंड नि मैं,
चंड मारतंड जोति लौ बखानियत है।
प्रलै पारावार पयपूर से पसरि परे,
पुहुमी के ऊपर यों पहिचानियत है।
खड्ग के दाहन मैं पंडव के बाण जिमि,
मण्डिमहि मंडल के अरि भानियत है।

साहिजहाँ साहजू के फौज के पैलाइ देखो,
जम्बू द्वीप सी उभीर तम्बू तानियत है।

उदयपुर के राणा कर्णसिंह के आश्रय में दयाल दास नामक कवि (सं० १६७१—७६) थे। इन्होंने 'राणा रासा' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस 'रासा' में मेवाड़ का इतिहास—विशेषतः प्रतापसिंह, अमरसिंह तथा कर्णसिंह का—विस्तार से वर्णित है। इनका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

छत्रपति करन गति लखै कोई। कहि कहि सकै आपु जो सेसु होई।
बुमान छिति अषरन सरंतुः। छत्री नृपति छत्रपति करंतुः।

सेवँ सबै करंन को:रान भान के पाई।
चिन्ता उर उपजै नहिः दरसन ही दुख जाई।
चंद छन्द चहुँआन,के बोली उमा विसाल।
रान राव अनीहावकू दोरे न पलत दयाल।

खो० रि० स० १९०० नं० ६४

सन् १९०१ ई० की खोज रिपोर्ट नं० ८० में माधवदास नामक मारवाड़ निवासी चारण जाति के कवि का उल्लेख मिलता है। ये सं० १६७१ वि० में वर्तमान थे। इन्होंने 'गुणराय रासौ' तथा 'राम रासौ' की रचना की।

इसके अनन्तर अकबर तथा जहाँगीर के दरबारी कवि 'गङ्ग' की चर्चा की जा सकती है। इनका एक ग्रन्थ पंजाब की खोज में तथा एक 'कवित्तसंग्रह' काशी-नागरी-प्रचारणी सभा की खोज में पाया गया है। ये इकनौरे-(इटावा) निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनकी रचना के दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

राजे भाजे राज छोड़ि रन छोडि रजपूत,
रोतो छोडि राउतर नाई छोड़ि राना जू।
कहै कवि गङ्ग, हुल समुद्र के चहूँ कूल,
कियो न करै कबूल तिय खसमाना जू।
पश्चिम पुरत काल काश्मीर अरताल,
खकूखर को देश बाढ्यो भकूखर भगाना जू।
रूम साम लोम सोम वलक वदक शान,
खेल फैल खुरासान खीझे खानखाना जू।१।

कश्यप के तरणि औ तरणि के किरण जैसे,
उदधि के इन्दु जैसे भये योजि जाना के।
दशरथ के राम औ श्याम से समर जैसे,
ईश के गनेश औ कमलपत्र आना के।
सिंधु के ज्ञु सुरतरु पवन के ज्यों हनुमान,
चन्द्र के ज्यों बुध अनिरुद्ध सिंह बाना के।
तैसेइ सपूत भए बैरम के खानखाना,
वैसई तुराबखाँ सपूत खानखाना के।२।

सं० १६८० वि० में मेवाड़-निवासी जटमल ना
कवि ने 'गोराबादल' की कथा लिखी। इस ग्रन्थ की रच
दोहा चौपाई छन्दों मे हुई है। इसके प्रारम्भ में कुछ गद्य भी
इसमें अलाउद्दीन तथा गोराबादल के युद्ध का वर्णन है।

इसी समय अकबर के दरबार में पृथ्वीराज तथा दुरसा
नामक दो कवियों का रहना ज्ञात होता है। इतिहासज्ञों को
विदित है कि ये पृथ्वीराज कवि, अकबर के दरबारी होने
भी मेवाड़-नरेश राणा प्रताप को अकबर की कूटनीति से ब
की सलाह दिया करते थे। इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना

जेसन रुक्मणी री' हैं। किन्तु इनकी प्रसिद्धि राजपूताने के ग्राम ग्राम में गाये जानेवाली वीरगीतों से ही है। नीचे इनका एक कवित्त दिया जाता है —

> जब तें सुने हैं बैन तब तें न मानो चैन,
> पाती पढि नेंकु सो विलम्ब न लगावैगो।
> लैके जमदूते से समस्त राजपूत आज,
> आगरे में आठो याम ऊधम मचावैगो।
> कहै पृथ्वीराज प्रिया, नेक उर धीर धरो,
> चिरजीवी राणा निज अरिन भगावैगो।
> मनको मरद मानी प्रबल प्रतापसिंह,
> बब्बर ज्यों तडपि अकब्बर पे आवगो।

अकबर के दूसरे दरबारी कवि दुरसाजी को हिन्दू जाति तथा हिन्दू-धर्म से आत्यन्तिक प्रेम था। किसी हिन्दू राजा का अकबर के सन्मुख नत होना, इनको मर्मान्तिक पीडा का कारण होता था। इनकी रचना वीर रस से अत्यन्त उद्दीप्त होने पर भी उसमें विषाद की धुधली सी झलक दिखाई पडती है।

यह प्रसिद्ध है कि महाराणा प्रताप भी कविता करते थे। जिनके नामसे आज भी हिन्दू जाति मे चैतन्य उत्पन्न होता है, उसका एक एक शब्द तत्कालीन राजपूतो मे वीर जीवन उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त था।

इस काल के अधिकांश कवि दरबारी थे, जिनका कार्य अपने आश्रयदाताओ की अत्युक्ति पूर्ण प्रशसा करना था। यह दरबारी प्रवृत्ति इतनी बढ गई थी कि सन्त कवि भी दरबारों में जाकर प्रशसा के गीत गाया करते थे। इस प्रवृत्ति का अन्त इस शताब्दी में ही नही हुआ किन्तु इसका स्वरूप आगे चलकर और

भी भयंकर हो गया। कतिपय कवियों को छोड़कर देश के सब कवियों ने वीर-रस को एक प्रकार से भुला ही दिया।

अकबर ने हिन्दू मुसलमानों की एकता के लिये अनेक उपायों का अवलम्बन किया। उसे अनेक राजपूत राजाओं ने सहयोग भी दिया। किन्तु कतिपय—'महाराणा प्रताप' पृथ्वीराज तथा दुरसाजी ऐसे—लोगों ने हिन्दू मुस्लिम एकता का आन्तरिक हेतु न समझकर उसका सहयोग तो किया ही नहीं बल्कि विरोध किया।

अठारहवीं शताब्दी में औरंगजेब का शासन प्रारम्भ हो जाता है। इस शताब्दी के पूर्वार्ध में हमें सांप्रदायिक द्वेष का तांडव देखने को मिलता है। इसी समय दक्षिणी-भारत में शिवाजी का प्रादुर्भाव हुआ। शिवाजी के गुरु श्री समर्थ रामदास ने हजारों ऐसे शिष्य तैयार किये, जो भिक्षा मांगने के व्याज से सारी जनता में चैतन्य का मन्त्र फूंक आते थे। "जय जय रघुवीर समर्थ" की ध्वनि सुनकर विरोधियों के हृदय में कंपन होता था। उत्तरी-भारत में भी एक नवीन आन्दोलन की धारा बह चली। किन्तु इसका स्वरूप दक्षिणी-भारत के समान शक्तिशाली नहीं था। भूषण, लाल, हरिकेश, गोपाल, सदानन्द, सारंग, भूधर, आदि कवियों ने वीर-रस की रचना कर जनता को जागृत करने का कार्य प्रारम्भ किया। इन सब में प्रधान स्थान भूषण का ही था। भूषण की कविता का कुछ अंश इस संग्रह में लिया गया है और वहीं उनका विस्तृत विवरण भी दिया गया है। अब इस शताब्दी के कतिपय कवियों का उल्लेख किया जायगा, जिन्होंने वीररस की रचना कर अंशतः देश की जागृति में सहयोग दिया।

सं० १७३४ वि० के लगभग जयपुर-नरेश रामसिंह के दरबार में परशुराम चतुर्वेदी (माथुर) के पुत्र कुलपति चतुर्वेदी रहते थे। इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की है। इनकी रचना शृंगार, वीर, नीति आदि सभी विषयों पर प्राप्त है। 'द्रोण-पर्व' तथा संग्राम-सार इनकी वीर-रस की रचनायें हैं। इनका एक कवित्त देखिये:—

मेरे युद्ध क्रुद्ध लखि आयुध सकै न कोऊ,
मानुष की कहा है गति दानव न देवन की।
अर्जुन गरजि न आइ सन्मुख सूर तू,
न जानै गति इन बानन के भेद की।
कुटिल बिलोकनि ते होत लोक लोक खंड,
जाको कर प्रगट धराधर टेद की।
भीषम हौं आयो आज भीषम रचाइ रन,
खग्ग बल पैजहि छुड़ाऊँ बासुदेव की।

सन् १९०६-८ ई० की नागरी-प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट नं० २३८ से ज्ञात होता है कि सं० १७३१ वि० के लगभग गुजराती औदीच्य ब्राह्मण श्रीपति भट्ट नामक कवि वर्तमान थे। इनके आश्रय-दाता इलहाबाद के नवाब सैय्यद हिम्मतखाँ थे। इन्होंने हिम्मत-प्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की।

शिवसिंह सेंगर ने अपने सरोज के ४५२ पृष्ठ पर श्री गोविन्द कवि का शिवाजी के दरबार मे उल्लेख किया है। सेंगर जी के अनुसार इनका जन्म सं० १७३० वि० में हुआ था। किन्तु शिवाजी की मृत्यु सं० १७३७ मे हो चुकी थी। अतः सात वर्ष से भी कम अवस्था मे प्रौढ़ कविता का करना सम्भव नहीं। खोजरिपोर्ट की सूची में एक श्री गोविन्द कवि का उल्लेख है,

किन्तु उनका समय स० १८८० वि० होने से तथा उनकी रचना केवल शृंगार सम्बन्धी ही प्राप्त होने के कारण ये दोनों कवि एक नहीं हो सकते। सम्भवत सरोजकार ने इन्हें शिवाजी का दरबारी कवि कहकर भूल की है। इनका शिवाजी की प्रशंसा में एक पद्य प्राप्त है —

भूप सिवराज शाहि ! प्रबल प्रचंड तेग,
तेरी दौर दड भूमि भारत झमाका है।
फारै आसमान मासमान को गरब गारै,
डारै मेघवान हूँ के हिय में हड़ाका है।
कहै श्री गुविन्द, सत्र शत्रुन के शीशन पै,
गाजतै गिरत गाढ़ गाजतै धड़ाका है।
हौदा काटि हाथी काटि भूतल बराह काटि,
काटि आकमठपीठि काटति कड़ाका है।

स० १७५८ वि० में अवरंगजेब के दरबार में सामन्त नामक एक कवि था। इनका एक कवित्त नीचे दिया जाता है —

तुरग चैठि जग में कुरग को लगाय कै,
चल्यो विहगराज लौं विहग कौन आदरै।
बड़े समूह छोट ज्यों धुराउ ओर छोर लौं,
सुभाय खेलि खेल सां उसारि सैल को धरै।
सामन्त हाथ जोरि कै अमीर दन्त तोरि कै,
उसारि मारि भूमि सों गयन्द गेंद से करै
बचे न सिंह सारदूल सिंह वारपारलौं,
नौरंगशाहि रावरी सिकार बीच जो

सन् १९०० की खोज रिपोर्ट न० ३०१ से
कि अवरंगजेब के दरबार में श्रीकृष्ण भट्ट -

नामक कवि थे। ये बूँदी-नरेश बुद्धराव तथा जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह के भी आश्रित थे। इन्होंने 'सांभर युद्ध' की रचना की। यह युद्ध जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह, सैयद हुसेन तथा सैयद अबदुल्ला (दि दशाह के सेनापति) में हुआ था। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है:—

गुरु गोविन्द गनपति गिरा गवरि गिरीश मनाय।
गावत गुन जयशाह कौ, सुकवि कलानिधिराय।
हुकम बहादुरशाह को, आवें सैद हुसेन।
हुतें भूप जयशाह जहँ, संभरि सर सजि सैन।
उत अरि सैद हुसेन अरु, इतै भूप जयशाह।
मच्यौ दुहुन संग्राम जहँ, आयें अमर उमाहि।

इसका अन्त इस प्रकार है:—

तहँ रुचत रुरात लगी विसाल पल चरनि जाल सग।
रुचत माल गल चन्द्र भाल रंगि सीहर ताल अग।
पर कपाल दिकराल ताल दिय अति उताल गति।
लसति लालरट धरैं हाल जुग्गनि निहाल मति।

फिर महाकाल की बाल निज, काली पर मखुस्वाल तर।
जिघनेस लाल भुवपाल जहँ, फते लहिय करवाल वर।

इनकी इस रचना को देखकर अनुमान होता है कि ये वीर-रस की अच्छी रचना करते थे।

सन् १९०२ की खोज रिपोर्ट के अनुसार स० १७१५ वि० में वर्तमान खड़िया जगाजी नामक कवि जोधपुर-नरेश महाराज जसवन्तसिंह के आश्रय में थे। इन्होंने रतलाम-नरेश रतनमहेश के युद्ध का वर्णन किया है। इस युद्ध में रतलाम-

नरेश, दारा की ओर से जसवन्त सिंह के साथ अवरंगजेब से लड़ते हुए उज्जैन में मारे गए थे। खड़िया जगाजी रचित ग्रन्थ 'रतन महेश दासोत वचनिका' खोज में प्राप्त हुआ है।

महाराज छत्रसाल के दरबारी कवि गोरेलाल (लाल) सं० १७६० वि० में वर्तमान थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इनका 'छत्रप्रकाश' वीर-रस का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इनके सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन इस संग्रह में किया गया है।

सन् १९०३ ई० की खोज रिपोर्ट नं० ११४ से ज्ञात होता है कि लाल ने काशीनरेश महीपनारायण की प्रशंसा में कतिपय छन्दों की रचना की है। इससे आज तक की यह धारणा कि लाल ने केवल छत्रसाल की ही प्रशंसा की है, भ्रान्त प्रतीत होती है। एक कवित्त नीचे दिया जाता है:—

थप्पन उथप्पन विदित महीपालक को,
　　जाहिर जहान प्रतिपालक दुनी को है।
जब्बर गुजब्बरन गब्बर थचत जासों
　　सब्बर मिटावै ख्याल गौतम धनी को है।
कहै कवि लाल, दान भोज बलो विक्रम सों,
　　जबू ऊपर करत करन करनी को है।
नाती वीर बंडासिंह भूपति जसी को यों,

सूर्यवंशी मकरन्दशाह भोसला के यहाँ ये कुछ दिनों तक थे। इनके अधिकांश ग्रन्थ शृङ्गारिक हैं। केवल रुद्रशाह सुलंकी की प्रशंसा में इनका वीर-रस का एक छन्द उपलब्ध है :—

साहेब सुलंकी सिरताज बाबू रुद्रशाह,
तोसो रन रचत बचत खलकत है।
काढ़ी करबाल काढ़ी कटत दुवन दल,
श्रोणित समुद्र छीर पर छलकत है।
चिन्तामणि भणत, भषत भूतगण मास,
मेदगूद गीदर औ गीध गलकत है।
फारे करि कुम्भनिमी मोती दमकत मानो,
धारे लाल बादर मो तारे झलकत है।

इसमें वीर-रस की अपेक्षा अलंकार का चमत्कार ही अधिक प्रतीत होता है।

सं० १७६० वि० में गढ़वाल-नरेश फतहशाह के आश्रित रतन नामक कवि वर्तमान थे। इन्होंने फतहशाह के नाम पर 'फतह-प्रकाश' तथा 'फतहशाह-भूषण' नामक ग्रन्थों की रचना की। शिवसिंह सेंगर ने इन्हें बुन्देला नरेश फतहशाह के आश्रित लिखा है, किन्तु फतहशाह, बुन्देला न होकर गढ़वाल-नरेश थे। १९०९–११ ईस्वी नं० २६६ की खोज रिपोर्ट में भी इस भूल की पुनरावृत्ति हो गई है। 'फतह-प्रकाश' का एक कवित्त नीचे दिया जाता है :—

सुन्दर पुरन्दर गयन्द से बिलन्द कद,
मन्दर समन्द मन्द झर मेदिनी भरैं।
धावा की धमक धुकि धमकि धराधरन,
ससकि ससकि शेश शीशन धराधरैं।

रेश, दारा की ओर से जसवन्त सिंह के साथ अवरंगजेब से
ड़ते हुए उज्जैन में मारे गए थे। खड़िया जगाजी रचित ग्रन्थ
तन महेश दासोत वचनिका' खोज मे प्राप्त हुआ है।

महाराज छत्रसाल के दरबारी कवि गोरेलाल (लाल)
सं० १७६० वि० मे वर्तमान थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना
की है। इनका 'छत्रप्रकाश' वीर-रस का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इनके
सम्बन्ध मे विस्तृत विवेचन इस संग्रह मे किया गया है।

सन् १९०३ ई० की खोज रिपोर्ट नं० ११४ से ज्ञात होता है
के लाल ने काशीनरेश महीपनारायण की प्रशंसा में कतिपय छन्दों
की रचना की है। इससे आज तक की यह धारणा कि लाल ने
केवल छत्रसाल की ही प्रशंसा की है, भ्रान्त प्रतीत होती है।
एक कवित्त नीचे दिया जाता है:—

थापन उथप्पन विदित महीपालक को,
जाहिर जहान प्रतिपालक दुनी को है।
जब्बर भुजब्बरन गब्बर थमत जासो
सब्बर मिटावै ख्याल गोतम धनी को है।
कहै कवि लाल, दान भोज वलो विक्रम सों,
जव् ऊपर करत करन करनी को है।
नाती वीर बंडासिंह भूपति जसी को यों,
महीपति ही को नीको टीको राजसी को है।

त्रिविक्रमपुर निवासी चिन्तामणि वीर रस के प्रसिद्ध कवि
भूषण के भाई थे। इनके समय के सम्बन्ध मे विद्वानों का एक
मत नहीं है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल इनका कविता काल
सं० १७०० वि० मानते हैं तो श्री शिवसिंह सेंगर इनका
जन्मकाल ही सं० १७२९ वि० बतलाते हैं। नागपुर-नरेश

सूर्य्यवंशी मकरन्दशाह भोसला के यहाँ ये कुछ दिनों तक थे। इनके अधिकांश ग्रन्थ शृङ्गारिक हैं। केवल रुद्रशाह सुलंकी की प्रशंसा में इनका वीर-रस का एक छन्द उपलब्ध है :—

साहेब सुलंकी शिरताज बाबू रुद्रशाह,
तोसों रन रचत बचत खलकत है।
काढ़ी करवाल काढ़ी कटत दुवन दल,
श्रोणित समुद्र चीर पर छलकत है।
चिन्तामणि भणत, भखत भूतगण मास,
मेदगूद गीदर औ गीध गलकत है।
फारे करि कुम्भनिमों मोती दमकत मानो,
कारे लाल बादर मो तारे झलकत है।

इसमें वीर-रस की अपेक्षा अलंकार का चमत्कार ही अधिक प्रतीत होता है।

सं० १७६० वि० में गढ़वाल-नरेश फतहशाह के आश्रित रतन नामक कवि वर्तमान थे। इन्होंने फतहशाह के नाम पर 'फतह-प्रकाश' तथा 'फतहशाह-भूषण' नामक ग्रन्थों की रचना की। शिवसिंह सेंगर ने इन्हें बुन्देला नरेश फतहशाह के आश्रित लिखा है, किन्तु फतहशाह, बुन्देला न होकर गढ़वाल-नरेश थे। १९०९-११ ईस्वी नं० २६६ की खोज रिपोर्ट में भी इस भूल की पुनरावृत्ति हो गई है। 'फतह-प्रकाश' का एक कवित्त नीचे दिया जाता है :—

सुन्दर पुरन्दर गयन्द से बिलन्द कद,
मन्दर समन्द मन्द भर मेदिनी भरैं।
धावा की धमक धुकि धमकि धराधरन,
सधकि सधकि शेश शीशन धराधरैं।

वार न लगत ऐसे वार न बकसि देत,
साह मेदिनी को फतेसाह साहसी ठरें।
पुण्डरीक से प्रचंड पुण्ड पुण्डरीक जानि,
शुण्डन सनेलें चन्दमण्डल खरे खरें।

ऐसा प्रतीत होता है कि १८ वीं शताब्दी में मतिराम नामक दो कवि हुए हैं। द्वितीय मतिराम कुमाऊँ-नरेश उद्योतचन्द्र तथा स्वरूपसिंह बुन्देला के आश्रित थे। ये सं० १७४५ वि० से १७६० वि० तक वर्तमान थे। इनके पिता विश्वनाथ, वनपुर-निवासी काश्यपगोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इन्हों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इनके वीर-रस के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अलंकार पचाशिका' तथा 'वृत्त-कौमुदी (छन्दसार पिंगल) हैं। स्वरूपसिंह की प्रशंसा में इनका एक छंद देखियेः—

दाता एक जैसो फतेशाह भयो तैसो अब,
फतेसाहिसी नगर साहिबी समाज है।
जैसो चित्तौर धनी राना नरनाह भयो,
जैसोई कुमाऊ पति पूरो रज लाज है।
जैसे जयसिंह यशवन्त महाराजा भयो,
जिनको मही में अजौ बढ्यौ वलसाज है।
मित्र साहि नन्द वी बुन्देल कुल चन्द जग,
ऐसो अब उदित स्वरूप महाराज है।

सं० १७६६ वि० में मुरलीधर उपनाम श्रीधर कवि ने 'जंगनामा' की रचना की। इसमें जहाँदारशाह तथा फर्रुखसियर के युद्ध का वर्णन है। इस संग्रह में 'जंगनामा' के कतिपय अंश उद्धृत है तथा इनकी रचना की विस्तृत विवेचना भी की गई है।

स० १७३५ वि० के लगभग वर्तमान नेवाज कवि ने भगवन्त राय खीची तथा छत्रसाल के आश्रय में रहकर रचना की। ये अन्तर्वेद-निवासी ब्राह्मण थे। वीर-रस सम्बन्धी इनके कई कवित्त उपलब्ध हैं।

सन् १९१५-१६-१७ की खोज रिपोर्ट न० १२६ मे नेवाज कवि-कृत 'छत्रसाल विरुदावली' प्राप्त हुई है। इसका प्रारम्भ तथा अन्त इस प्रकार है.—

प्रारम्भ—

जै कालिन्दी-कूल कलित-कल्लोल विहारी।
जै वृज वनिता-वृंद सहत वृंदावन-चारी।
जै मुरली धुनि-मिलित-मोहनी मन्त्र-जगावन।
जै सुन्दरता सदन बदन दुति मदन-लजावन।

जदुवस हस-कुल मान सर कस वस-विध्वसमय।
जय कवि निवाज नदलाल जय जय जय जय गोपाल जय।

गोपाल को अवल बलै बर तव दै घमसान की।
फरी फतहै करि धरा मै धाक निज किरवान की।
कुलि पुहुमि प्रभुता करन को लिपि लसत जाके भाल की।
यह वरनिये विरदावली पचम छता छितिराज की।
छितिपाल चपति नदपूरन चद सो जग जगमगै।
करि दया दरसन दै दगन मै सुधा वरसन सो लगै।
अति तिमिर ताको जोति सो नहि बचत सातो दीप है।
जगमगत जबू दीप मै बुँदेलवश प्रदीप है।

अन्त—

भौंरी दै दै नचत नैठि करताल बजावत।
पहिरि हहडहे हार हरषि हर डमरु बजावत।

गजमुकुट तन (व) के गूदि गौरि लागी हसि गावन ।
सब गन गन मन मगन लगे करताल बजावन ।
कहि कवि निवाज मजलसि ननी जय दु दुभि धुकार किय ।
छत्रसाल नायक बली विजय दुलहिया ब्याह लिय ।

महाराज छत्रसाल के दरबार मे नेवाज नामक एक और कवि स० १७७५ वि० के लगभग वर्तमान थे। ये जाति के मुसलमान जुलाहा थे। छत्रसाल के दरबारी कवि होने पर भी इनकी वीर-रस की कोई रचना अब तक उपलब्ध नहीं है।

वनपुरा अन्तर्वेद के निवासी कालीदास त्रिवेदी नामक एक कवि स० १७७० वि० मे वर्तमान थे। इनके आश्रयदाता जबू-नरेश जोगजीत महाराज थे। इन्होने 'कालिदास हजारा' नामक संग्रह किया जिसमे अपने तथा अन्य कवियो के मिलाकर एक हजार छद सगृहीत किये। इसमे दो सौ बारह कवियो के कवित्त हैं। भूषण के ही पचहत्तर कवित्त इस सग्रह मे हैं। आलमगीर औरगजेब की प्रशसा मे इनका एक कवित्त देखिये:—

गढन गढी से गढि महल मढी से मढि,
बीजापुर ओप्यौ दलमलि उन्राई में।
कालिदास कोप्यो बीर औलिया आलमगीर,
तीर तलवारि गह्यो पुहुमी पराई मे।
बूद तें निकसि महिमडल घमड मचि,
लोहू की लहर हिमगिरि की तराई मे।
गाडि के सुभडा आड कीन्ही पादशाह ताते,
डकरी चमुण्डा गोलकुण्डा की लराई में।

इस छद से ज्ञात होता है कि ये वीर-रस की अच्छी रचना कर सकते थे।

सन् १९२३-२५ ईसवी की खोज रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि असोथर-नरेश भगवन्तराय भी वीर-रस के अच्छे कवि थे। इनका वर्णन सदानन्द मिश्र ने 'भगवन्तराय रासा' में किया है। ये अनेक कवियों के आश्रयदाता थे। भगवन्तराय रचित 'हनुमन्दावनी' प्रसिद्ध ग्रथ है। आचार्य शुक्ल जी इसे 'हनुमत पचीसी' बतलाते हैं। शिवसिंह सेंगर ने ४२४ पृष्ठ पर एक भगवन्तराय कवि का उल्लेख किया है और कहा है कि "सातौकाण्ड रामायण कवित्तो मे महा अद्भुत रचना औ कविताई के साथ बनाया है।" इनके समय के सम्बन्ध मे वे मौन हैं। शिवसिंह सरोज मे दिये हुए इनके दो उदाहरणों से हमारा अनुमान है कि ये दोनों कवि एक ही हैं। वे दोनो छद नीचे दिये जाते हैं :—

सुवरणगिरि सो शरीर प्रभा श्रोणित सी,
तामें झलमलै रग बाल दिवाकर को।
दनुज सघन दहन कृशानु महा-
ओजसों विराजमान अवतार हर को।
भनै भगवन्त पिंगलोचन ललित सोहैं,
कृपा कोर हेरयो निरदैत उनै कर रो।
पवन को पून कपिकुल पुरहूत सदा,
समर सपूत बन्दों दूत रघुबर को। १।
गाढ परे गैयर गुहारिबौ विचारयो जब,
जान्यो दीनबन्धु कहूँ दीन कोउ दलिगो।
जैसे हुते तैसे धाये करुणाके सिंधु,
अस्त्र शस्त्र वाहन बिसारि कै विमलिगो।
भनै भगवन्त, पीछे पीछे पच्छिराज धाये,
आगे प्रतिपच्छि छेदि आहु दे उछलिगो।

जो लौं चक्रधारी चक्र चाह्यो है चलाइवेको,
तौ लौं ग्राह ग्रीव पै अगारु चक्र चलिगो। २।

सं० १७८० वि० के लगभग मल्लकवि भगवन्तराय खीची के दरबार में वर्तमान थे। इनकी रचना देखकर अनुमान होता है कि ये वीर-रस के अच्छे कवि थे। इनका एक पद्य देखिये —

नागर पराने मुनि समुद सकाने रण,
गब्बर डराने दिल जोरा छोरिवाने के।
द्युपति सकाने देखि दल के पयाने अरि,
मीर तुलाने वर कापै हबसाने के।
मल्ल कवि हम जाने बीररस सरसाने,
खींची कुलभान कोटि किमति बखाने के।
कन्तनि पुकारैं सुकुमारैं सुनि शोर जब,
दुन्दुभी घुकारैं भगवन्त मरदाने के।

सं० १७६० वि० के लगभग भूधर नामक कवि वर्तमान थे। ये भगवन्तराय खीची और उनके भतीजे भवानीसिंह के आश्रित थे। इनके बहुतसे फुटकर छंद प्राप्त हैं उसी में कतिपय छंद वीर-रस के भी हैं। इनका एक कवित्त देखियेः—

म्यान ह्वै कढत भूत अक्करे अहार पाइ,
हार पाइ हरादि महेश आइ नचिगे।
गाइ गाइ बरन बरांगना बरन लागीं,
चहलै सकल श्वान चरबी के मचिगे।
भूधर भनत, मारे मोगल पठान शेख,
सैयद अमीर भूप वीर केते पचिगे।

राइ भगवन्त जू के सद्गुनुन खेत आइ,
सपेते सहादतिते सेस ओटि वचिगे।

न० १७७५ वि० में वर्तमान द्विजचन्द्र कवि, गङ्गमणि नामक किसी राजा के आश्रित थे। इनका अन्य वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है। इनका एक कवित्त नीचे दिया जाता है:—

कोपि करवर गह्यो सरगुल सरगमणि,
भूतल ससाई मीर जेते सरदार हैं।
कहै द्विजचन्द्र, रुण्ड मुण्डन परित महि,
मुण्डन चमुण्ड लेत आमिष अहार हैं।
सोणित सलिल तीर गौरा को गोसाई टेरें,
घौरा वहि चल्यों तहाँ पाऊ थिरनार है।
काहेरे उमाप करै हाहेरे हिरम्ब, करै,
हो हो कहै यती पारवती कहै पार है।

सन् १९०६-११ की खोज रिपोर्ट नं० ६८ से ज्ञात होता है कि सं० १७६० वि० के लगभग गोपाल नामक कवि वर्तमान थे। इन्होंने भगवन्तराय खीची के आश्रय में रहकर 'भगवन्तराय की विरदावली' लिखी। इसका मध्य तथा अन्त इस प्रकार है:—

मध्य—

हरिगीतिका छंद

जहं सेष सैयद अकलिते वरवीर घर छिन सोहनो।
तहँ रुंडमुंड भसुंड भभकत गिरत रन घाइल घनो।
है गये सकल तुमार मुगल पठान जेहि रनखेत में।
समसेर गहि सनमुख समर भगवन्तराय सचेत में।

अन्त—

छप्पै

जुद्ध दान दै वीर जगत जस अटल पाइकै ।
गयो सूर सुर लोक भानु-मडल मझाइकै ।
मान सहित मघवान जानि दोन्ह्यौ तिहि आसन ।
सजन सकल समेत छिनक बैठ्यौ सिंहासन ।
यह भाँति हेतु जिय जान कै कृपा कालिका-कन्त की ।
सो जोति समानी जोति में राय भूप भगिवन्त की ।

इस ग्रन्थ में राजा भगवन्तराय तथा शहादतखाँ के युद्ध का वर्णन है।

सन् १९०६–८ की खोज रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि स० १७८०–९० वि० के लगभग हरिकेश द्विज नामक कवि वर्तमान थे। ये पन्ना नरेश छत्रसाल तथा उनके पुत्र हृदयशाह और जयपुर नरेश जगतसिंह के आश्रय मे थे। इनका जन्म दतिया राज्य जहाँगीराबाद परगना, मे हुआ था। इनके कई कवित्त छत्रसाल की प्रशसा में पाए जाते हैं इन्होने जगतसिंह की प्रशसा मे 'जगतराज विजय' नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ का आदि, खोज रिपोर्ट मे इस प्रकार दिया गया है —

आदि—

गनपत जग वन्दन विदित, अग्रगन्य दिन दान।
देहु सुमत छत्रसाल को, जस कछु कहौं बखान।
राघव दसरथ मदरह, नद-सदन जदुवीर।
चपत घर जाग्यो छता, धर्म धुरधर धीर।
जो जैसे समझे फलै, ताकौं तेही रूप।
पूरनब्रन पूरनकलन, प्रगट्यौ छत्ता भूप।

इसमें 'औवल समद की लराई' का वर्णन है। छत्रसाल की प्रशसामें इनका एक छद देखिये —

> उहडहे डकन को शब्द निशक होत,
> वहवही शत्रुन की सेना आइसर की।
> हथिन के झुड मारू-राग का उमग,
> उतै चम्पति को नन्द चढ्यो उमग समर का।
> कहै हरिकेश, काली ताली दै नचत ज्यों ज्यों,
> लाली परसत छत्रसाल मुखवर की।
> फरकि फरकि उठै बाहैं अत्र बाहिबे को,
> करकि करकि उठै करी बखतर की।

स० १७८१ वि० से १८०५ तक जोधपुर-नरेश महाराजा अभयसिंह के आश्रित करनी दान नामक चारण कवि वर्तमान थे। इन्होने कई राजाओं की प्रशंसा की है। इनका शृङ्गार पर एक ग्रन्थ भी उपलब्ध है। वीर-रस के छद प्राप्त नहीं हैं।

इस शताब्दी के अन्तिम कवि हरप्रसाद का उल्लेख सन् १९१२-१३-१४ की खोज रिपोर्ट न० ७० मे मिलता है। ये हरदोई जिले में बिलग्राम के निवासी हैं। इन्होंने 'इमाम हुसैन राजीद का सग्राम' वर्णन किया है। इसकी रचना स० १७८२ वि० में हुई।

वीर-रस की दृष्टि से इस शताब्दी का बहुत कुछ महत्व है। इसी शताब्दी मे स्वामी प्राणनाथ, महाराजा छत्रसाल, भगवन्तराय खीची, बाजीराव पेशवा (प्रथम), सवाई जयसिंह तथा भूषण आदि के अविरत प्रयत्न से उत्तरी तथा दक्षिणी-भारत राजनैतिक प्रगति के साथ सामाजिक तथा धार्मिक

प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा था। इस शताब्दी के अन्तमें औरंगजेब की मृत्यु के कारण धार्मिक वैमनस्य भी कुछ अशों में कम होगया था। वीर-रस के उच्चकोटिके कवि इसी शताब्दी में अपेक्षाकृत अधिक हुए। समाज से वैराग्य तथा आत्मिक दुर्बलता की भावना कुछ नष्ट हो रही थी। किन्तु देश के दुर्भाग्य से यह वीरत्व की धारा अधिक दिन तक प्रवाहित न हो सकी। दिन प्रतिदिन उत्साह कम होता गया और सामाजिक एकता की भावना भी नष्ट हो गई। पारस्पारिक युद्धों में विदेशी शक्ति का आश्रय ले कर हमने अपना आत्मसमर्पण कर दिया। वीर रस का "फूल विकसित होने के पूर्व ही मुरझा गया।"

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में 'सुजान चरित' के कर्ता सूदन का उल्लेख मिलता है। 'सुजान-चरित' का एक अंश इस संग्रह में लिया गया है। वहीं सूदन की विस्तृत विवेचना की गई है।

भगवन्तराय खींची के दरबार में बुंदेलखंडीय ब्राह्मण निवाज कवि सं० १७९० वि० से स० १८०१ वि० तक वर्तमान थे। भगवन्तराय की प्रशंसा में इनका एक कवित्त देखिये:—

पारथ समान कीन्हो भारथ ही में आनि,
बानि खिरवाना ठान्यो समर सपूती को।
कोर कटि गयो हटि कैन पग पाछे दयो,
लयो रण जीति करि मान मजबूती को।
भनत नेवाज दिल्लीपति सों सहादतखाँ,
करत बखान एती मान मजबूती को।

फतल मरद्द नद्द शोणित सों भरि गयो,
करि गयो हद्द भगवन्त रजपूतों को।

पद्माकर के पिता मोहनभट्ट सं० १८४० वि० में वर्तमान थे। ये पन्नानरेश हिन्दूपति, सवाई प्रतापसिंह, जगतसिंह आदि बुंदेलखंडीय कई राजाओं के आश्रित थे। इनकी रचना में अनुप्रास अधिक मात्रा में पाया जाता है। इनके वीर-रस की रचना के दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

अड्डादार ऐंडदार ओजदार आबदार,
तरक तराकदार तोरादार तेगदार।
बखत बिलन्द श्रीनरिन्द सभासिंह नन्द,
हिन्दपति जालिम तो यश जाहिर जहान।
तुम जानि जानी हमहीं से हम और नहीं,
मोहन बखानै चारु रावरे गुण प्रमान।
इन्द्र के जयन्ति रतिकन्त कृष्णचन्द्र जू के,
रुद्र के षडानन समुद्र के कलानिधान।१।
दाबि दल दक्खिन सुसिक्खन समेत दीन्हे,
लीन्हें गहि पकरि दिलीश दहलनि में।
रूस रुहिलान खुरासान हबशान सबै,
तुरक तमाम ताके तेज तहलक में।
मोहन भनत यों बिलाइत-नरेश ताहि,
शेर रतनेश घेरि ल्यायो सहलन में।
जिहिं अगरेज रेज कीन्हें नृप जाल तिहिं,
हाल करि स्वबश मचायो महलन में।२।

सं० १८०४ वि० में कालीदास कवि के पुत्र बनपुर-निवासी कवीन्द्र उदयनाथ नामक कवि वर्तमान थे। इनके आश्रयदाता

भगवन्तराय खीची, राव बुद्धसिंह तथा गजसिंह थे। कवीन्द्र-रचित कई श्रृंगार-रस के ग्रन्थ पाये जाते हैं। इनका वीर-रस का एक छन्द नीचे दिया जाता है:—

हाडासैन आडा है अमीर आमखास बीच,
बोला वेनुवान कहँ बात जौन बरकी।
जो लौं बुद्ध विरचि कटारी निरधारी मारी,
भनत कविन्द, कारी कला ज्यों कहर की।
पजर समेत मज मजरलों पैठि आव,
अरि के उमेठि आनी पीठी जाय फरकी।
बाह की बड़ाई कै बड़ाई बाहिबे की करौ,
कर की बडाई कै बडाई जमधर की।

सांडी, जिला हरदोई निवासी गुमान मिश्र स० १८३० वि० के लगभग वर्तमान थे। ये बादशाह मोहम्मदशाह के समकालीन थे। इनका एक कवित्त देखिये:—

धर धर हालै धर धर धुधुकारन सों,
धीर न धरत जे धरैया बलवाह के।
फूटत पताल ताल सागर सुखात सात,
जात है उगत ब्योम विहग बलाहके।
झालरि रुकत झलकत झपी फीलनि पै,
अलो अकब्बरखाँ के सुभट सराह के।
अरि उर रोर शोर परत ससार घोर,
बाजत नगारें हैं बरोर नरनाह कें।

स० १८२८ वि० में अली अकबरखाँ के आश्रय मे निधान नामक कवि वर्तमान थे। इनकी वीर-रस की कतिपय कविताएं उपलब्ध हैं। इनका एक छप्पै देखिये:—

सदर जहा जगजनित सुयश भुवबीज समर्थ्यौं।
अली मुरतजाखान दान करि थाल रथप्यो।
फिरि सैयद महमूद सींचि तरवारि बरी करि।
सुकुत दरिन घाव पत्र कीने उसवाव धरि।
खुर्रम मुसैद शाखा सघन वादुल्ला त्यौं सुमन हुव।
देत सकल मनकामना अलि अक्बर फल प्रगटनुव।

असनी (फतहपुर) निवासी घनश्याम शुक्ल कई राजाओ के आश्रय में रहे थे। ये स० १८५० वि० में वर्तमान थे। इनके रचे हुये कई ग्रथ कहे जाते हैं, किन्तु इनके वशजो के घरमें आग लग जाने से कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। शिवसिंह सरोज में प्राप्त इनके वीर-रस के दो छन्द उद्धृत किये जाते हैं —

अटे औनि अगर छुटै सुमेरु मदर से,
घटै मरयादा वीर वारिधि के वेला की।
कहै घनश्याम घोर घनकी घमण्डै गज,
मटै ध्वजमडै जे उमडे रवि रेला की।
धाराधर छीनी ची चिदारैं तन दैत्यन के,
मद सी कुठारैं परैं शकर के चेलाकी।
दबै दिगपील बलफबै ना सुरेश सेन,
जादिन 'जुनबै' कढैं बाघवी बघेला की। १।
गाजैं जीति सुयश विभाजै दल बैरिन कै,
रैयति कौ रजै गढ गजै अलवेश के।
कहैं घनश्याम रस दूसरो शुरूनै गर्जि,
गुरू गर्जितो कै बैधौं डमरू महेश के।
इडावान हारैं लडितान को गरप गारै,
आसमान फारैं मन मारैं अमेरश के।

पारावार धारमें घसी है गगधार केधौं,
सुकत नगारे बाराणसी के नरेस के। २।

सन् १९०० ईस्वी की खोज रिपोर्ट नं० ४१ से ज्ञात होता है कि सं० १८५३ वि० में दुर्गादास नामक कवि वर्तमान थे। इन्होंने 'अजीतसिंह फतह' नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें रीवा-नरेश अजीतसिंह तथा पेशवा सरदार जसवन्तसिंह में हुए युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध का समय कवि ने इस प्रकार दिया है:—

अष्टादस सवत समै, तिरपनहु के साल।
मध्य चोरहटा खेत में, गल्यौ सवारे वाल।

इनकी रचना वीर-रस की दृष्टि से साधारणत. अच्छी है एक उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

तोपन मझाइ वरवाजी को उढाइ करि,
लोहे के ठट्ठ मरहट्टन के पारतो।
तीर तरवारनि ये घने घाइ भालन के,
ढाल ही की चोट और क्यों कर सम्हारतो।
सुजस प्रताप कों निधान श्रीप्रतापसिंह,
वैरी उर वेमा बीच नेजा जोन मारतो।
नायक अभिमानी सो जानपन जानै कहा,
ये तो हिन्दुआनो तुरकानो करि डारतो।

सन् १९०५ नं० ६२ की खोज रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि सं० १८६० वि० के लगभग 'अनूप-प्रकाश' नामक ग्रन्थ अनूपगिरि (हिम्मतबहादुर) के लिये रचा गया था। इस ग्रन्थ रचयिता का नाम अज्ञात है।

सं० १८८८ वि० के लगभग वागीराम तथा गाढूराम नामक कवि वर्तमान थे। ये दोनों भाई जालंधरनाथ के शिष्य थे। इनके आश्रयदाता जोधपुर-नरेश महाराज मानसिंह थे। ये दोनों साथ साथ कविता करते थे। सं० १९०२ नं० ३२, ३३ की खोज रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इन्होंने 'जस भूषण' तथा 'जस रूपक' नामक दो ग्रन्थों की रचना की थी।

सन् १९०१ नं० ९२ की खोज रिपोर्ट में इसी समय के लगभग महेश नामक कवि का उल्लेख मिलता है। इनका और कोई वृतान्त ज्ञात नहीं है। इन्होंने 'हमीर रासौ' नामक ग्रन्थ रचा था।

सं० १८८१ में ब्रह्ममहीप वंश मे सेवाराम के पुत्र ग्वाल कवि वर्तमान थे। ये वृन्दावन में रहते थे। इनके आश्रयदाता जसवन्तसिंह तथा स्वामी लहनासिंह थे। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की है, किन्तु वीररस पर इनका एक मात्र ग्रन्थ 'हमीर हठ' ही है। 'हमीर हठ' का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

परम प्रतापी राजे तखत दिली के गत,
गौरिया अलाउदोन बादशाह नाम है।
तकै बहु बेगम रहत सदा बेगम वे,
दम दम जिनकी पठै प्रकास धाम है।
पास ही दिली के खास बाग वन रास हुतौ,
तामैं बहुवास म्रग आदिक मुदाम है।
तामैं कछु दूर लौ कनात कीमखापन की,
दीनी घिरवाय चहू ओरै सईदाम है।

ग्वाल के अनन्तर 'राज विलास' के रचयिता मान की चर्चा की जा सकती है। इनका विस्तृत विवेचन इस सग्रह में किया गया है। खोज रिपोर्ट ज्ञात हुआ है कि इन्होंने 'समर-सार' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी। यह ग्रन्थ बुंदेलखड के धर्मपाल महाराज की प्रशसा में लिखा गया है। इसका आदि तथा अन्त इस प्रकार है:—

आदि—

सुमर सारदा मात कौ, धर गनेश कौ ध्यान।
समर-सार बरनन करौ, देव हिदय मे ग्यान।
सवतु वस मुनि नाग छिति, अगिन अस तिथि भूत।
भृगु सुवार तादिन हनो, मेजर सैन अकूत।
धर्मपाल महाराज ने, करी जुद्ध की ठान।
सुभट सूर बुलवाइ कै, बोले बोल प्रधान।
सुनौ सूर सामत हौ, लखन लाज परवान।
है गलीम वल अचगरौ, मैंडे मेलो आन।
सुन बोले सामत तब, सुनौ नृपत हित मान।
प्रात मार है सत्र कौ, करे कवी गुन गान।

अन्त—

जय जयत विक्रमाजीत जय धन धर्म प्रचडा।
जयत देस अरु कोस जयत जय सुजस अखडा।
जयत सूर सामन्त जयत जय परम पुनीता।
जयत वीर गभीर जयत जय सकल पुनीता।
कवि मान कहै जय जय सबल अवल होय अर अधिक भुव।
जय जयत वीर बुदेलमन सुन्दर जय — ' पाल तुव।

जय जय जय जाचक करै, जय जय देव प्रपाल।
जय जय जय जस लोक तिहु, जुध जीतौ धर्मपाल।
विजय भइ धर्मपाल की, बज्जे तबल निसान।
कहौ मान गुन गायकै, पाये दीरघ दान।

चरखारी-(बुंदेल खंड) नरेश विक्रमसाहि के आश्रित प्रतापसाहि स० १८८६ वि० में वर्तमान थे। इनके पिता वन्दीजन कवि रतनेश थे। इनका रचा हुआ 'जयसिंह प्रकाश' वीर-रस का अच्छा ग्रन्थ है। इनके अन्य ग्रन्थ शृंगार, भक्ति आदि पर हैं।

सन् १९०३ की खोज रिपोर्ट नं० ११० से ज्ञात होता है कि दलसिंह उपनाम दास कवि ने स० १८६० वि में 'दलसिंहानन्द प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना गुरु गोविन्दसिंह की प्रशंसा में की। उदाहरण के लिये दो दोहे दिये जाते हैं —

गुरू खालसे खास सुभ, छत्र बिराजत नित्य।
पुर पटियाले मों रची, यह रचना वर मित्य।
श्रोता बक्ता सों कहौं, मन बच क्रम कर नीत।
असि ध्यान गोविंदसिंह पद, सदा बसे मम चीत।

किशुनपुर (जि० रायबरेली) निवासी ठाकुरप्रसाद मिश्र 'प्रवीन' स० १९०० वि० में वर्तमान थे। इनके पास पुस्तकों का अच्छा समूह था। ये स्वयं कवि भी अच्छे थे। किसी माधवसिंह की प्रशंसा में इनका निम्नलिखित पद्य उपलब्ध है —

अरि दल दलिवे को फरकि फरकि उठैं,
करकि करकि करी करकैं सनाहैं हैं।

थरकि थरकि थिर थामे न रहत वेहूँ,
किरवान गहिबे को अति ही उमाहे हैं।
ठाकुरप्रसाद भने, महावल सिंधु दोऊ,
उठती तरंगै भरी युद्ध की उछाहे हैं।
कल पलता है कवि पंडित की छाहें करें,
जगत पनाहे हैं भूप माधवसिंह बाहें हैं।

इसी शताब्दी में पद्माकर, जोधराज तथा चन्द्रशेखर भी हुए थे। इनका विस्तृत विवेचन इन संग्रह में किया गया है, अत यहाँ उनकी चर्चा नहीं की गई।

यद्यपि इस शताब्दी मे वीर रस के अनेक अच्छे कवि हुए हैं किन्तु जो कार्य १८ वीं शताब्दी के कवियो ने आरम्भ किया था उसे ये लोग आगे न चला सके। केवल आश्रयदाता की प्रशंसा को दृष्टिकोण में रखकर ही वीर रस की रचना की गई है। राष्ट्र जागृति का स्वप्न इस शताब्दी के कवियो ने देखा ही नहीं। इस काल में सूदन को छोडकर उच्चकोटिका कवि कोई दिखाई भी नहीं देता। अब यहा आधुनिक वीर कवियों का उल्लेख कर उनकी रचना पर प्रकाश डालने प्रयत्न किया जायगा।

आधुनिक हिन्दी वीर काव्य का सबसे प्रथम और सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है, लाला भगवानदीन 'दीन' का 'वीर पचरत्न'। देश की वीर-माताएँ, वीर बहनें, वीर पुत्रियाँ, वीर पत्नियाँ, और वीर बन्धुओ का इसमे बड़ी सरल, रोचक और ओजमयी भाषा में गुणगान किया गया है। आज हमारे देश के हिन्दी भाषी अचलों में, ग्राम ग्राम में, इसका प्रचार है, और वृद्ध, स्त्री और बच्चे, अपढ और पढ सभी इसका आनन्द ले

सकते हैं। आधुनिक हिन्दी-काव्य में कदाचित् "भारत-भारती" और "वीर-पंचरत्न" यही दो काव्य सबसे अधिक जनप्रिय हुए हैं; और फुटकर कविताओं में श्रीमती चौहान की "झाँसीवाली रानी।" जैसा आंग्ल कवि बायरन ने कहा है—'जो गीत राष्ट्र के प्राणों को जाकर छू लेता है वह स्वयं एक देश-गौरव-वर्द्धक वीरता का कृत्य हो जाता है।' इस दृष्टि से "वीर-पञ्चरत्न" पर हम गर्व कर सकते हैं। इसका छन्द भी बड़ा ही सर्वप्रिय और सर्वजन सुलभ है और भाषा में एक विचित्र प्रवाह है। देखिये कवि का आदर्श—

वीरों की सुमाताओं का यश जो नहीं गाता
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान जनाता
जो वीर सुयश गाने में है ढील दिखाता
वह देश के वीरत्व का है मान घटाता
दुनिया में सुकवि नाम सदा उसका रहेगा
जो काव्य में वीरों की सुभग कीर्ति कहेगा
वाल्मीकि ने जब वीर-चरित राम का गाया
सम्मान-सहित नाम अमर अपना बनाया
श्रीव्यास ने तब नाम सुकवियों में है पाया
भारत के महायुद्ध का जब गीत सुनाया
कब चन्द भी हिन्दी का सुकवि आदि कहाता ?
यदि वीर पिथौरा का सुयश-गान न गाता
होमर जो है यूनान का कवि आदि कहाया
उसने भी सुयश वीरों का है जोश से गाया
सब वीर किया करते हैं सम्मान कलम का
वीरों का सुयश गान है अभिमान कलम का

'द्विजजी' की इस वीरकृति में ऐसे-ऐसे स्थल हैं—चित्र हैं

जो हमारे रक्त प्रवाह को झकझोर देते हैं और वीररस से हमारा तन-मन भर जाता है।

महाकवि मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी के प्राणशील साहित्य-निर्माण में जो काय किया है उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता। उनकी "भारत-भारती" ने हमारे देश के हिन्दी भाषी नवयुवकों में, चाहे वे शिक्षित हों या अर्धशिक्षित और अशिक्षित, सबसे अधिक राष्ट्रीय चेतना फूँकी है। जितनी लोकप्रियता इस काव्य को मिली है, उतनी किसी अन्य कविता पुस्तक को हिन्दी में नहीं मिली। मातृभूमि का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं —

आते ही उपकार याद है माता तेरा
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेरा
तू पूजा के योग्य कीर्ति तेरी हम गावें
मन होता है तुझे उठाकर शीष चढ़ावें
वह शक्ति कहाँ, हा क्या करें, क्यों हमको लज्जा न हो?
हम मातृभूमि केवल तुझे शीष झुका सकते अहो।

अपनी 'विशाल भारत' शीर्षक कविता में कविवर कहते हैं—

तेरे ही स्वर का साधक है भव भविष्य-सन्देश
किन्तु कण्ठ में पाश पड़ा है तेरे, मेरे देश!
यह कैसा अपमान और हा है यह कैसा क्लेश!
आने दे तू आत्म स्मृति का एक उष्ण आवेश।

"रंग में भंग" और "जयद्रथवध" आपके दो अतिआदृत खण्ड-काव्य हैं, जिनमें वीररस का अति सुन्दर और काव्योत्कर्ष से परिपूर्ण परिपाक हुआ है। विकट भट, वक-संहार, वन वैभव और सैरन्ध्री में भी वीररस के मार्मिक दृश्य हैं। देखिये —

पल में खल पिस उठा भीम के आलिंगन से,
दाँत पीसकर लगे दवाने वे घन घन से,
चिल्लाता क्या, शब्द सन्धि थी किधर गले की,
आ जा न सकी सांस इधर से उधर गले की;

मुख नयन श्रवण नासादि से शोणितोत्स निर्गत हुआ।
वस हाडों की चड़मड़ हुई यों वह उद्धत हत हुआ।

गुप्तजी के काव्य में सबसे बड़े गुण हैं ओज और प्रसाद। भाषा ऐसी स्वच्छ, चमकीली और सर्वजन सुलभ होती है कि उसे पढ़कर हमारे देश के अधकचरे ग्रामीण और किसान भी समझ लेते हैं। आधुनिक हिन्दी-कवियों में गुप्तजी का शीर्ष स्थान है और वे सब से अधिक प्रतिभाशाली हैं। यद्यपि यह सच है कि उनकी प्रतिभा का सर्वोच्च शिखर उनकी इतर कृतियों में ही प्रकट हुआ है, किन्तु आधुनिक वीर काव्य के उन्नायकों में वे अग्रणी हैं। उनकी कविताओं ने सुप्त देश को जागरण और निष्काम कर्मयोग की दीक्षा दी है। निराशा से भरे म्लान मन को उन्होंने आशा और उत्साह का मंत्र पढ़ाया है। उनकी ऐसी कृतियाँ कौन भूल सकता है?

विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी।
मरो परन्तु यों मरो कि याद तो करें सभी।
हुई न यों सुमृत्यु तो वृथा मरे वृथा जिये।
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिये।
यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आपही चरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे।

जीवन-युद्ध में, राष्ट्र के स्वाधीनता-संग्राम में और विश्व-त्राण की चिन्ताधारा में खपकर अपने को मिटा देने की

ओजमयी प्रवृत्तियाँ इनकी वाणी से फूटी हैं। एक वीर क्षत्रिय का चित्र देखिये—

> निर्भय मृगेंद्र नया करता प्रवेश है—
> वन में ज्यों, डाले बिना दृष्टि किसी ओर त्यों
> भोर के भभूके-सा प्रविष्ट हुआ साहसी
> बालवीर मन्द-मन्द धीर गति मे धरा
> मानो धँसी जा रही थी, वदन गँभीर था
> उठता शरीर मानों अगे में न आता
> वक्षस्थल देख के कपाट खुले जाते
> मरने मारने ही को मानों कटिथी कर
> शोभित सुखड्ग उसमें था खरेपानी व
> पतली पड़ी थी उपवीत तुल्य कन्धे
> उसमें कटार खोंसी, जिस
> करने को भौंहें भव्य भाल

देशाभिमान और संस्कृति का गौ
पंक्ति में फूटा पड़ता है। आ
इनकी कृतियों से जगमग करता उठता
काल से लेकर आज तक गुप्तजी एक
काव्य की श्रीवृद्धि करते आये हैं।
भावनाओं के वे सर्वाधिक सफल कवि
चमक पायी है।

श्रीगयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
काव्य के निर्माताओं में हैं। देश के न
रससिद्ध कविताओं द्वारा बहुत
शौर्यपूर्ण कविताएँ लिखनेवाले हिन्दी

यात है। उनकी उन रचनाओं में वीर रस की अभिवृद्धि तो अवश्य हुई है, परन्तु वे जीवन के अधिक निकट नहीं आ सकीं। यद्यपि इनकी काव्य-कला ऐसे छन्दों में पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुई है।

लघु मिट्टी का पात्र था स्नेह-भरा जितना, उसमें भर जाने दिया।
धर बत्ती हिये पर कोई गया चुपचाप उसे धर जाने दिया।
परहेतु रहा जलता मैं निशाभर मृत्यु का भी डर जाने दिया।
मुसकाता रहा बुझने-बुझने, हँसते-हँसते सर जाने दिया!

और भी—

पीगई ज़हर जब ज़हर बुझाई गई,
अनुगामिनी हो नीलकण्ठ भगवान की।
सोख गई अरि का सुयश-सिन्धु पल ही में,
घूँट गई घूँटी है अगस्त्य अभिमान की।
डूब-डूब रुधिर की धारा में न तृप्त हुई,
बान पड़ी वेढब इसे है रक्तपान की।
आप पानीदार किये पानीदार पानी-हीन,
तो भी न बुझानी प्यास रावरी कृपान की।

सनेहीजी हमारे राष्ट्रीय कवि हैं। भाषा की सादगी आपकी कविता की विशेषता है। और सादा जीवन और उच्च विचार की तो वह जैसे प्रतिमूर्ति है। देखिये, यह भाषाऔर यह वेग!

तुम होगे सुकरात ज़हर के प्याले होंगे,
हाथों में हथकड़ी पदों में छाले होंगे।
ईसा से तुम और जान के लाले होंगे,
होगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होंगे।

ओजमयी प्रवृत्तियाँ इनकी वाणी से फूटी हैं। एक वीर क्षत्रिय का चित्र देखिये—

> निर्भय मृगेंद्र नया करता प्रवेश है—
> वन में ज्यों, डाले बिना दृष्टि किसी ओर त्यों
> भोर के भभूके सा प्रविष्ट हुआ साहसी
> बालवीर मन्द मन्द धीर गति से धरा
> मानो धँसी जा रही थी, वदन गँभीर था
> उठता शरीर मानों आगे में न आता था
> वक्षस्थल देख के कपाट खुले जाते थे
> मरने मारने ही को मानों कटि थी कसी
> शोभित सुखड्ग उसमें था खरेपानी का
> पतली पड़ी थी उपवीत तुल्य कन्धे में
> उसमें कटार खासी, जिसकी समानता
> करने को भौंहें भव्य भाल पर थीं तनी

देशाभिमान और संस्कृति का गौरव इनकी कविता की पंक्ति-पंक्ति में फूटा पड़ता है। आत्म-बलिदान और आत्म-समर्पण इनकी कृतियों से जगमग करता उठता है। खड़ीबोली के उदय-काल से लेकर आज तक गुप्तजी एक ही गति से हिन्दी के वीर-काव्य की श्रीवृद्धि करते आये हैं। हिन्दू-संस्कृति की वीर भावनाओं के वे सर्वाधिक सफल कवि हैं। उसने उनसे एक नवीन चमक पायी है।

श्रीगयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और 'त्रिशूल' भी आधुनिक वीर काव्य के निर्माताओं में हैं। देश के नवजागरण में आपने अपनी रससिद्ध कविताओं द्वारा बहुत कुछ योग दिया है। ऐसी शौर्यपूर्ण कविताएँ लिखनेवाले हिन्दी में कम ही हैं। परन्तु एक

चात है। उनकी उन रचनाओं में वीर रस की अभिवृद्धि तो अवश्य हुई है, परन्तु वे जीवन के अधिक निकट नहीं आ सकीं। यद्यपि उनकी काव्य-कला ऐसे छन्दों में पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुई है।

लघु मिट्टी का पात्र था स्नेह-भरा जितना, उसमें भर जाने दिया।
धर बत्ती दिये पर कोई गया चुपचाप उसे धर जाने दिया।
परहेतु रहा जलता मैं निशाभर मृत्यु का भी डर जाने दिया।
मुसकाता रहा बुझते-बुझते, हँसते हँसते सर जाने दिया।

और भी—

पीगई जहर जब जहर बुझाई गई,
अनुगामिनी हो नीलकण्ठ भगवान की।
सोख गई अरि का सुयश-सिन्धु पल ही में,
घूँट गई घूँटी है अगस्त्य अभिमान की।
डूब-डूब रुधिर की धारा में न तृप्त हुई,
बान पड़ी वेढब इसे है रक्तपान की।
आप पानीदार किये पानीदार पानी हीन,
वा भी न बुझानी प्यास रावरी कृपान की।

सनेहीजी हमारे राष्ट्रीय कवि हैं। भाषा की सादगी आपकी कविता की विशेषता है। और सादा जीवन और उच्च विचार की तो वह जैसे प्रतिमूर्ति है। देखिये, यह भाषाऔर यह वेग!

तुम होग सुकरात जहर के प्याले होगे,
हाथों में हथकड़ी पदों में छाले होंगे।
ईसा से तुम और जान के लाले होगे,
होगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होंगे।

होना मत तुम व्याकुल कहीं इस भवजनित विषादसे।
अपने आग्रह पर अटल रहना बन प्रह्लाद से॥
होंगे शीतल तुम्हें आग के भी अंगारे,
मर न सकोगे कभी मौत के भी तुम मारे।
क्या गम है गर छूट जांयगे साथी सारे,
बहलायेंगे चित्त चन्द्र चमकीले तारे।
दुख में भी सुख शान्ति का नव अनुभव हो जायगा।
प्रेम - सलिल से द्वेष का, सारा मल धो जायगा।

सनेहीजी ने देश की जागती हुई जनता को कर्तव्य का पाठ पढाया है और अपनी आन बान पर मर मिटने का आह्वान किया है। आप एक भावुक कवि और प्रतिभाशाली वीर-काव्य-सृजेता हैं। आपने कोई बडा काव्य यद्यपि वीररस की पृष्ठभूमि लेकर नहीं लिखा है, परन्तु आपकी फुटकर कविताएँ ही कई सग्रहो में निकल सकती हैं। देशप्रेम की ऐसी कठिन साधना अन्य कवियो की कविताओ मे कम दीखती है।

परन्तु वीर काव्य के आधुनिक प्रवाह में जो एक सर्वथा नूतन धारा आयी है, सनेहीजी उस धारा के प्रतिनिधि हैं, जो आज अतीत की वस्तु है, परन्तु काव्य के इतिहास मे जिसका स्थान सुरक्षित है। उनकी शैली पर आज कविता लिखनेवाले और येन केन प्रकारेण देश की वीरभावना को जागृत रखनेवाले सेकडो कवि हैं। और उनमें सब से प्रमुख अनूप जी हैं, जिनका उल्लेख आगे होगा।

सनेहीजी के वीरकाव्य के दो रूप हैं। उनका प्रधान रूप तो वह है जिसमे उन्होने सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, माधव शुक्ल और रामनरेश त्रिपाठी के साथ देश प्रेम का पाठ पढने वाले नवयुवकों को उद्बोधित करके उन्हे जीवन-सग्राम में खड़े होने और डटकर लडने का प्रोत्साहन दिया है। दूसरी ओर

उन्होंने घनाक्षरी और सवैया छंदों में वीररस की कविता लिखकर (खड़ी बोली और ब्रज भाषा दोनों में) एक नूतन शैली की नींव डाली है। दोनों रूपों में सनेहीजी की सेवा स्मरणीय है। और—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं नरपशु निरा है और मृतक समान है।

ऐसी पंक्तियों के गायक के रूप में तो वे सदैव हिन्दी भाषी जनता को स्पर्श करते रहेंगे जीवन के सात्विक उत्सर्ग और साधना से पूर्ण वृत्तियों के ऊहापोह का दर्शन आपकी रचनाओं का क्षेत्र है। गांधीवाद के देश, साहित्य एवं समाज-व्यापक प्रभाव से आप पूर्ण रँग गये हैं।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' की कविताएँ राष्ट्र की विराट सर्वव्यापी चेतना से ओतप्रोत हैं। मन की सुकुमार वृत्तियों का संकेतदान करते समय भी वे—'क्योंकि माता हिमकिरीटिनि माँगती है दान'—जैसी आवाहन करनेवाली पंक्तियाँ लिख जाते हैं। उनकी 'एक पुष्प की अभिलाषा' देखिये—

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर, हे हरि, डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ पर जावें वीर अनेक।

न जाने कितने नवयुवकों और नवयुवतियों की यह साध होगी! किसी अज्ञात शहीद के लिए वे लिखते हैं—

तरुण तपस्वी आ तेरा कुटिया में नव स्वागत होगा।
दोषी तेरे चरणों पर फिर मेरा मस्तक नत होगा॥

'कोकिला और कैदी' की कुछ पंक्तियाँ लीजिये—

तुझे मिली हरियाली डाली
मुझे नसीब कोठरी काली
तेरा नभभर में सचार
मेरा दस फुट का ससार
तेरे गीता उठती वाह
रोना भी है मुझे गुनाह !

इस हुकृति पर अपनी कृति से और कहो क्या कर दूँ, कोकिल बोलो तो।
मोहन के व्रत पर प्राणों का आसव किसमें भरदूँ, कोकिल बोलो तो।
इस शान्त समय में अन्धकार को भेद रो रही हो क्यों, कोकिल बोलो तो।
चुपचाप मधुर विद्रोहबीज इस भाँति बो रही हो क्या, कोकिल बोलो तो।

आपकी पंक्तियों में उर्दू भाषा की पूर्ण व्यञ्जना और मादकता है। निर्वासित बन्दी के जीवन की सारी वेदना और बेबसी आपकी कृतियों का गुण है।

क्या देख न सकती जजीरों का गहना ?
हथकड़ियाँ क्यों, यह ब्रिटिश राज का गहना !

आपकी कविता मे बलिदान की ज्वाला है, मर मिटने की चाह है। और हैं अपने को खपाकर नव-जीवन सचार करने की मादक प्रवृत्ति। आप सच्चे भारत भक्तो और आजादी का नारा लगानेवाले एक भावुक गायक हैं। टीसों और अगारों से आपका काव्य भरा पडा है। राष्ट्रदेवता के लिये आपका यह कथन कितना स्पर्शी है !

मार डालना किन्तु क्षेत्र म जरा खडा रह लेने दो
अपनी बीती श्री चरणा म कुछ भी तो कह लेने दो

आपकी काव्यधारा राष्ट्र के जागरूक यौवन से अनुप्राणित है। भारतीय इतिहास की अमर तिथियों में जब लाहौर षड्यन्त्र-केस के कैदी अनशन कर रहे थे चतुर्वेदीजी ने "मरण त्यौहार" कविता लिखी थी। उनकी ये पंक्तियाँ देखिये और मोम के दीप अमर शहीदों की भावना में—

बेकलेजे हों कठिन तप लादकर
अब स्मशानों को स्वयं आबादकर
एक से लग एक हम जलती रहें
और बलि बहने उड़ें, फलती रहें
सूर्य की किरणें कभी तो आयेंगी
जलन की घड़ियाँ उन्हें ले जायेंगी

× × ×

यमुनेश चलो जहाँ सहार है।
वन्य पशुओं का लगा बाजार है
आज सारी रात दुर्रंग वहां
मोम-दीपों का मरण त्योहार है।

जितनी करुण वेदना, राष्ट्रीय भावना और जलन इस कविता में है वह कठिनता से हिन्दी की दो चार कविताओं में मिलेगी।

चतुर्वेदीजी का विशाल कवित्व ऐसी ही कविताओं की भूमिका में हमारे सामने आता है। वे आधुनिक वीरकाव्य के उन्नायकों में हैं, यद्यपि उनकी कविताएँ युगधर्म के उस पार नहीं झाँक पातीं। देशव्यापी विराट आन्दोलन और स्वाधीनता का धर्म-युद्ध ज्यों का-त्यों उनकी प्राणप्रद कविताओं में उतर

आया है। गांधीवाद के भावनात्मक गीति-प्रतिनिधि होने के कारण वे हमारे गौरव हैं। और इस प्रकार चतुर्वेदीजी सच्चे अर्थों में वीरकाव्य के सृजेता हैं।

निरालाजी आधुनिक हिन्दी-काव्य के युगस्तम्भ तो हैं ही, उसके युगान्तरकारी प्रवर्तक भी हैं। उनके अन्दर शक्ति का वह 'डाइनामाइट' है जो हमारी राष्ट्रीय चेतना को सजीव वाणी देता हुआ हमारे इतिहास के गौरव और दर्प को सतेज एवं सक्रिय कर देता है। कविता को शृंखलाबद्ध नियमों की जड़ता से मुक्त करके निरालाजी ने मौलिक अतुकान्त छन्दों की सृष्टि की है। उनकी भाषा में एक साधी हुई कला है—एक चरम बौद्धिक और रसात्मक सृजन। उनका ओजपूर्ण मुक्त प्रवाह कविता में पुरुषार्थ का एक ऐसा नवीन जीवन ले आता है, जिसकी यौवनोचित ज्वाला में पुरानी साहित्यिक रूढ़ियाँ और वर्तमान कालीन काव्य-गत एकरसता तृणवत् समाप्त हो जाती है। मानवता के प्रति ऐसी गहरी समवेदना और सांस्कृतिक उत्कर्ष के प्रति ऐसा विराट मोह, ये दोनों, इस कवि की कृतियों में एक साथ ही निखरते हैं। प्रचलित भाषा में अपने पुरुषार्थ के ओज से जीवन फूँकनेवाला यह महाकवि अपनी भावना की निविडता और वीरत्व के महानतम कृतित्व के कारण युग-युग तक अमर रहेगा। निम्नांकित 'जागो फिर एक बार' कविता में जो ललकार है वह मुर्दों में भी प्राण भर देगी।

जागो फिर एक बार।
पशु नहीं, वीर तुम,
समर शूर क्रूर नहीं,
कालचक्र में हो दबे,
आज तुम राजकुँवर! समर सरताज!

पर क्या है,
सब माया है—माया है
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधाविहीन बन्ध छन्द ज्यों
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द-रूप
महामन्त्र ऋषियों का
अणुओं-परमाणुओं में फूँका हुआ—
तुम हो महान, तुम सदा हो महान
है नश्वर यह दीन भाव
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी है नहीं पूरा यह विश्वभार—
जागो फिर एक बार।

'महाराज शिवाजी का पत्र' और 'आवाहन' कविताओं में कवि का यह शक्तिपुञ्ज और भी सप्राण हो उठा है। आवाहन की ये पंक्तियाँ लीजिये—

एक बार बस और नाच तू श्यामा,
सामान सभी तैयार।
कितने ही हैं असुर, चाहिये कितने तुझको हार?
कर-मेखला मुण्डमालाओं से बन मन-अभिरामा—
एक बार बस और नाच तू श्यामा।
भैरवी मेरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ायेगी जब तुझसे पंजा;
लेगी खड्ग और तू खप्पर,
उसमें रुधिर भरूँगा माँ

मैं अपनी अंजलि भर-भर
उँगली के पोरों में दिन गिनता ही जाऊँ क्या माँ ?
एक बार बस और नाच तू श्यामा !

निरालाजी की कविता में वैसी ही गम्भीरता है जैसी सागर के गुरु-गर्जन में होती है, वैसी ही शक्ति है जैसी ज्वालामुखी में होती है; और वैसा ही संघर्ष है जिससे विद्युत् की प्राणमयी धारा फूटती है। हिन्दीकाव्य के जागरण काल मे फूँकी हुई कवि निराला की भैरवी ने वीर-काव्य मे जिस प्रभात का सूत्रपात किया वह आज मार्तण्ड-मंडित मध्याह्न में बदल चुका है। निरालाजी ने विधाता को चैलेंज करके बहुत पहले लिखा था—

मेरा अन्तर वज्र कठोर
देना जी भरसक झकझोर

यह कवि सामाजिक विद्रोह की जीती जागती मूर्ति है। विद्रोह की विजय-कामना की भावना इसकी पंक्ति-पंक्ति में उपस्थित है। ओज पूर्ण वृत्तियों की जितनी अभिव्यक्ति इस कवि के काव्य में मिली है उतनी हिन्दी मे किसी आधुनिक कवि के काव्य मे नही। कवि का 'स्पिरिट' ही वीर-काव्य के अनुरूप है; क्योंकि जहाँ गीत के साथ विचारों का बन्धान कवि की कविता में नहीं है वहाँ अपने धारावाहिक वक्तृत्व के ओज पर भी वह बढ़ता जाता है। कवि में एक सुसगठित उच्छृङ्खलता है, जो सुनने में चाहे जितनी 'पैराडाक्सिकल' जान पड़े, परन्तु कोई भी उससे इनकार न कर सकेगा। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति-पूजा' मे सर्वाधिक ओजपूर्ण प्रतीक व्यंजना है। उसमें मानव की क्रियाशील युद्धोन्मुख सशक्त प्रेरणाओं का बड़ा ही स्फूर्ति-मय चित्रण हुआ है।

इसके अतिरिक्त 'वह तोड़ती पत्थर' 'दीन भिखारी' आदि कविताओं में मानव के वर्तमान जीवन की विवशताओं और बेचैनियों के बड़े ही कड़ुए और सच्चे चित्र मिलते हैं। समाज की बुनियादें सदैव ऐसे ही क्रान्तिकारी काव्य से हिली हैं और आज के युग में तो ऐसी आघातकारिणी रचनाएँ जितनी ही अधिक हों उतना ही श्रेयस्कर है। यह निराला जैसे प्रतिभाशाली कवि का ही कृतित्व है कि एक ओर उनकी 'राम की शक्ति पूजा' जैसी कविताएँ 'मेघनाथ वध' जैसे आधुनिक महाकाव्य से टक्कर लेती हैं और दूसरी ओर 'वह तोड़ती पत्थर' और 'भिखारी' माइकोवैस्की' जैसे क्रान्तिद्रष्टा रूसी कवियों से। आधुनिक वीरकाव्य के हिन्दी कवियों में बौद्धिक पृष्ठभूमि निराला जी की सबसे मजबूत और ठोस है और उनका काव्य यदि एक ओर रक्तोद्दीपनकारी हिल्लोल पैदा करता है और खून में ऊष्मा का सचार करता है तो दूसरी ओर दिमाग को चिन्तन की प्रचुर सामग्री भी देता है। यही महाकवि के उपकरण है।

निरालाजी ने ही हिन्दी-काव्य में सर्वप्रथम युगान्तर और जागरण का शङ्ख बजाया है। भले ही वे निरक्षर और अधपढ जनता के कवि न रहे हों, परन्तु शिक्षित और उच्चशिक्षित वर्ग में उनकी रचनाएँ बड़ी ही प्रिय हुई हैं। उनके ओज में एक खास किस्म का सयमन Culture है जो उसे और भी मौलिक और एक विशेष प्रकार के व्यक्तित्व की वस्तु बना देता है। एक प्रकार से यथार्थवादी वीरकाव्य के आविर्भावक के रूप में यह महाकवि सदैव हमारे साहित्य में स्मरणीय रहेगा।

'नवीन' जी की कविता में एक विलक्षण ज्वाला है जिसे हम सर्वभक्षी ज्वाला कह सकते हैं। राष्ट्र के विप्लव-यज्ञ के एक

चिर तरुण सिपाही होने के नाते कवि नवीन ने जो 'मारू' राग गाया है वह सदैव काव्य-प्रेमियों को उद्वेलित करता रहेगा। राष्ट्रीयता, शौर्य और सामूहिक दुःखानुभूति को काव्य में स्थापित करके नवीनजी ने हिन्दी-कविता की निष्प्राणता और अशक्ति दूर की है। अपने ढङ्ग के वे एक ही कवि हैं। एक साधक की-सी आग लिये उनकी वाणी हमें बलि पथ की ओर इङ्गित करती है। उनकी 'विप्लव गायन' शीर्षक बहुत प्रसिद्ध कविता के कुछ अश तो पौरुष और पराक्रम की अभिव्यजना में अपना सानी नहीं रखते।

माता की छाती का अमृतमय पय कालकूट हो जाये।
आँखों का पानी सूखे वे शोणित की घूँटें हो जायें।
एक ओर कायरता काँपे गतानुगति विगलित हो जाये।
अन्धे मूढ विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाये।
और दूसरी ओर कँपा देनेवाला गर्जन उठ धाये।
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराये।
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये।

और भी—

एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये।
प्राणों के लाले पड़ जायें त्राहि-त्राहि रव नभ में छाये।
नाश और सत्यानाशों का धुँआधार जग में छा जाये।
बरसे आग जलद जल जायें भस्मसात भूधर हो जायें।
पाप-पुण्य सद्सद्भावों की धूल उड़ उठे दायें बायें।
नभ का वक्षस्थल फट जाये तारे टूक टूक हो जायें।

'नवीन' शक्ति का उपासक कवि है। उसकी वीरता, उसका

शौर्य बलिदान है, आत्मोसर्ग उसकी निधि है और प्रलय उसकी प्रेरणा। उसकी रचनाएँ पढ़-पढ़कर न जाने कितनों को आत्म-गौरव का बोध हुआ है, कितनों को आत्मदान की उल्लसित प्रेरणा मिली है। उसकी कविताएँ पढ़कर उर्दू के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि 'जोश' और बँगला के तूफानी कवि नजरुल-इस्लाम का स्मरण हो आता है। वे एक उगते राष्ट्र के कवि हैं और उनकी कविता में उनकी सारी उमंग, सारी आकांक्षाएँ और चेतनाएँ भरी पड़ी हैं।

नवीनजी तरुणाई के कवि हैं, यौवन के चित्रकार हैं। पवन की भीषण ज्वाला में मुसकानेवाले, बाधाओं को चीरकर इष्ट पथ पर बढ़ते जानेवाले और प्रबल प्रलोभन में भी अविचल धैर्य दिखानेवाले निर्विकार तप्त स्वर्ण से शक्तिपुंज के प्रतीक उनके काव्य में भरे पड़े हैं। अपनी मार्क्सवादी कविताओं में उन्होंने स्वयं 'जगपति' का टेंटुआ घोंटा है और एक निदारुण जागृति का कड़खा गाया है। नवयुग की गंगा के पीछे दीवाने इस हठी भगीरथ ने कितनी ही ऐसी कविताएँ लिखी हैं जिनमें आँधी का सा वेग है, हिमालय-सी उच्चता है और जीवन की सच्ची से सच्ची अनुभूति है। बन्दीजीवन के जैसे करुण, द्रावक और कटु चित्र हमें कवि नवीन की कविता में मिलते हैं वैसे किसी हिन्दी-कवि की कविता में नहीं। वास्तव में वे बन्दीजीवन के कवि हैं भी।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान हिन्दी की सब से बड़ी महिला कवि हैं जो वीर-काव्य की धारा में पूर्णरूपेण बही हैं। उनकी 'झाँसी वाली रानी' शीर्षक कविता हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ Ballad है। जनता के प्राणों तक पहुँचकर उसकी वीर-पूजा की

भावना को उत्तेजितकर इस कविता ने लाखों हृदयों में नव जागरण की रश्मियाँ फैलाई हैं।

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी।
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नई जवानी थी।
छिनी हुई आज़ादी की क़ीमत सबने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।

× × ×

इनकी गाथा छोड़ चलें हम झाँसी के मैदानों में।
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मरदानों में।

यही नहीं, राष्ट्र के नवजवानों को पुकारती हुई उनकी ये पंक्तियाँ देखिये—

इस बुन्देलों की झाँसी में शस्त्रों बिना तार कैसा ?
देश-प्रेम की मतवाली को जननी पुरस्कार कैसा ?
आज तुम्हारी लाली से माँ के मस्तक पर हो लाली।
काली जंज़ीरें टूटें काली जमुना में हो लाली!
हर पत्थर पर लिखा जहाँ बलिदान लक्ष्मीबाई का।
कौन मूल्य है वहाँ सुभद्रा की कविता चतुराई का!

और भी देखिये जलियानवाला बाग़ में वसन्त का चित्रण—

कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा-खाकर।
कलियाँ उनके लिये गिराना थोड़ी लाकर।

आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं।
अपने प्रिय परिवार देश से भिन्न हुए हैं।
कुछ कलियाँ अधखिली यहाँ इसलिये चढ़ाना।
करके उनकी याद ओस के अश्रु बहाना।

जिस बहिन का भाई जेल गया है उसका राखीक्रन्दन देखिये—

मैं तो हूँ बहिन किन्तु भाई नहीं है।
है राखी सजी, पर कलाई नहीं है।
है भादों घटा किन्तु छाई नहीं है।
नहीं हर्ष है पर रुलाई नहीं है।
मेरा बन्धु माँ की पुकारों को सुनकर
के तैयार हो कैदखाने गया है।
छिनी है जो आज़ादी माँ की उसी को,
वो ज़ालिम के घर में से लाने गया है।

अरबी मोहर्रमी गीतों के टक्कर की द्रावकता और प्रेरणा इन गीतों में छिपी पड़ी है। भाई के गिरफ़्तार होने की घड़ियों में उनकी वीर राजपूत-बाला की-सी मुद्रा देखिये—

मैं प्रफुल्ल हो उठी कि आहा आज गिरफ्तारी होगी।
फिर जी धड़का क्या भैया की सचमुच तैयारी होगी!
आँसू छलके याद आगई राजपूत की वह बाला।
जिसने विदा किया भैया को देकर तिलक और भाला।
सदियों सोई हुई वीरता जागी, मैं भी वीर बनी।
जाओ भैया तुम्हें विदा करती हूँ, मैं गंभीर बनी।

और भी देखिये, अपने को माँ के मन्दिर में चढ़ा देने की अनन्त मनुहार—

कलेजा मा का मैं, सन्तान करेगी दोषों पर अभिमान।
मातृवेदी पर घटा बना बढ़ाओ मुझको हे भगवान।
सुनूँगी माता की आवाज रहूँगा मरने को तैयार।
कभी भी उस वेदी पर देव न होने दूँगी अत्याचार।
न होने दूँगी अत्याचार चलो मैं हो जाऊँ बलिदान।
मातृमंदिर म हुई पुकार चढ़ा दो मुझको हे भगवान।

सुभद्राजी की कविताओं में हमारे देश का जागृत नारीत्व राजनैतिक बन्धनों के प्रति हाहाकार कर उठा है। मध्यकालीन राजपूती आन और बान लिये हुए इस वीर कवयित्री ने सोते हुए देश को जगाने के जो प्रयास किये हैं वे काव्य में मंडित और चमत्कार से अलंकृत हैं। उनकी प्रत्येक कविता में राष्ट्र की चेतना सुलगाने के लिए एक चिनगारी है। राजनैतिक आन्दोलन के उस काल में लिखी गई ये स्पर्शी और हृदय हिला देनेवाली कविताएँ आज भी हमारे खून में गर्मी ला देती हैं। दुःख है कि सुभद्रा जी अब नहीं लिखतीं, वरना आज तो कवि देश के आर्थिक वैषम्य और जनता के अनियन्त्रित शोषण के प्रति और भी उत्तरदायित्व शील हो उठा है।

श्री अनूप शर्मा हिन्दी के एक परम ओजस्वी और स्पर्शी कवि हैं। हिन्दी की उदयकालीन धारा के ये एक वीर कवि हैं। 'सनेही' जी की काव्य शैली पर उनकी धारा का विकास हुआ है। यहाँ तक कि वे 'वर्तमान भूषण' की उपाधि से भी विभूषित किये गये हैं और उनकी 'घनाक्षरियाँ' तो भूषण के पुष्ट और आवेगपूर्ण छन्दों का स्मरण दिलाती हैं। इनकी "स्वतन्त्रता आवाहन" कविता में से एक छन्द देखिये—

होता उच्च व्योम में निशूल जो निशूलनी का
भू पै गिरती है तारिकायें टूट टूट के।

व्योम पे न उगते उदधि पै न अस्त होते,
चन्द्र मन्द होते हैं महेश जटाजूट के।
शम्भु शैल शिखर रदद्युति प्रकाशकर,
करतीं कभी है अट्टहास सुधा घूँट के।
होते हैं धनञ्जय जिगीषु महाभारत के,
होते निधनजय विभासु कालकूट के।

आपके "पानीपत" शीर्षक से लिखे गये छन्दों में से दो बड़े ही वीरत्व और चमत्कारपूर्ण हैं—

चरण दबाया न यहीं पै एक जाओ बन्धु,
नाश महाराष्ट्र का पड़ा है पगतल में।
एक इतिहास सा उठा था महीगर्भ में हा,
सो गया है लेके करवट हलचल में।
म्यारह बने नहीं छतरियाँ यहाँ हैं किन्तु,
नमता निधन की विलोको समतल में।
निश्व की विषमता विनाश कई बार हुई,
रक्त शस्य उपजी अलक्त अन्द जल में।

इसही रणस्थल के वक्ष पै अनेक बार,
खप्पर सँवारती रही है क्रुद्ध कालिका।
सिंह पै सवार हो कराल वेष धारती हो,
धायी फिरी कर में कपाल ले कपालिका।
छूट गालानल के तमिस्र धूमधाम मध्य,
चमकी प्रचण्ड चन्द्रहास वज्र ज्वालिका।
पूत हुई रक्त में नहा के पूत पावना-सी
वीर मुण्डमाला की गँभीर मुण्ड मालिका।

'अनूप' जी की भाषा में बड़ा प्रवाह है। छन्द भी उनके कवच की भाँति कठोर और लचकीले होते हैं। वे अपनी शैली

के बड़े ही प्रभावशाली कवि हैं। संस्कृत के विद्वान होने के कारण इनकी भाषा मे बड़ी चेस्टिटी है और एक विलक्षण माधुर्य्य भी।

बधिक से स्वतन्त्रता छिनने के क्षणों मे मृग कहता है—

विनय हमारी यदि ध्यान दे सुनो तो फिर
आपका भला हो यम की भी इच्छा फल जाय
आपकी व्यथा से जो व्यथा है मम मानस मे,
वह भी किसी न किसी भाँति ही से टल जाय!
इतनी भलाई तो अवश्य करो मेरे छग
जीवन-प्रदीप स्नेहहीन हो न जल जाय!
जीतेजी स्वतन्त्रता न छीनो हे बधिक! बस
एक तीर मार दो कलेजे से निकल जाय!

पराधीन होनेवाले की कैसी छटपटाहट इन पंक्तियों में रो रही है। इसी प्रकार कारागृह में पड़े हुए सिंह को सम्बोधित करके आपने उसकी सुप्त वीरता का आह्वान किया है।

८९ गज-गंड-गामिनी भी अनुगामिनी थी
यामिनी मे दामिनी का गमन गुलाम था
सोये हुए तुझको जगाना एक वीरता थी
जागे हुए तुझको सुलाना एक काम था

'अनूप' जी की कविता पढ़कर वीररस नसों मे हिलोरें मारने लगता है और मांस-पेशियो मे स्पंदन हो उठता है। पुरानी परिपाटी के चमत्कार-वादी कवि होते हुए भी वे आधुनिकता से दूर नहीं है। परुष और कठोर, पाहन और कुलिश वृत्तियो का इनके काव्य मे अच्छा परिपाक हुआ है। 'सिद्धार्थ' नामक आपने एक महाकाव्य भी लिखा है। परन्तु उनका कवि उनके मुक्तक

म ही सर्वाधिक खिन्न पाया है, जहाँ वह रक्त स्फूर्तिशक्ति की प्रचंड लीला के बीच में आनन्द बोध कराता है।

'सनेहीजी' और 'अनूप' के अतिरिक्त इसी शैली में वीर काव्य प्रस्तुत करनेवाले कवियों में श्री सेवकेन्द्र और अग्निवेश का भी नाम उल्लेखनीय है। इन कवियों की वीर काव्य की धारणा उतनी पुरानी और मध्य कालीन न होते हुए भी इनकी परिपाटी और छन्द-रचना पुराने ही ढङ्ग की है। 'केशव' कवि का 'शिवराज बावनी' भी इसी पुरातन चमत्कारवादी शैली पर लिखा गया एक उल्लेखनीय वीर काव्य है।

श्री उदयशङ्कर भट्ट पंजाब के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और हिन्दी के आधुनिक कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आपका 'तक्ष शिला' नामक काव्य ग्रन्थ वीर-काव्य की एक सुन्दर कृति है। 'पंजाब प्रशस्ति' शीर्षक कविता के कुछ अंश देखिये, जो "तक्षशिला" में दिये जाते हैं—

> जिसकी पावन रज से गुरु ने आजीवन कर धर्म प्रचार
> मृत प्राय हिन्दू जीवन में नवजीवन का किया प्रसार
> सिर दे दिया दिया टुक अपना धर्म न पैतृक पथ कल्याण
> किया विभव न्यौछावर सारा भारतीय गौरव के स्थान
> जहाँ हुए गोविन्द अमर से गुरु गोविन्दसिंह थे वीर
> अरिदल गञ्जन रण रञ्जन क्षमा दया के सजग शरीर
> सिक्ख धर्म के वीर कर्म के गौरवमय गुरु नय के धाम
> गति जीवनके मात सज्जनके धन निर्धनके मुकुट ललाम
> जहाँ वीर माता के पय को उज्ज्वल करते बालक वीर
> जहाँ आय जन विस्मृति को फिर पैदा करते दे सिर धीर
> जहाँ विपत्तिग्रस्त नरों का अपना गौरव एक सहाय
> जहाँ धर्म की ठीक हकीकत दिखला गये हकीकतराय

भट्टजी का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उनकी एक जीवित शैली है। 'तक्षशिला' उनकी अति आरम्भिक कृति है। वे मानव-जीवन में व्याप्त वेदनाओं और कटु अनुभूतियों की ओर अग्रसर हुए हैं। संघर्षों के अन्तराल की चेतना उनके हृदय की धड़कन से एकाकार होकर उच्छ्वसित हो गई है। आज की सारी उथल पुथल और परिवर्तन, जो जीवन के चिन्ह हैं, मरण के नहीं, उनकी कविता में सजीव और मुखर होकर उतर आये हैं। पाषाण-खण्डों की रगड़ से चमकनेवाली आग तो क्षणिक होती है, परन्तु इस कवि की प्रतिभा से उठनेवाली ज्वाला, साहित्य की अमर निधि है, जो सुनप्राणों को स्फूर्ति प्रदान करती है। आज के मानव का चेतना-कङ्काल एक दुर्दमनीय वैषम्य और शोषण की टकराहट से उनकी कविता में प्रत्यक्ष मूर्तिमान हो चुका है। पढ़कर आँखों में उत्साह और सक्रियता का नशा छा जाता है। उनकी 'विसर्जन' शीर्षक कृति ऐसी ही रचनाओं का सकलन है। उसमे एक क्रान्ति का सिंहनाद है—विप्लव की अगार-माला है और इन्कलाब की नूतन ओजमयी वृत्तियाँ। यहाँ उसके दो उदाहरण पर्याप्त होंगे।

मैं अक्षय ध्रुव का मेरुदड मैं गगन नीलिमा-सा अनन्त
मैं अतल वितल का क्षितिज भाल मैं अधर धरा-तरु का सुदृन्त
विच्छुरित तारिका का विलास मेघों का धुँधला चित्र एक
मेरे जीवन की दीपशिखा पर बन आया सदसद्विवेक
मैं युगयुगान्त की पीड़ाएँ मानस में भर कर लाया हूँ
मैं पातालों का पेट चीर यन्त्रों की दुनिया लाया हूँ
मैं हृदय-विदारण कर नभका सब पूर चुका हूँ काल घाव
मै तोड़ चुका हूँ उदधि भेद मैं कुचल रहा अपना अभाव।

× × ×

ये और कोट से लघुशासक ये और कोट से राजतन
मेरे आग क्य न्हर सर्ग मैं मशनाश का महामत्र
मैं महा महिप का ले विशाण पाताल फोड नभ कहूँ पूर
अनभीष्ट अनधिकृत जाति वर्ग का कर अशेष कर चूरचूर
यम की डाढें कर वेगवान कुचलूँ अशेष लघु औ' विशाल
फल मेरा हो यशागान निर्बल देशा का महाकाल
मेरे घूर्णन पर महानाश पग पग पर आग उठता है
मेरी दहाड़ पर कम्प कण्ठ पद स्खलित विश्वबलि चढता है

अब उनके विद्रोही का रूप देखे—

मैं विद्रोही अनिल अनल बल जल भूतल पर प्रबल प्रलय हूँ
मैं कृतान्त की भृकुटि,नियतिकी आशा उत्सव सौख्य अभय हूँ
अविश्वास विद्रोह, अग्निकण फूटे मेरी आँख आँख स
नभने फुल्झड़ियाँ छूटी हैं चिनगारी उठ राख राख से
ठहर आँख में आँसू भरकर मूक प्रलय आवाहन कर लूँ
अरे, नाल मत यम श्वासों से प्यासा आहों को तर कर लूँ
इन ब्रह्माण्ड पिण्ड क गाल तोड ताड गोदी म धर लूँ
ठहरा नभगाश ले छुटकर नियत विश्व की मुख मे भर लूँ

और देखिये, मजदूर कहता है—

मैं शैल शिखर से साथ विभव वैरी से रगड मसल दूँगा
मैं यम डाढा से मरण साथ जीवन में उन्हें बदल दूँगा
हम हैं विराट के महारूप द्युत द्युमणि परम मुख सन्निधान
युग युग का मेरा रुद्रमौन मेघों के गर्जन सा महान

भट्टजी एक ओजस्वी कवि हैं। उनकी कविता मे पीडित मानवता का चीत्कार तो है ही, उसके जागरण की भी आहट है। विद्रोही सी शक्ति और ललकार लिये वे आज के युग मे

अपनी वीर काव्य-साधना में तल्लीन हैं। किसान, मजदूर और शोषित वर्ग के समग्र प्राणी आज उनमें वाणी पा रहे हैं।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कविताएँ वीरोचित लालसा और उद्वेलन से ओतप्रोत हैं। तारुण्य की स्फूर्ति और जीवन का संघर्ष भरा उद्दाम वेग उनकी पंक्ति-पंक्ति में बोल रहा है। भावना का तीव्र, बरसाती नदी का-सा, धुँआधार प्रवाह और एक मोहिनी ज्वाला लिये उनकी कविताएँ मानो युगधर्म की जीती जागती तसवीरें हैं। हमारे समाज में आज एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जो अमीरों और पूँजीपतियों के लिए अपने अस्तित्व का बलिदान किया करता है और उसके बदले में वह उन मध्यवित्त और अमीर लोगों से घृणा ही पाता है। इन गरीबों की बेबसी—इन अधनंगे, भूखों और दरिद्रों की विवशता—सदैव इस कवि को परिचालित रखती है और उसका हृदय विद्रोह की चिनगारियों से मुलसा करता है। मनुष्य, समाज, दैव या नियति किसी का भी हो, यह अत्याचार भी कैसा निर्भीषण है जिसके कारण जीवन में इतनी विषमता, पशुता और शून्यता आगई है! हमारे आज के जीवन की कृत्रिमता और कड़ुएपन की ओर उनकी सजग कलाकार जनोचित दृष्टि गई है। अपने गद्य में तो उन्होंने इस व्यवस्था पर कटु से कटु कशाघात किये ही हैं, अपनी कविता में भी वे जीवन के इस विद्रोहपूर्ण दृष्टिकोण को नहीं भूले हैं। यथा—

[१]

जग रे जीवन के राग जाग,
प्राणों की धूमिल आग जाग।
जो गिरते-गिरते उठ न सके
जो रोते-रोते हँस न सके

उन मरणशील इतिहासों के
उपवन के सुमन पराग जाग !

जग रे जीवन के राग जाग।
प्राणों की धूमिल आग जाग।

अन्तःनिःसृत निःश्वासों में—
अपमान-भरे उपहासों में—
जिनका अणु-अणु होगया भस्म !
उनके संस्मरण विहाग जाग !

जग रे जीवन के राग जाग।
प्राणों की धूमिल आग जाग।

पीड़ित जन की परवशता में
शोषित दल की दुर्बलता में
जो चिनगारियाँ सुपुप्त रहीं •
उनकी लपटों के नाग जाग !

जग रे जीवन के राग जाग।
प्राणों की धूमिल आग जाग।

[२]

क्यों गाऊँ, क्यों जी की जलन मिटाऊँ ?
क्यों न जलूँ तिल-तिल जीवन भर, जल-जल जलना जाऊँ !
रत्नाकर मरुभूमि बना दूँ,
मधुवन में ज्वाला दहका दूँ;
भेद मिटा दूँ जग-जीवन का,
अपने और परायेपन का;
बूँद-बूँद विप को पी-पीकर अमृत पर मुसकाऊँ !
क्यों गाऊँ, क्यों जी की जलन मिटाऊँ ?

आवागमन-नियति-बन्धन की—
प्राणों के लघु-लघु स्पन्दन की—

चुपके चुपके निधियाँ खोलूँ
क्षमाहीन अपराधी हो लूँ।
आँख मूँद लूँ, महागर्त का अन्धकार बन जाऊँ।
क्यों गाऊँ, क्यों जी की जलन मिटाऊँ?

महातृप्ति के अन्तिम कम्पन
और अस्वीकृति के उत्पीड़न
एक मात्र रजकण से तालूँ
मरघट की नीरवता हो लूँ
शुष्क अश्रुओं के चिह्नों को तहागार बनाऊँ।
क्यों गाऊँ, क्या जी का जलन मिटाऊँ?

कवि ने अपनी 'अन्तर्तमर्मी से' शीर्षक कविता में भी विषमता के नियमों में आग लगाने की चेष्टा की है। अपनी ललकारों से अनुप्राणित कविताओं में वाजपेयीजी का कवि बड़ा सशक्त और सबल है। निराशा का धुँधलापन उसे परिच्छन्न नहीं कर पाता। उसके सामने क्रान्ति का वह प्रोज्ज्वल आलोक-बिन्दु है जो मानव को अतिमानव और दानव को अतिदानव बना देता है।

इस प्रकार वाजपेयीजी वीरकाव्य की आधुनिक धारा के उल्लेखनीय प्रमुख कवियों में अन्यतम हैं।

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल' हिन्दी के नवोदित कवियों में बहुत ही ऊँचा स्थान रखते हैं। क्रान्ति के अनेक शक्तिशाली चित्र उन्होंने अपनी कविताओं में खींच दिये हैं। इतनी ज्वाला इतना विस्फोट और इतना विराट आतंक आज अन्य किसी कवि की कविता में नहीं है। अतीत की ओर से मुड़कर जब से यह कवि वर्तमान और भविष्य की ओर उन्मुख हुआ है, तब से हिन्दी-कविता में एक नई लहर आ गई है। इनकी कविता में

और निराशा के गहरेपन का सशक्त और सबल आभास है, दूसरी ओर समाज के नवनिर्माण का स्वप्न। युग और मानवता सजीव प्रगतिशील और दुर्दमनीय हुंकारें इनकी कविता में हैं।

हम बेचैन खड़े अकुलाते, किन्तु मरण त्यौहार न आता
घूम रहा है दृग दृग में फिर वही विदारक खूनी सपना
रक्तरंजिता आजादी की मूरति माँग रही बलि अपना
घूम रहे हैं लिये लुकाठी फिर हम बलिपन्थी मतवाले
आज स्वत्व का प्रश्न उठा है तत्पर बैठे हैं रणवाले
घार युद्ध की भूख हमें, अब तो हम से स्थिर रहा न जाता।
राह देखते हम मदमाते उठे नायकों की हुंकारें
देख आँधी सी कर आना सेनानी की क्रूर पुकारें
जीवन और मरण ये दोनों एक हम हम तरुण सिपाही
हमको लड़ना ही भाता हम काँटों के उन्मादक राही

युग की चरम प्रगतिशीलता उनकी हृदकम्पी कविताओं में भैरवी सी बोलती है। उदाहरण के लिए कवि की "शोषिता" शीर्षक कविता देखिए—

इसकी भी आई थी आभा सी बौराती प्रखर जवानी
किन्तु गई चुपचाप जमींदारों के भय की छोटी कहानी
उन जुल्मों की याद न पूछो जल उठता प्रतिरोम सिहरकर
दिल में किसका दीप जलाये मौन खड़ी है यह पनघट पर

अपने एक हाथ में विद्रोह की तलवार और दूसरे में प्रियतमा की पाती लेकर जब यह अतिभावुक तरुण सन्तप्त कवि पीड़ितवर्ग के निकट पहुँचता है, तो क्रान्ति का आवाहन करता हुआ कहता है—

आज चलो तुम घूँघट खोले किस मरघट की महा करालो
फूट रही पद नख ज्वाला से शोणित कुम्भों की सी लाली

झमक बोल उठने पग ध्वनि में नाश नरे घुँघरू अनबोल
दूर पिनाकी की टङ्कारें ने उठते आँधी ने शोले।
फिर दिगम्बरी के आनन से लोयों ने श्रृंगार सजाये
कौन चली आती तुम रूपसि रक्तलस अलकें उलझाये

× × ×

आज रक्त-रञ्जित झङ्काड़ों से उलझी चोली म चञ्चल
सर्व नाशिनी बिजली सी तुम तेजवत आती उच्छृङ्खल

अनाथ बच्चों की भूखभरी तिलमिलाहट, रिक्त नाग की आँतों का संघर्ष और बुझे हुए गन्तानदीप के सिरहाने बैठे श्रमजीवी, जिन्हें सुबह होते ही मिल को जाना है, कवि की वाणी में ज्यों के त्यों उतर आये हैं। जान पड़ता है, इस कवि की कविता में एक तीखी बिजली है—वेकड़के गिरनेवाली, जिसकी रक्ताभ शिखाओं में एक दिन सारा वैषम्य, सारा असम विभाजन और यह "कुछ का सुख" जलकर खाक हो जाने को है। इस नवप्रभात का एक सुन्दर दृश्य 'अचल' की कविता में मिलता है—

कोटि कोटि नंगे भूखे हम फिर तैयार खड़े सेनाना
इस पुनीत वेला के आते हम शोषित मजलूम भयङ्कर
तूफानों से युद्धातुर हो जाग उठे भैरव से थरथर
आज फड़कते भुजदण्डों में खौल रहा है खून हमारा
चीर चलें हम वक्ष व्योम का गूँजे तोरण नाद तुम्हारा
इंगित पर हम कूच करेंगे वीर दिगम्बर ओ लासानी!

कई वर्ष पूर्व इस कवि ने सर्वहारा को सम्बोधन कर लिखा था—

तुम भूखे पर इन सूखे चरणों में कितनी शक्ति महान?
लात मार दो जिस पत्थर पर वह भी बन जाये भगवान!

"आज मरण की ओर" कवि की बड़ी क्रान्तिकारी कविता है, जिसमें संसार के भूखे और टूटे जनों ने मिलकर ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा की है। देखिए—

ऊपर बहुत दूर रहता है शायद आत्मप्रवंचक एक
जिसके प्राणों में विस्मृति है, उर में सुखश्री का अतिरेक
जिसका ले ले नाम युगों से मांस लुटाते तुम रोये
किन्तु न चेता जो, निशि निशि भर जब न क्षुधातुर तुम सोये
आज अन्त हो जाय वहीं अभिशाप अनय रौरव-पोषक
करे वही दुर्दान्त महा उन्मत्त हड्डियों का शोषक !

कवि ने निम्नलिखित कविता में जो चित्र दिया है, वह
। 'जोश' और नजरुल इसलाम के "तरुण" का स्मरण
दिलाता है—

विद्रोही की ललकारों सी थी जिसके प्राणों की धड़कन
अरमान भरी ऊँची चितवन धुँधुआती मरघट में जीवन
जो छाती के झंखाड़ फुला सुलगाया करता चिनगारी
मुट्ठी भर श्वासों के बाहर निकला पड़ता जिसका तन मन
मस्ती के आलम चलते थे बेहोशी का सिंगार किये
थे साथ लगे जिसके अन्धड़ थे साथ लगे जिसके सागर

ऐसा जान पड़ता है, मानो कवि उस दिन की आस लगाये
बैठा है, जब—

फिर आऊँगा पास तुम्हारे ले छूँछा जीवन मतवाला
मेरे विद्रोही खप्पर में भर देना शोणित की हाला
रक्त-स्नात तब नृत्य करेंगे मुझसे कितने ही दीपकर
आने तो दो वह मुहूर्त फिर तो विप्लव फूटेंगे घरघर

आधुनिक हिन्दी कविता में ओज और वीरता का जो
विकास हुआ है, अगर हम कहें कि उसका पूर्ण चित्र हमें
'अंचल' की कविता में मिलता है, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति
न होगी। सर्वत्र कविकी अतुल मोहमय अज्ञेय शक्ति-सृजन
का उद्घोष मिलता है। निस्सन्देह इस कवि के स्वर में बड़ा बल
है। वह प्रगतिशील है और है सच्चे अर्थों में क्रान्ति का अग्रदूत।

हिन्दी वीर-काव्य के आधुनिक कवियों में विहार के "दिनकर" जी का भी बहुत ऊँचा स्थान है। इतिहास का दर्प जगानेवाले और भीतर-ही-भीतर उगनेवाली वीरता की भावनाओं को उभाड़ने वाले कवियों में ये अग्रणी हैं। ये चाँदी का शख उठाकर भैरव हुंकार फूँक रहे हैं और इस युग को जय का सन्देश सुना रहे हैं।

इनकी रचनाओं में बड़ा वेग, उत्साह और कर्मयोगी का स निश्छल आत्मार्पण है। यौवन के स्वप्न और कल्पना राज्य इन्होंने देश की स्वतन्त्रता और समाज की मुक्ति पर न्यौछावर कर दिये हैं। 'हिमालय,' 'नई दिल्ली' और 'विपथगा' आदि कविताएँ इनकी युगधर्म की रचनाएँ हैं। 'भविष्य की आहट' भी एक चीज है। विपथगा स्वय अपना परिचय देती हुई कहती है—

> अँगड़ाई में भूचाल, सास में लङ्का के उनचास पवन
> मेरे मस्तक के छत्र मुकुट वसुकाल सर्पिणी के शतफन
> मुझ चिर कुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर चन्दन
> आँजा करती हूँ चिताधूम का दृग में अन्धतिमिर अञ्जन
> सहार ल्पट का चीर पहन नाचा करती मैं छूम छनन
> पायल की पहली झमक सृष्टि में कोलाहल छा जाता है
> पडते जिस ओर चरण मेरे भूगोल उधर दब जाता है

'दिनकर' ने प्रगतिशीलता और वीरकाव्य को किसी वाद में रूप में नहीं अपनाया है। यह उनका Instinct है और यही कारण है कि उनके काव्य में आनेवाली तस्वीरें सच्ची हैं। उनके साहित्य का दृष्टि-बिन्दु अधिक यथार्थ है और काव्य की— वीर काव्य की—परम्परागत धाराओं को तोडकर वे आगे बढे हैं। उनकी हुकार में भी मार्क्सवादी ढङ्ग की उत्तम कविताएँ हैं। उनका काव्य जीवनोत्थान का साधन है और यही कारण है कि

उनके काव्य में रूप की अपेक्षा द्रव्य अधिक है। परन्तु फिर भी इनके वीर-काव्य का कोई मूल मौलिक बौद्धिक आधार नहीं है और न ये अपने पाठकों के लिये चिन्तनशीलता का मसाला ही जुटा पाते हैं। ये तो एक हलचल लिये हुए अपने पाठक के दिल को झकझोर जाते हैं। फिर भी वे विगत वैभव के गायक और भावी स्वर्ण विहान के स्वप्नदर्शी हैं। उनके भावों में बड़ा ओज है। अपनी अन्तर्वेदना को वे राष्ट्र के अतीत में ऐसा विजडित कर देते हैं कि वह राष्ट्र का ही स्वर मालूम पड़ने लगता है। इतिहास की पीड़ा बड़े ही गीले और सुघर स्वर में उनकी कविता में बोलती है।

विद्युत की इस चकाचौंध में देख दीप की लौ रोती है
अरी हृदय को थाम महल के लिये झोपड़ी बलि होती है
देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय शोणित की धारें
और उठी जाती उन पर ही वैभव की ऊँची दीवारें
धन पिशाच के कृषक मेघ में नाच रही पशुता मतवाली
आगन्तुक पीते जाते हैं दीनों के शोणित की प्याली
उठ 'भूषण' की भावरागिणी, 'रूसो' के दिल की चिनगारी
लेनिन के जीवन की ज्वाला जाग जाग री क्रान्तिकुमारी
लाखों क्रौंच कराह रहे हैं जाग आदिकवि की कल्याणी
फूट फूट तू कवि कंठों से बन व्यापक निज युग की वाणी

"दिनकर" की कविता में बड़ी शक्ति है और ऐसा लगता है जैसे इनके शब्दों से पिघला हुआ लोहा और शीशा निकलता है।। उनका काव्य सच्चा और जाग्रत पौरुष का उभार है। सोद्देश्यता वीर-काव्य का एक विशेष गुण मानी जायगी और 'दिनकर' काव्य में वह है। सचमुच दिनकर की ओज-भरी

कविताओं ने हमारे भावनाशील और भावप्रवण कवियों को मोह रक्खा है।

श्रीश्यामनारायण पाण्डेय हिन्दी के ओजप्रधान कवि हैं। 'हल्दीघाटी' उनका एक महाकाव्य है जो महाराणा प्रताप की पद्यबद्ध जीवनी है। युद्ध-वर्णन और प्रकृति-वर्णन ये दो विशेषताएँ इस काव्य के प्रमुख गुण हैं। युद्ध के वर्णन ओजस्वी और सरल शब्दों में हुए हैं। यह एक नवीनता है; क्योंकि युद्ध के वर्णनों के लिए—वीर रस के काव्य के लिये—कर्णकटु शब्दों की उपस्थिति, समासयुक्त भाषा और कुछ विशेष प्रकार के शब्दों की क़ैद आवश्यक समझी गई है। और इसी रीति का पालन रासोकाल से लेकर रत्नाकर-काल तक किया गया है। पाण्डेय जी की वर्णना इस दृष्टि से नयी है।

कहता था—लड़ता मान कहाँ?
मैं करलूँ रक्त स्नान कहाँ
जिस पर तय विजय हमारी है
वह मुग़लों का अभिमान कहाँ?

अतिशयोक्तियों और निराधार रूपकों से काम न लेकर कवि ने वास्तविकता को अपनाया है। उसके युद्ध-स्थल के वर्णन इसीलिये चित्रात्मक और सप्राण हो उठे हैं।

चिंघाड़ उठा भय से हाथी
लेकर अंकुश पिलवान गिरा
झटका लग गया, फटी झालर
हौदा गिर गया, निशान गिरा
कोई व्याकुल भर आह रहा
कोई था विकल कराह रहा

लोहू से लथपथ लोथों पर
कोई चिल्ला अल्लाह रहा

'चेतक' का वर्णन देखिए—

जो तनिक हवा से बाग हिली लेकर सवार उड़ जाता था।
राणा की पुतली फिरी नहीं तब तक चेतक फिर जाता था
कौशल दिखलाया चालों में उड़ गया भयानक भालों में
निर्भीक गया वह ढालों में सरपट दौड़ा करवालों में

तुकों के आनुकूल्य और द्विरुक्तियों ने भी एक चमत्कार पैदा किया है

राणा का जय-जयकार भरा
इसमें स्वदेश का प्यार भरा
शांत जलधि में ज्वार भरा
नीरव में हाहाकार भरा

परन्तु फिर भी हल्दीघाटी में नई उपमाओं, नये भाव-विन्यास और नये मानसिक चित्रणों की कमी बहुत खटकती है। प्रचार की दृष्टि से अवश्य इस पुस्तक का महत्व है, क्योंकि महाराणा प्रताप की कथा हिन्दूमात्र के लिए जातीय गौरव का विषय है।

हल्दीघाटी की एक विशेषता और है। विषय के अनुकूल वर्णन और रसपरिपाक हुआ है। प्रत्येक सर्ग के इस प्रकार वह सर्ग के कथानक की सुन्दर भूमिका सा बन जाता है। देखिये—

मुर्दे अरि तो पहले से थे छिप गये कबर में जिन्दे भी
अब महायुद्ध में आहुति बन रटने लग गये परिन्दे भी

पौ फटी गगन दीपावलियाँ बुझ गईं मलय के झोंकों ने
निशि पश्चिम विधु के साथ चली डरकर भालों की नोकों से
दिनका सिर काट दनुज दल का खूनी तलवार लिये निकला
कहता इस तरह कटक काटो कर में अंगार लिये निकला
रँग गया रक्त से प्राचीपट शोणित का सागर लहर उठा
पीने के लिये मुगल शोणित भाला राना का लहर उठा

वीर काव्य के इन प्रमुख आधुनिक कवियों के अतिरिक्त और भी कवि हैं, जिन्होंने थोड़ा लिखकर भी साहित्य के इस अंग विशेष की पुष्टि की है। श्री रामचन्द्र द्विवेदी 'प्रदीप' की 'पानीपत' भी एक उल्लेखनीय कविता है और नवीन कवियों में श्री श्यामविहारी शुक्ल 'तरल' के कुछ गीत भी उल्लेखनीय हैं। उनकी एक छोटी-सी पुस्तिका 'मजदूर जगत' भी निकल चुकी है। परन्तु उनकी अपेक्षाकृत प्रौढ़ कविताएँ अभी संकलित होने को हैं। श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' की 'उगताराष्ट्र' भी एक ऐसी ही कविता है जिसमें तारुण्य और बलिदान की भावना फूट पड़ी है। श्रीवियोगी हरि की 'वीर-सतसई' आधुनिक व्रजभाषा में वीर-रस की एक मात्र कृति है। दोहों के रूप में वीर-वर्णना उसमें की गयी है। किन्तु उसे आधुनिक और नवकाव्य की सृष्टि नहीं कहा जा सकता।

यह संकलन बहुत समुद्र-मंथन के पश्चात् इस रूप में तैयार हुआ है। सम्पादकों के लगभग छै मास के अध्ययन, विमर्श और लेखन, संकलन और प्रूफ-संशोधन का यह फल है। किन्तु इस अवसर पर बिना किसी संकोच के हम यह कहना चाहते हैं कि आदरणीय प्रो० पंडित दयाशङ्करजी दुबे एम० ए०, एल-एल०, बी० (अर्थशास्त्र विभाग, प्रयाग-विश्व-विद्यालय और परीक्षा-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग) की ही

प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा प्रेमोपालम्भ का ही यह फल है। यदि इसे सुचारु रूप से, किन्तु शीघ्र-से-शीघ्र तैयार कर डालने के सम्बन्ध मे उनके स्नेह-पूर्ण तकाजे हमारे ऊपर न पडते, तो कहा नही जा सकता, यह कार्य कब होता, होता भी या नही। इस कृपा के लिए उन्हे धन्यवाद मात्र देने मे हमे बहुत सतोष नही हो रहा है। वास्तव मे हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। इसके बाद यहाँ इस वृहत् कार्य विस्तार के प्रकरण मे अपने तरुण मित्र साहित्य-रत्न श्री गगाधर शकर-इन्दूरकर, शास्त्री की सेवाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसे ऐसा सुगठित और सुपाठ्य रूप देने मे वास्तव मे उनका बहुत अवलम्ब हमे मिला है।

अन्त मे हम इतना कहना चाहते है कि यदि इस वीर काव्य-सग्रह के अध्ययन से वीर भावो के सचार होने तथा इस विषय के साहित्यावलोकन एव निर्माण मे पाठको को थोडी भी प्रेरणा मिली, तो हम लोग अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—सम्पादकद्वय

वीरकाव्य-संग्रह

चंद वरदाई

'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता चन्द कवि माने जाते हैं। उनकी रचना की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों का गहरा मतभेद है। चन्द का समय भी अभी तक निश्चित् नहीं है। इन सब बातों पर, पक्ष-विपक्ष के तर्कों का ध्यान रखते हुए, अपना निर्णय दिया जायगा।

'गार्सां द तासी' ने फ्रेन्च भाषा में लिखित अपने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में 'चन्द' तथा 'पृथ्वीराज रासो' के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उसका अविकल अनुवाद नीचे दिया जाता है।

दिल्ली के अंतिम हिन्दू-सम्राट 'पृथ्वीराज चरित्र' अथवा इतिहास के रचयिता चन्द हिन्दी के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक तथा कवि हैं। भारत की प्राचीन पद्धति के अनुसार पद्य में लिखित चन्द का यह ग्रन्थ राजपूताने का इतिहास है और खासकर ऐसे समय का इतिहास है, जिसमें स्वयं चन्द ने विशेष भाग लिया था। निस्सदेह यह हिन्दी* के प्राचीन ग्रन्थों में से एक है।

चन्द पिथौरा अथवा पृथ्वीराज के दरबार का कवि था, जो राजपूत वंश का सिरमौर था। उसका समय १२वीं शताब्दि का अंतिम भाग है। लंदन की 'एशियाटिक सोसाइटी' के पुस्तकालय में मेजर वाफिल्ड द्वारा प्रदत्त चन्द के ग्रन्थ की एक हस्त-लिखित प्रति है, और मेकेंजी† की हस्त लिखित पुस्तकों के संग्रह में भी उनकी

---

* डब्ल्यू प्राइस द्वारा लिखित हिंदी तथा हिंदोस्तानी संग्रह की भूमिका पृ० ८।

† मेकेंजी का संग्रह भाग २, पृ० ५११

एक प्रति मौजूद थी। राबर्ट लिज नामक एक रूसी विद्वान् ने अपनी (भारत ?) यात्रा से लौटकर इसके एक भाग का अनुवाद, सन् १८३६ ई० में सेंट-पिटर्सवर्ग में, प्रकाशित कराया था। किन्तु उसकी असामयिक-मृत्यु ने प्राच्य विद्या-प्रेमियों को उसका मनोरम यात्रा विवरण जानने से, एक प्रकार से, वंचित रखा।

रायल 'एशियाटिक सोसाइटी' की हस्त-लिखित प्रति के मुख-पृष्ठ पर फारसी में इस प्रकार लिखा हुआ है:—

चन्दवरदाई द्वारा लिखित पिंगल भाषा (हिन्दोस्तानी पद्य) में पृथुराज का इतिहास। स्वर्गीय जेम्सटॉड ने अपने राजपूताने के इतिहास में* इस ग्रन्थ के एक बड़े भाग को उद्धृत किया है। उसने स्वयं इसके एक बड़े भाग का अनुवाद किया था, किन्तु मृत्यु के कारण न तो वह अपनी यात्रा समाप्त कर सका और न उसे प्रकाशित करने में ही समर्थ हो सका। उसने चंद की इस ऐतिहासिक कविता की केवल एक उल्लेखनीय घटना का अनुवाद प्रकाशित कराया था जो 'सगोता (संयोगिता ?) के प्रण' के नाम से विख्यात है। किन्तु इसकी प्रतियों का वितरण भी उसने केवल अपने कतिपय मित्रों हो तक सीमित रखा। नवीन सीरीज के एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल के २५ वें भाग में किसी व्यक्ति ने उस अनुवाद को पुनः प्रकाशित कराया है। अन्त में चन्द की कविता के सम्बन्ध में टॉड† की जो सम्मति है, वह नीचे उद्धृत की जाती है —

"चन्द का ग्रन्थ उसके समय का स्वाभाविक इतिहास है। इसमें ६९ भाग तथा एक लाख पद हैं, जिनमें पृथ्वीराज के पराक्रम का

* विद्वानों के जर्नल सन् १८३१ पृ० ७ तथा सन् १८३२, पृ० ४२० में म० द मार्सी के लेख।

† मूल अंग्रेजी में गाज राजस्थान, भाग १ पृ० २५४।

वर्णन है, किन्तु इसके साथ-ही-साथ इसमें प्रत्येक उच्च राजपूत-वंश के पूर्व-पुरुषों का उल्लेख भी मिलता है। यही कारण है कि राजपूत नाम-धारी प्रत्येक वंश के संग्रहालय में यह ग्रन्थ सुरक्षित मिलता है। पृथ्वीराज के युद्धों, विवाहों तथा अधीनस्थ अनेक शक्तिशाली राजाओं एवं उनके भवनों तथा वंश का ज्ञान प्राप्त करने के लिए चन्द का यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजपूताने के इतिहास तथा भूगोल के साथ-साथ इस ग्रन्थ में दन्तकथाओं आदि का भी वर्णन मिलता है।"

मुझे विश्वास है कि कुछ लोगों ने इस लेखक को 'चन्द्र' अथवा 'चन्द्र भाट' और इसके ग्रन्थ को 'पृथुराज-राजसू' के नाम से सम्बोधित किया है। 'राजसू' से 'राजसूय यज्ञ' का तात्पर्य है।*

वार्ड ने 'हिन्दू-साहित्य तथा दन्तकथाओं के इतिहास' भाग २ पृष्ठ ४८२ में इस ग्रन्थ की चर्चा की है, जिसमें उसने इसका हिन्दी की कन्नौजी बोली में लिखे जाने का उल्लेख किया है।

मेरे विचार में यह वही ग्रन्थ है जिसका एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के जर्नल† में 'पृथ्वीराज-माया' तथा उसके कैटलॉग में 'बियाना‡ के प्रथम सम्राट पृथुराज का पराक्रम' नाम मिलता है।

चन्द्र ने 'जयचन्द्र प्रकाश' अर्थात् 'जयचन्द्र' का 'इतिहास' नामक भी एक ग्रन्थ लिखा है। पहले ग्रन्थ (रासो) की तरह यह भी कन्नौजी बोली में लिखा गया है और वार्ड ने इसका भी उल्लेख किया है।

---

* इस्साव द ला लितरेत्योर ए द ला मारथालोजी द हिन्दोन।

† १८३५ पृष्ठ ५५

‡ आगरा प्रान्त का एक नगर

परम्परानुसार रासो चन्द का पृथ्वीराज का समकालीन मानते हैं। प्रसिद्ध है कि ये पृथ्वीराज के साथ ही सम्वत् ११५१ में पैदा हुए थे। इनका जन्म स्थान लाहौर

कवि परिचय

बतलाया जाता है। ये 'जगाति गोत्र' के भट्टब्राह्मण थे तथा इनके पूर्वज पंजाब के रहने वाले थे। चन्द, पृथ्वीराज के राजकवि ही नहीं, अपितु सखा और सामन्त भी थे। षड्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छन्द शास्त्र, ज्योतिष, पुराण नाटक आदि में ये पूर्णतया दक्ष थे। इनका जीवन पृथ्वीराज से बिल्कुल मिला हुआ था। सभा, युद्ध, आखेट तथा यात्रादि में ये सदैव महाराजा के साथ रहा करते थे। जब शहाबुद्दीन गोरी, पृथ्वीराज को कैद करके गजनी ले गया तब चन्द भी वहाँ पहुँचे। जाते समय 'रासो' को अपने प्रिय पुत्र जल्हन को पूरा करने के लिए दे गए। जिस प्रकार 'कादम्बरी' को 'बाणभट्ट' के पुत्र ने पूरा किया था, उसी प्रकार जल्हन ने भी हिन्दी के इस महाकाव्य को पूरा किया। रासो में इसका उल्लेख इस प्रकार है —

'पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज।'

× × ×

रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराज-सुजस कवि चन्द कृत, चद-नंद उद्धरिय तिमि॥

गजनी की भरी सभा में, एक दिन, जब कौतुक आदि हो रहे थे, चन्द ने बादशाह से मिल और पृथ्वीराज के शब्द वेधी बाण चलाने की कुशलता की बड़ी प्रशंसा की। बादशाह ने पृथ्वीराज को बाण चलाने की आज्ञा दी। चन्द का इशारा पाते ही उन्होंने ऐसा बाण मारा कि शाह धराशायी हो गया। उसके मरते ही चन्द ने म्यान से कटार निकाल कर अपना काम तमाम किया और फिर उसे पृथ्वीराज को दे

दी। पृथ्वीराज ने भी आत्महत्या कर ली और इस प्रकार दोनों मित्र एक ही दिन परलोक सिधारे।

महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री की खोज के आधार पर आचार्य-प्रवर पं० रामचन्द्र जी शुक्ल ने चन्द के विषय में निम्नलिखित सामग्री अपने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में उपस्थित की है। आप लिखते हैं:—

महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री ने सन् १९०९ से १९१३ तक राजपूताने में प्राचीन ऐतिहासिक काव्यों की खोज में तीन यात्रायें की थीं। उनका विवरण बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी ने छापा है। उस विवरण में 'पृथ्वीराज रासो' के विषय में बहुत कुछ लिखा है। और कहा गया है कि कोई कोई तो चन्द के पूर्व-पुरुषों को मगध से आया हुआ बताते हैं, पर 'पृथ्वीराज रासो' में लिखा है कि चन्द का जन्म लाहौर में हुआ था। कहते हैं कि चन्द पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के समय में राजपूताने में आया और पहले सोमेश्वर का दरबारी और पीछे से पृथ्वीराज का मन्त्री, सखा और राजकवि हुआ। पृथ्वीराज ने नागौर बसाया था और वहीं बहुत सी भूमि चन्द को दी थी। शास्त्रीजी का कहना है कि नागौर में अब तक चन्द के वंशज रहते हैं। इसी वंश के वर्तमान प्रतिनिधि नानूराम भाट से शास्त्रीजी की भेंट हुई। उनसे उन्हें चन्द का वंशवृक्ष प्राप्त हुआ जो इस प्रकार है:—
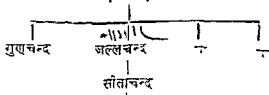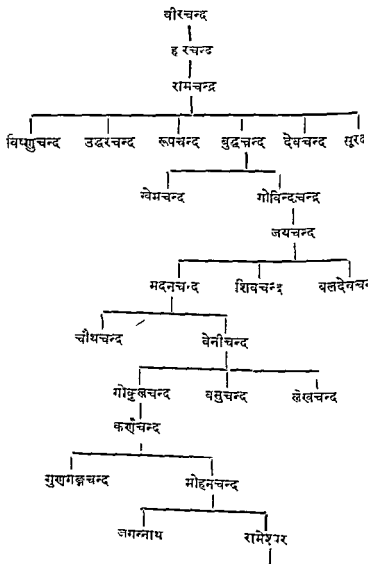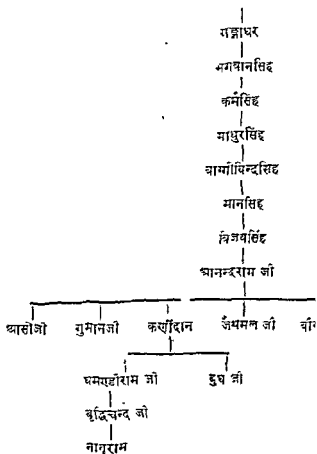
- वीरचन्द
  - हरचन्द
    - रामचन्द्र
      - विष्णुचन्द
      - उद्धरचन्द
      - रूपचन्द
      - बुद्धचन्द
        - खेमचन्द
        - गोविन्दचन्द्र
          - जयचन्द
            - मदनचन्द
              - चौथचन्द
              - वेनीचन्द
                - गोकुलचन्द
                  - कर्णचन्द
                    - गुणगङ्गचन्द
                    - मोहनचन्द
                      - जगन्नाथ
                      - रामेश्वर
                - वसुचन्द
                - लेखचन्द
            - शिवचन्द
            - बलदेवचन्द
      - देवचन्द
      - सूरच

गङ्गाधर
|
भगवानसिंह
|
कर्मसिंह
|
माधुरसिंह
|
गोविन्दसिंह
|
मानसिंह
|
विजयसिंह
|
आनन्दराम जी
|
आसोजी — गुमानजी — कर्णीदान — जैथमल जी — वी[illegible]

कर्णीदान
|
घमण्डीराम जी — बुध जी

घमण्डीराम जी
|
बुद्धिचन्द जी
|
नानूराम

नानूराम का कहना है कि चंद के चार लड़के थे जिनमें [illegible] मुसलमान हो गया। दूसरे का कुछ पता नहीं, तीसरे के वंश[illegible] में जा बसे और चौथे जल्हण का वंश नागौर में चला गया। [illegible] रासो में चन्द के लड़कों का उल्लेख इस प्रकार है:—

दहति पुत्र कविचन्द के, सुन्दर रूप सुजान।
इक्क जल्ह गुन बावरो गुन-समुन्द ससभान॥

'पृथ्वीराज रासो' में कविचन्द के दसों पुत्रों के नाम दिए हैं। सूरदास की 'साहित्य लहरी' की टीका में एक पद ऐसा आया है जिसमें सूर की वंशावली दी है। वह पद यह है:—

प्रथम ही प्रभु यज्ञ तें भे प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप॥
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय॥
पारि पायँन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु बंस प्रसंस मैं भौ चन्द चारु नवीन॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हीं तिन्हे ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेस॥
दूसरे गुनचन्द ता सुत सीलचन्द सरूप।
वीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप॥
रंथभौर हमीर भूपति सँगत खेलत जाय।
तासु बंस अनूप भो हरिचन्द अति विख्याय॥
आगरे रहि गोपचल में रह्यो ता सुत वीर।
पुत्र जनमे सात ताके महाभट्ट गम्भीर॥
कृष्णचन्द उदारचन्द्र जु रूपचन्द्र सुभाइ।
बुद्धिचन्द प्रकास चौथे चन्द भे सुखदाइ॥
देवचन्द प्रबोध संसृतचन्द ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरजचन्द मन्द निकाम॥

इन दोनों वंशावलियों के मिलाने पर मुख्य भेद यह प्रगट होता है कि नानूराम ने जिनको जल्लचन्द की वंश परम्परा में बताया है,

सूरदासजी उन्हे गुणचन्द की परम्परा मे कहते हैं। बाकी नाम प्रायः मिलते हैं।

चन्द के सम्बन्ध में जो वृतान्त उपलब्ध है, उसे ऊपर दिया गया है। अब नीचे रासो की संक्षेप कथा, उसकी प्रामाणिकता तथा भाषा आदि के सम्बन्ध में विचार किया जायगा।

पृथ्वीराज रासो के सम्बन्ध में

रासो एक प्रबन्ध-काव्य है। यह लगभग २५०० पृष्ठों तथा ६९ समयों में समाप्त हुआ है। इसका अन्तिम अर्थात् ६६ वा 'महोबा समय' है, जिसमें पृथ्वीराज और महोबा के राजा 'परमाल' के युद्ध का वर्णन है। यह ग्रन्थ सम्वाद रूप मे है, अर्थात् कवि की धर्मपत्नी प्रश्न करती है और वह उसका उत्तर देता है। इसमें आबू के यज्ञ-कुड से चार क्षत्रिय कुलो की उत्पत्ति तथा चौहानों की अजमेर में राजस्थापना से लेकर पृथ्वीराज के पकड़े जाने तक का विस्तृत वर्णन है।

रासा मे लिखा है कि जिस समय सोमेश्वर चौहान शाकम्भरी देश मे राज्य करते थे और अपनी राजधानी अजमेर में रहते थे, उस समय अनङ्गपाल तोमर दिल्ली के और विजयपाल कमध्वज कन्नौज के राजा थे। किसी कारण से विजयपाल ने दिल्ली पर चढाई की। अनङ्गपाल ने दूत भेजकर सोमेश्वर से सहायता माँगी। सोमेश्वर सेना सहित दिल्ली की रक्षा करने के लिए गए तथा दोनों राजाओं ने परामर्श कर दिल्ली की रक्षा की। विजयपाल उस समय उत्तर भारत में चक्रवर्ती अर्थात् सम्राट माने जाते थे। उनके पास अगणित सेना थी, उन्होंने दिग्विजय भी किया था परन्तु वे दिल्ली को जीत न सके।

अनङ्गपाल सन्तानहीन थे। उनकी दो कन्याएँ थीं। छोटी का नाम था कमला और बड़ी का सुन्दरी।

सोमेश्वर के साथ कमला का विवाह कर दिया। परन्तु विजयपाल भी सेना लिए पड़े थे, अतएव उनसे सुरसुन्दरी का विवाह करके सन्धि कर ली। कमला के गर्भ से पृथ्वीराज का जन्म हुआ।

विजयपाल के पुत्र जयचन्द उनके मरने पर कन्नौज के राजा हुए। परन्तु रासो में यह नहीं लिखा है कि जयचन्द सुरसुन्दरी के गर्भ से थे या किसी और रानी के गर्भ से। पृथ्वीराज का जन्म सन् ११४८ (वैशाख सम्वत् १२०५) में हुआ था। रासो में केवल एक स्थान (४८ समय) पर जयचन्द ने पृथ्वीराज से कहा है "मातुल हम तुम इक्क" पर इस सम्बन्ध का और कहीं उल्लेख नहीं है।

जब अनङ्गपाल वृद्धावस्था में बदरी नारायण की यात्रा के लिए जाने लगे तब राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को सौंप गए। आगे चलकर पिता की मृत्यु के पश्चात् पृथ्वीराज अजमेर तथा दिल्ली दोनों के स्वामी बन गए।

पृथ्वीराज की समृद्धि से जयचन्द मन ही मन कुढ़ने लगा। उसने अपना एक-छत्र राज्य स्थापित करने के लिए राजसूय यज्ञ की रचना की और साथ ही अपनी कन्या संयोगिता का स्वयम्बर भी रचा। इस यज्ञ में पृथ्वीराज को निम्न कोटि का कार्य सौंपा गया. अतएव वह सम्मिलित नहीं हुआ। उसकी अनुपस्थिति में एक स्वर्ण मूर्ति बनाकर द्वारपाल के स्थान पर रख दी गई। संयोगिता पृथ्वीराज को पहले से ही प्रेम करती थी। वह सब ओर से घूम आई और अन्त में उसने मूर्ति के गले में ही जयमाल डाल दी।

जयचन्द अपनी पुत्री के इस कृत्य से अत्यन्त रुष्ट हुआ और गङ्गा किनारे के एक महल में उसे निर्वासन दण्ड दिया। इधर पृथ्वी राज को जब समाचार मिला तो वे चन्द के साथ एक धनवान विदेशी युवक के वेश मे वहाँ जा पहुँचे। उस महल में पृथ्वीराज का संयोगिता से विधि पूर्वक विवाह हुआ। रात को ही संयोगिता को साथ लेकर वे

चन्द के स्थान पर चले गए। दूसरे दिन सवेरे ही वे दिल्ली चलने को तैयार हुए। चलते समय उन्होंने कवि चन्द से कहा कि जयचन्द को संयोगिता के विवाह और दिल्ली जाने का संवाद दे आओ। कवि ने कहा—अब तुम्हारी आशा पूरी हो गई है, घर चलो, क्यों झगड़ा बढ़ाते हो? परन्तु पृथ्वीराज ने नहीं माना। उसने कहा—मैं चोर नहीं हूँ। मैं बिना सूचना दिए न जाऊँगा। जिसे साहस और बल हो, मुझे रोके।

कविचन्द ने जयचन्द की सभा में जाकर कहा—दिल्लीश्वरी महारानी संयोगिता अपने पति के घर जा रही हैं, वे अपने पिता के आशीर्वाद की अपेक्षा कर रही हैं। यह समाचार सुनकर जयचन्द अत्यंत क्रुद्ध हुआ। उसने अपने सेनापति तथा सामन्तों को पृथ्वीराज और संयोगिता को जीवित पकड़ लाने की आज्ञा दी। मार्ग में घोर युद्ध हुआ, किन्तु अन्त में पृथ्वीराज सकुशल दिल्ली पहुँच गए। वहाँ भोग विलास में अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

उधर शहाबुद्दीन गोरी अपने एक पठान सरदार की प्रेमिका चित्ररेखा पर मुग्ध हो गया। यह सरदार भागकर पृथ्वीराज की शरण में आ पहुंचा। गोरी ने उसे लौटा देने के लिए कहला भेजा किन्तु शरणागत रक्षा में तत्पर पृथ्वीराज उसका यह स्वीकार न कर सके। इसके परिणाम-स्वरूप गोरी तथा पृथ्वीराज में कई युद्ध हुए जिनमें गोरी बराबर पराजित हुआ। अन्त में वह छल से पृथ्वीराज को गजनी पकड़ ले गया। वहाँ पृथ्वीराज ने उसे शब्दवेधी-बाण से मारकर आत्म हत्या कर ली।

ऊपर संक्षेप में 'रासो' के कथा भाग के विषय में लिखा गया है। इसके मर्मों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कुछ घटनाओं का कवि ने बहुत ही विशद वर्णन किया है। विशेषतया पृथ्वीराज को अनेक युद्धों, उसका कई राजकुमारियों से विवाह तथा

आखेट आदि का बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है। 'वीर रस' के साथ साथ 'शृङ्गार रस' का वर्णन भी 'रासो' में खूब मिलता है। किन्तु इसमें प्रकृति वर्णन का सर्वथा अभाव है।

बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'रासो' को महाकाव्य न मानकर उसे विशालकाय वीर-काव्य ही कहना उचित समझा है।* अब प्रश्न यह उठता है कि 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य है अथवा नहीं। इस सम्बन्ध में 'महाकाव्य' के विषय में भी संक्षेप में जान लेना आवश्यक है।

क्या पृथ्वीराज रासो महाकाव्य है ?

संस्कृत लक्षणग्रन्थों के अनुसार महाकाव्य का सर्गबद्ध होना आवश्यक है। इसका नायक धीरोदात्त, क्षत्रिय अथवा देवता होना चाहिए। यह आठ सर्गों से बड़ा तथा अनेक वृत्तों से युक्त होना चाहिए। प्रकृति-वर्णन के रूप में इसमें नगर, अर्णव (समुद्र) पर्वत तथा ऋतु आदि का वर्णन भी अत्यावश्यक है।

पाश्चात्य आलोचकों ने महाकाव्य (एपिक) की चर्चा करते हुए जिन उपकरणों को आवश्यक बतलाया है, उनमें पारस्परिक बड़ा मतभेद है।

फ्रेंच आलोचक 'ल बस्सु'† के अनुसार महाकाव्य, प्राचीन घटनाओं को चित्रित करने के लिए एक पद्यबद्ध रूपक है। उसके विचार में होमर इस बात को खूब समझता था कि ग्रीस की रियासतों का पारस्परिक कलह जनता की हित की दृष्टि से अहितकर है। अतएव लोगों को शिक्षा देने के लिए ही उसने इलियड में ट्राय के युद्ध की कल्पना की।

एक दूसरे आलोचक 'डेवनान्ट'‡ का कथन है कि महाकाव्यों

---

*'हिन्दी भाषा और साहित्य' पृ० २८०

†डिक्सन कृत 'एपिक एन्ड हिरोयिक पायट्री' पृ० १

‡वही पृ० २

की आधार-भूता प्राचीन घटनायें ही होनी चाहिए, क्योंकि अर्वाचीन घटनाओं की अपेक्षा प्राचीन घटनाओं के चित्रण में अवश्य ही कवि कल्पना की ऊँची उड़ान ले सकता है। इसके अतिरिक्त उसे इस प्रकार की घटनाओं के चित्रण में अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता भी रहती है।

'लुकन' के विचार में प्राचीन घटनाओं की अपेक्षा अर्वाचीन घटनाओं को ही महाकाव्य की पृष्ठभूमि बनाना युक्तियुक्त होगा। इस से एक लाभ यह होगा कि उसमें वर्णित चरित्रों की सजीव प्रतिमा जनता के हृत्पटल पर अङ्कित हो जायगी।

'टैसो' ने मध्यम मार्ग का अवलम्बन करते हुए यह विचार उपस्थित किया है कि घटनायें न तो अत्यन्त प्राचीन होनी चाहिए और न अत्यन्त नवीन ही।

जिस प्रकार घटना के सम्बन्ध में पाश्चात्य आलोचक एकमत नहीं, उसी प्रकार घटना-काल के सम्बन्ध में भी उनके विचार एक दूसरे से भिन्न हैं। घटना काल से तात्पर्य यह है कि महाकाव्य में अन्ततोगत्वा कितने समय की घटनाओं का चित्रण किया जाय। एक आलोचक का कथन है कि महाकाव्य (एपिक) में केवल एक वर्ष की घटनाओं का समावेश होना चाहिए, किन्तु दूसरे का कथन है कि इसमें नायक के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण आवश्यक है।

महाकाव्य का नायक युद्ध प्रिय होना चाहिए। केवल एक व्यक्ति के चरित्र-चित्रण में ही इसे समाप्त नहीं होना चाहिये, अपितु इसमें सम्पूर्ण जाति के कार्य-कलाप का वर्णन होना चाहिए। 'लुकन' के अनुसार इसमें देवताओं तथा दैवी शक्ति का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

ऊपर पौर्वात्य तथा पाश्चात्य दोनों दृष्टियों से महाकाव्य के

लक्षण पर विचार किया गया है। अब देखना है कि इन दृष्टियों से 'पृथ्वीराज रासो' कहाँ तक महाकाव्य है ?

इसमें सन्देह नहीं कि लक्षण ग्रन्थों के अनुसार 'रासो' को महाकाव्य ही कहना उपयुक्त होगा। यह ६९ समयों में विभक्त है। इसमें कवित्त, दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा, आर्या आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसके नायक पृथ्वीराज क्षत्रिय-कुल-भूषण वीर-पुरुष हैं। किन्तु जहाँ तक महाकाव्य में जातीय-चित्त-वृत्ति तथा कार्य कलाप की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, 'रासो' को एक विशाल-काय वीर-काव्य का ग्रन्थ कहना ही उचित है। स्थान २ पर इसके कथानक में शैथिल्य है। इसके अतिरिक्त इसके कथानक सम्बन्धी घटनाओं में एकरूपता का भी अभाव है।

रासो के अनुसार रासो की रचना कन्नौजी बोली में हुई थी। भाषा के सम्बन्ध में रासा का निम्नलिखित छन्दांश प्रसिद्ध है:—

षट् भाषा पुरानं च कुरानं कथितं मया।

भाषा — इससे स्पष्ट हो जाता है कि रासो की भाषा में कई बोलियों, संस्कृत एवं फारसी का समिश्रण है। उदाहरण स्वरूप एक छन्द नीचे उद्धृत किया जाता है.—

नमः सभवाय सत्वाय वायं, नमोरद्रपाय वरदाय सायं।
वसुरत्तर निसए सुगा पाए, कपर्दी महादेव भीमं भवाए॥
मयप्राय ईसाय श्रेय वकाए, नमो धुम्मए धातए अद्धकाए।
कुमारो गुरध्वे नमो नीलग्रीवे, नमो व्यग्र विप्राय ने द्दिद्ध जीवे।
नमो लोहिते नील सिप्पटपन, नमो सुल्लिने चक्षुवे त्रिव्यजंतं॥
वसुंत से मर्ग दगहनुनेयं, नमो पिगनाटिव्वए देव देवं।'

प्रथम समयो

ऊपर की प्रार्थना मे कवि ने प्राकृत के प्राचीन रूपों का अनुकरण या है। कतिपय शुद्ध-प्राकृत के रूप भी इस पद मे उपलब्ध हैं जैसे व्य के लिए दिव्व और अर्द्ध के लिए अद्ध। अब नीचे एक दूसरा द दिया जाता है:—

> मयन सन्मान, किय सजान, बजि नीहानं,नीसानं।
> बंधे सिलहानं, निज निज थान, पव्वरि पानं, असमानं ॥

नवा समयौ

इस छन्द मे अनुस्वारान्त शब्दों का आधिक्य है। ये अनुस्वार किसी नियम अथवा व्याकरण के नियमानुसार नहीं रखे गए हैं। वरन् अनुप्रास तथा पढने मे लालित्य लाने के लिए ही ऐसा किया गया है। रासो में इस ढङ्ग के अनेक छन्द हैं। डिङ्गल के अन्य कवियों ने भी इसका अनुकरण खूब किया है। नीचे रासो की भाषा का एक तीसरा उदाहरण दिया जाता है:—

> मनहुँ कला ससि भान, कला सोलह सो बन्निय।
> बालवेस ससिता समीप, अम्रित रस पिन्निय ॥
> विगसि कमल स्रिग भ्रमर, बैन खजन मृग लुट्टिय।
> हीर कीर अरु बिम्ब, मोति नख सिख अहि घुट्टिय ॥
> छप्पति गयन्द हरि हंस गति, बिह बनाय सचै सचिय।
> पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय ॥

इस उदाहरण में संस्कृत के कला, कमल, मृग, भ्रमर, खजन आदि शब्द अपने तत्सम रूप मे ही वर्तमान हैं। बहुत सम्भव है, प्राचीन भाषा के रूप बदल कर नए हो गए हों अथवा पीछे की रचना होने के कारण ही तत्सम शब्दों का अत्यधिक प्रयोग किया गया हो। अब यहाँ रासो की भाषा के सम्बन्ध में एक चौथा उदाहरण दिया जाता है:—

बन्धुओं को रासो की प्रामाणिकता में तनिक भी सन्देह नहीं। आप लोग लिखते हैं :—

रासो' प्रायः संवत् १२२५ से १२४८ तक बनता रहा। यह वह समय था जब प्राकृत भाषा का अन्त हो रहा था और हिन्दी का प्रचार होता जाता था।*

आप लोग एक दूसरे स्थान पर लिखते हैं,—

"रासो जाली नहीं है वरन् पृथ्वीराज के समय में ही चन्द ने इसे बनाया था। इसके अकृत्रिम होने का एक यह भी कारण समझ पड़ता है कि यदि कोई मनुष्य सोलहवीं शताब्दी आदि में इसे बनाता तो वह स्वयं अपना नाम न लिखकर ऐसा भारी (२५०० पृष्ठ का) उत्तम महाकाव्य चन्द को क्यों समर्पित कर देता ?' †

संक्षेप में पूर्वपक्ष के विचारों का दिग्दर्शन ऊपर करा दिया गया। अब नीचे उत्तरपक्ष के तर्कों पर विचार किया जायगा।

(ब) उत्तरपक्ष—

'रासो' को जाली मानने वाले विद्वानों की ऐसी धारणा है कि इस ग्रंथ का संकलन या संपादन सं० १६०० के आस पास हुआ होगा। बाबू रामनारायण दूगड़ ने अपने 'पृथ्वीराज चरित्र' की भूमिका में इस विषय में अपने कुछ विचार प्रकट किए हैं। उन्हें उदयपुर-राज्य के विक्टोरिया हाल के पुस्तकालय में 'रासो' की एक पुस्तक मिली थी। उसके अन्त के एक छन्द में यह लिखा है कि चन्द के छन्द जगह जगह पर बिखरे हुए थे जिनको महाराणा अमरसिंह जी ने एकत्रित कराया। वह छन्द नीचे दिया जाता है:—

* हिन्दी-नवरत्न प्रथम संस्करण पृ० ३३७

† हिन्दी-नवरत्न, वही पृ० ३२८

गुन मनियन रस पोइ, चन्द्र कवियन कर द्धिदिय।
छन्द गुनी ते तुट्टि मन्द कवि भिन भिन किद्धिय॥
देस देस बिखरिय मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करि मेलवत आस बिन आलय आवय (?)॥
चित्रकोट रान अमरेस नृप हित श्रीमुख आयस दयौ।
गुन बिन बीन करुणा उदधि लिषि रासौ उद्दिम कियौ॥

ऊपर के छन्द से स्पष्ट हो जाता है कि किसी अज्ञात कवि ने राणा अमरसिंह के राजत्व-काल में उनकी आज्ञा से कवि चन्द के छन्दों को, जो देश के भिन्न भिन्न भागों में बिखरे हुए थे, पिरोकर इस रासो को पूर्ण किया। उदयपुर के राज-वंश में अमरसिंह नाम के दो राजा हो गए हैं जिनमें से एक का राज्य काल सं० १६५३ से १६७६ तक और दूसरे का सं० १७५५ से १७६७ तक था। अब निश्चय यह करना है कि 'रासो' का सकलन किस अमरसिंह ने कराया था। भाग्यवश इसका निर्णय महाराणा राजसिंह द्वारा निर्मित राज-समुद्र तालाब के नौचौकी बाँध पर बड़ी-बड़ी शिलाओं पर सं० १७३२ में खुदवाए हुए महाकाव्य से हो जाता है। इसी में सर्वप्रथम 'रासो' का उल्लेख मिलता है।

"भाषा रासा पुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः"

यह लेख सं० १७३२ का है, अतएव यह स्पष्ट है कि 'रासो' का संग्रह यदि किसी अमरसिंह के समय में हुआ होगा तो यह पहले अमरसिंह ही हो सकते हैं, दूसरे नहीं। क्योंकि दूसरे अमरसिंह इस समय तक गद्दी पर भी नहीं बैठे थे। इससे एक बात यह विदित होती है कि 'चन्द' नाम का कवि था किन्तु, यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि यह 'चन्द' पृथ्वीराज का समकालीन कवि था।

जिस समय 'पृथ्वीराज रासो' का प्रकाशन बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी ने आरम्भ किया, उसी समय जोधपुर के कविराजा मुरारिदान

तथा उदयपुर के कविराजा श्यामलदास ने रासो की प्रामाणिकता पर आपत्ति की और उसे जाली-ग्रन्थ बताकर उसका रचना काल सं० १६४० से १६७० के बीच निर्धारित किया, किन्तु उस समय विद्वानों ने इनकी आपत्ति पर ध्यान नहीं दिया और रासो का प्रकाशन जारी रहा। इसी बीच, संस्कृत-हस्त-लिखित-पुस्तकों की खोज में डा० बूलर को 'पृथ्वीराज' के समकालीन कवि 'जयानक' रचित 'पृथ्वीराज विजय' काव्य की एक प्राचीन प्रति काश्मीर में मिली। इसके अध्ययन से डा० बूलर को मालूम हुआ कि जयानक सचमुच ही पृथ्वीराज का राजकवि था और उसके द्वारा रचित काव्य में वर्णित घटनायें उस समय के शिलालेख आदि से भी शुद्ध ठहरती हैं, किन्तु इसके विपरीत चन्द कृत 'पृथ्वीराज रासो' के सम्वत् आदि ठीक नहीं उतरते। डा० बूलर ने अपनी इस खोज की सूचना बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी को दी और 'रासो' का आगे का प्रकाशन बन्द हो गया।

अब नीचे इतिहास तथा पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान् डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द जी ओझा का मत दिया जाता है। आप का कथन है कि इस समय रासो की जो प्रति उपलब्ध है, वह बिल्कुल जाली है और वह सोलहवीं शताब्दी के पहले की नहीं हो सकती। ओझा जी के मन्तव्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं:—

(१) 'पृथ्वीराज रासो' में लिखा है कि 'चौहानों की उत्पत्ति अग्निवंशीय क्षत्रियों से हुई है। 'यज्ञ में जब वशिष्ठ जी आहुति दे रहे थे तो स्वयं चार बाहु वाला चहुवान [पुरुष निकला।' इसके विरुद्ध 'पृथ्वीराज विजय' में सूर्यमण्डल से चौहान राजपूतों के आदि पुरुष 'चाहमान' के अवतरण का वर्णन है। इसी कारण से वि० संवत् १४६० तक ये लोग अपने को सूर्यवंशी मानते थे। यदि यह ग्रन्थ १२ वीं शताब्दी का होता तो चन्द कवि कभी चौहानों की उत्पत्ति अग्निवंशियों से न कहता।

(२) चन्द की पुस्तक मे जो चोहानों की वशावली दी गई है वह कृत्रिम है। वह न बिजोलिया' के शिलालेख स० १२२६ मे दी हुई वशावली से मिलती है न पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य से और न हम्मीर काव्य (स० १४६०) से ही मिलती है।

(३) सन् १८७५ ई० में डा० बूलर ने बगाल की एशियाटिक सोसाइटी के कार्य विवरण मे लिखा है:—"यह ग्रन्थ जाली है जैसा कि जोधपुर के मुरारदान और उदयपुर के श्यामलदान ने बहुत काल पहले प्रकट किया था। 'पृथ्वीराज-विजय' के अनुसार पृथ्वीराज के बन्दिराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम 'पृथ्वीभट' था, न कि चन्दबरदाई।"

(४) पृथ्वीराज रासा मे लिखा है कि "दिल्ली के तवर राजा अनगपाल ने अपनी छोटी कुँवरि कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया, जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ था। अन्त में, अनङ्गपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बदरिकाश्रम मे तप करने को चला गया।" इससे यह विदित होता है, कि पृथ्वीराज की माता का नाम कमला है, परन्तु यह ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। दिल्ली का राज्य पहले ही विग्रह-राज चतुर्थ के अधीन हो चुका था। 'पृथ्वीराज-विजय' तथा हम्मीर काव्य' आदि ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार 'पृथ्वीराज' की माता का नाम 'कर्पूरदेवी' था और वह त्रिपुरी के हैहय (कलचुरि) वशीराजा 'तेजल' की पुत्री थी। अतः चन्द का कथन ऐतिहासिक दृष्टि से अशुद्ध सिद्ध होता है।

(५) 'पृथ्वीराज रासो' में लिखा है 'पृथ्वीराज की बहिन 'पृथा' का विवाह मेवाड के राजा समरसिंह के साथ हुआ था जो पृथ्वीराज के पक्ष में लडता हुआ शहाबुद्दीन के साथ लडाई में मारा गया। 'ऐतिहासिक' अनुसन्धान से मालूम होता है कि समरसिंह पृथ्वीराज का

समकालीन नहीं थे, वरन् उसके कई वर्ष बाद हुआ था। अतः यह सम्बन्ध कपोलकल्पित है।

(६) रासो में लिखा है कि गुजरात के राजा भीम के हाथ से पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर मारा गया। अपने पिता का बदला लेने के लिए पृथ्वीराज ने गुजरात पर चढ़ाई की और भीमदेव को मारा, और उसके पुत्र कचराराय को गद्दी पर बिठाकर उसके कुछ परगने अपने राज्य में मिला लिए।" शिला-लेखों के प्रमाण से यह कथा सच नहीं निकलती।

(७) रासो में लिखा है कि "पृथ्वीराज का प्रथम विवाह ग्यारह वर्ष की अवस्था में मंडोवर के पड़िहार नाहरराय की पुत्री से हुआ था। ‥ ‥ ‥ बारह वर्ष की अवस्था में आबू के परमार राजा सलख की पुत्री और जैत की बहिन इछिनी से उनका विवाह हुआ।‥‥‥ तेरह वर्ष की अवस्था में दाहिमा चावंड की बहिन से उनका विवाह हुआ। उससे रैणसी का जन्म हुआ और इसका पुत्र गोविन्दराज था।‥‥ देवगिरि के यादवराजा भान की पुत्री शशिलता और रणथंभौर के यादवराजा भानराय की पुत्री हंसावती से उनका विवाह हुआ।‥‥ इस प्रकार ११ वर्ष से ३६ वर्ष तक पृथ्वीराज के १४ विवाह हुए।" ये घटनाएँ झूँठी ठहरती हैं क्योंकि पृथ्वीराज कुल ३० वर्ष जीवित रहे।

(८) रासो में आए हुए सन् संवत् ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही अशुद्ध ठहरते हैं। टॉड का कहना है कि रासो में १०० वर्ष पहले के संवत् दिए हुए हैं। पंड्या जी ने 'अनंद संवत्' या अनन्द संवत् की कल्पना की है। निम्नलिखित संवतों की गलती विशेष उल्लेखनीय है :—

(अ) बीसल देव का सिंहासनारूढ़ होना सं० ८२१

(ब) पृथ्वीराज का जन्म संवत् ११११ है। आनन्द की कल्पना करने पर भी यह स० १२०६ होता है। अतएव दोनों गलत हैं। पृथ्वीराज विजय में लिखा है कि सोमेश्वर के देहान्त के समय पृथ्वीराज बालक था।

(स) "वि० संवत् ११३६ में पृथ्वीराज के सामन्त सलख, (आबू के परमार) ने शहाबुद्दीन को कैद कर लिया।" रासो में उल्लिखित यह सलख परमार नामका सामन्त आबू पर कोई नहीं हुआ।

(द) "वि० संवत् ११३८ में पृथ्वीराज दिल्ली की गद्दी पर बैठा और उसी वर्ष उसने खाटू के जंगल से धन निकाला। .. .. समुद्र शिखर के यादव राजा विजयपाल की पुत्री पद्मावती से वि० स० ११३९ में विवाह किया। वि० स० ११४१ में दक्षिण-देशीय राजाओं ने कर्णाट देश की एक सुन्दरी वेश्या अर्पण की।" ये सब संवत् आनन्द संवत् लेने पर भी कल्पित ठहरते हैं।

(९) जब हम पृथ्वीराज रासो में आई हुई घटनाओं का अवलोकन करते हैं तो हम उनमें भी कई अशुद्धियाँ पाते हैं। निम्नलिखित घटनाएँ गलत हैं —

(क) अनंगपाल ने अपने दौहित्र पृथ्वीराज को गोद लेकर वि० स० ११२८ में दिल्ली का राज्य दे दिया।

(ख) 'सोमेश्वर ने मेवाती के मुग़ल राजा (मुद्गलराय) से अन्य राजाओं के समान कर मांगा और उनके कर देने से इन्कार करने पर चढ़ाई की। पृथ्वीराज ने रातों-रात चढ़ाई की जिसमें मुगल हारे" तब तक मुगल हिन्दुस्थान में आये तक न थे, युद्ध होना तो दूर रहा।

(ग) कन्नौज के राजा जयचन्द ने एक राजसूय-यज्ञ किया, और उसके साथ ही संयोगिता के स्वयंवर का भी आयोजन किया। जब स्वयंवर

में पृथ्वीराज नहीं आए तब उसने द्वारपाल के स्थान पर पृथ्वीराज की स्वर्णप्रतिमा रखी। सयोगिता जब सभा में आई तब उसने, सब राजाओं को छोड़ दिया और उस स्वर्णप्रतिमा के ही गले में जयमाल डाल दी। इस पर जयचन्द ने उसे कैद कर लिया। पृथ्वीराज को जब खबर मिली तब अपने सामन्तों के साथ आकर उन्होंने सयोगिता को छुड़ा लिया और उसे लेकर दिल्ली भाग गये। जयचन्द की सेना ने पीछा किया पर वह युद्ध में हार गई। फिर पीछे जयचन्द ने अपने सामन्तों को भेजकर पृथ्वीराज और सयोगिता की विधिपूर्वक शादी करा दी। इस घटना का किसी इतिहास या शिलालेख में उल्लेख नहीं मिलता है।

(घ) 'रावल समरसिंह' ने अपने छोटे पुत्र रतनसिंह को उत्तराधिकारी बनाया, इससे उनका ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा दक्षिण के बीदर के मुसलमान बादशाह के पास जाकर रहा। इस समय दक्षिण में मुसलमान नहीं पहुँचे थे। इसलिये यह कथा बिल्कुल कल्पित है।

(च) शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज को कैदकर गजनी ले गया। वहाँ उसको कैदकर उसकी आँखें निकलवा लीं। चन्द भी अपने स्वामी के पास योगी बनकर पहुचा और बादशाह से बोला कि पृथ्वीराज शब्दवेधी बाण मारने में बड़ा दक्ष है। बादशाह ने इस कौशल को देखने के लिये एक सभा बुलवाई और पृथ्वीराज को बाण चलाने की आज्ञा दी। पृथ्वीराज ने चन्द का इशारा पाते ही एक बाण मारा, जो गोरी के हृदय को फाड़ता हुआ निकल गया। इसके बाद चन्द ने अपनी म्यान से कटार निकाली और अपनी हत्याकर पृथ्वीराज को दे दी। पृथ्वीराज ने भी उससे आत्मघात कर लिया।

यह घटना झूँठी है क्योंकि गोरी वि० स० १२६३ में खोक्खरों से मारा गया न कि वि० स० १२४६ में।

इन्हीं उपर्युक्त कारणों से ओझा जी का कहना है कि यह ग्रन्थ सं १६०० के आसपास का होगा। ओझा जी की भांति ही श्रीयुत अमृतशील एम० ए० ने 'रासो' की प्रामाणिकता पर सन्देह करते हुए सन् १९२६ की मई, जून तथा जुलाई की 'सरस्वती' में क्रमशः तीन लेख लिखे हैं। शील जी की कतिपय बातों को संक्षेप में नीचे दिया जाता है:—

(१) रासो में लिखा है कि 'पृथ्वीराज' जब 'अजमेर' राज्य के युवराज थे, तभी वे दिल्ली के राजा हो गए थे। इधर पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के बड़े भाई, चौथे विग्रहराज [बीसलदेव] का स० १२२० का एक शिलालेख दिल्ली फिरोजशाह वाली लाट पर मिला है। इसमें उनकी तीर्थयात्रा और देश-विजय का वर्णन है। इससे प्रमाणित होता है कि सं० १२२० के कुछ पहले ही बीसलदेव ने दिल्ली को जय किया था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सोमेश्वर के राज्यकाल में दिल्ली में अजमेर का कोई करदाता राजा राज्य करता था अथवा अजमेर राज का कोई वेतन-भोगी सामन्त वहाँ का दुर्ग-रक्षक था। पृथ्वीराज अजमेर के युवराज थे। उनका अपने पिता के आधीन किसी करदाता राजा अथवा उनके नौकर दुर्गरक्षक के घर गोद जाना केवल असम्भव ही नहीं, अश्रद्धेय भी प्रतीत होता है।

(२) रासो में पृथ्वीराज का जन्म समय सं० १२०५ दिया हुआ है और १२ वर्ष की अवस्था में उन्हें दिल्ली का राज्य मिलना लिखा गया है। अर्थात् स० १२१७ में उनको दिल्ली का राज्य मिला था। इसके पहले ही बीसलदेव ने दिल्ली जीती होगी। 'हम्मीर-महा-काव्य' चौहान वंश का इतिहास है। उसमें लिखा है कि बीसलदेव के देहान्त पर अमर गागेय राजा हुए, उनके बाद द्वितीय पृथ्वीराज,

उनके बाद सोमेश्वर राजा हुए। अतएव सोमेश्वर का राज्य-समय सं० १२२७ नहीं हो सकता।

(३) जब पृथ्वीराज का जन्म सं० १२०५ में हुआ था तब सं० १२०४ में सोमेश्वर अजमेर के सिंहासन पर होंगे और तभी उन्होंने अनङ्गपाल की सहायता करके कमला को प्राप्त किया होगा। परन्तु सं० १२२६ का एक शिलालेख सोमेश्वर के पहले के राजा द्वितीय पृथ्वीराज का मिला है और सं० १२२६ के फाल्गुन का लिखा हुआ बिजौलिया का प्रसिद्ध लेख सोमेश्वर का लिखा हुआ है। इससे प्रमाणित होता है कि सं० १२२६ में द्वितीय पृथ्वीराज का देहान्त और सोमेश्वर का राज्य-लाभ हुआ था। अतएव सं० १२०४ में अर्थात् २२ वर्ष पहले सोमेश्वर अनङ्गपाल की सहायता कर कमला से विवाह नहीं कर सकते।

(४) मुसलमान इतिहासकारों ने पृथ्वीराज को अजमेर का राजा लिखा है, दिल्ली से उनका कोई सम्बन्ध था या नहीं, इसका उल्लेख इन्होंने नहीं किया। 'तबक़ातेनासिरी' में दिल्ली के राजा का नाम 'गोविन्द राज' अथवा 'गोविन्द राय' लिखा है।

(५) फरिश्ता ने लिखा है कि पिथौरा का भाई चामुण्ड राय, दिल्ली का राजा था।

(६) ताज उल-मा आसीर में लिखा है कि "शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ५८७ हिजरी (सं० १२४८) में गजनी से लाहौर आया और सरदार हमज़ा को दूत बनाकर अजमेर के राजा के पास भेजा। उसने अजमेर के राजा को शास्ति देकर छोड़ दिया था, परन्तु जब सुना कि वह मुसलमानों से घृणा करता है और कुछ गड़बड़ करने की चेष्टा कर रहा है तब उसके शिरच्छेदन की आज्ञा दी। गोरी, राय पिथौरा के पुत्र को अजमेर का राज्य देकर दिल्ली चला गया। दिल्ली के राजा

ने अधीनता स्वीकार कर ली तथा कर देने की प्रतिज्ञा की। तब सुलतान कुछ सेना इन्द्रप्रस्थ में छोड़कर आप गज़नी चला गया।" इस वर्णन से प्रतीत होता है कि अजमेर और दिल्ली के राजा दो भिन्न भिन्न व्यक्ति थे। इससे यह भी नहीं मालूम होता कि दिल्ली के राजा से अजमेर के राजा का क्या सम्बन्ध था? उन दोनों में कोई कौटुम्बिक सम्बन्ध होना असम्भव भी नहीं है।

(७) पृथ्वीराज के ताँबे के कुछ पैसे मिले हैं। उनके एक ओर एक अश्वारोही मूर्ति है और "श्री पृथ्वीराज देव" लिखा है, दूसरी ओर एक बलद-मूर्ति है और "आसावरी श्री सामन्त देव" लिखा है। थोड़े से ऐसे पैसे भी मिले हैं जिनके एक ओर पृथ्वीराज का नाम और दूसरी ओर "सुलतान महम्मद साम" लिखा है। इन मुद्राओं से प्रमाणित होता है कि पृथ्वीराज कुछ दिनों के लिए अपनी स्वाधीनता गँवाकर मुहम्मद गोरी के सामन्त भी रहे और ये मुद्रायें उसी सामन्त-काल के समय की बनी हैं। ताज-उल मा आसीर से भी इस अवस्था का समर्थन होता है।

ऊपर के प्रमाणों के आधार पर श्री शील जी निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचे हैं :—

"उस समय दिल्ली में तोमर-वंश के राज्य का प्रमाण नहीं मिलता। राज्य भी हो तो पृथ्वीराज के मातामह का वश राज्य नहीं करता था। पृथ्वीराज दिल्ली गोद नहीं गए और न दिल्ली का राज्य उनको कभी मिला था। अपने "अन्तिम" युद्ध के समय वे दिल्ली में नहीं थे और न दिल्ली में वे अपना परिवार छोड़कर लड़ने ही गए थे। अन्तिम युद्ध के समय पृथ्वीराज शहाबुद्दीन के करदाता सामन्त थे। परन्तु यह पराधीनता कितने दिन तक रही, इसका ठीक पता नहीं मिलता।"

ऊपर के प्रबल ऐतिहासिक प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान रूप में 'पृथ्वीराज रासो' एक अप्रामाणिक ग्रन्थ है और इसकी रचना सत्रहवीं शताब्दि में पूर्व की नहीं है।

/ निष्कर्ष

रेवातट समयो

श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या द्वारा सम्पादित 'पृथ्वीराज रासो' का सत्ताईसवां समय 'रेवातट समयो' इस संग्रह में लिया गया है। 'रेवातट समयो' में 'पृथ्वीराज' तथा सुलतान मुहम्मद गोरी के रावी नदी के तट के युद्ध का वर्णन है। 'रेवा' से 'रावी' नदी का ही तात्पर्य है। इस 'समयो' का साराश अलग नहीं दिया जा रहा है। श्री पंड्या जी ने अपने सम्पादित ग्रन्थ में स्थान स्थान पर ऐसे शीर्षक दिए हैं जिससे कथा-भाग सरलता पूर्वक समझ में आ जाता है। पंड्या जी के इन शीर्षकों को उसी रूप में विद्यार्थियों की सुगमता के लिए दे दिया गया है।

अथ रेवातट समयौ लिख्यते।

सत्ताइसवां समय

प्रथ्वीराज का रेवातट आना सुनकर सुलतान की सेना सजकर चलना।

दूहा

रेवा तट आयौ सुन्यौ। बर गौरी चहुआन।
नर अवाज सब मिट्टि के। मजे सन सुरतान।

प्रथ्वीराज का कहना कि बहुत बडे शत्रु रूपी मृगो का समूह शिकार करने को मिला।

दूत बचन सभलि न्रपति। बर आपेटक पिल्ल॥
रेवातट पद्धर धरा। जह मृगन बर मिल्लि॥

राज्य-मन्त्रियो ने यह सम्मति दी कि अपने आप झगडा मोल लेना उचित नही, किन्तु नीति द्वारा काम लेना ठीक है।

कवित्त

मिले सब्ब सामन्त। मत्त मड्यौ मुनरे सुर॥
दह गुना दल साहि। साज चतुरङ्ग सजी उर॥
मवन मत चुकी न। सोइ वर मन्त विचारौ॥
बर भख्यौ अप्पनौ। साच पठ्छिलौ निहारौ॥

तन सट्टौ लीजै मुगति । सुगति बंध गोरी दलह ॥
संग्राम भीर प्रथिराज बल । अप्प मति किज्जै कलह ॥

यह बात सुनकर सामन्तों का मुसकाकर कहना कि भारथ का वचन है कि रण में मरने से ही वीर का कल्याण है।

सुनिय बत्त पज्जून । राव पर सग मुसक्यौ ॥
देव राव बग्गरी । सेन दे पाव कसक्यौ ॥
तन सट्टै सहि मुकति । बोल भारथ्थी बोलै ॥
लोह ग्रच उड्डंत । पत्त तरवर जिमि डोलै ॥
सुरतान चंपि मुष्पां लग्यौ । दिल्ली नृप दल बानिवौ ॥
भर भीर धीर सामन्त पुन । अबै पटंतर जानियौ ॥

पज्जूनराय का कहना कि मैंने सब शत्रुओं को पराजित किया और शहाबुद्दीन को भी पकड़ा । अब भी उससे नहीं डरता ।

कहै राव पज्जून । तार वर्ब्बों तत्तारिय ॥
मैं दष्षिन वै देस । भीर जद्दव पर पारिय ॥
मैं बंध्यौं जंगलू । राव चामंड सु सध्ये ॥
बंभन बास विरास । वीर बड़ गुज्जर तथ्ये ॥
भर विभर सेन चहुआन दल । गोरी दल कित्तक गिनौ ॥
जानै कि भीम कौरव सुवर । जर समूह तरवर किनौ ॥

जैतराव का कहना कि शहाबुद्दीन की सेना से मिलान होना लाहौर के पास अनुमान किया जाता है अतएव अपनी सब तैयारी कर लेनी उचित है, आगे जो आपकी इच्छा हो ।

कहै जैत पवार । सुनहु प्रथिराज राज मत ॥
सुद्ध साहि गोरी । नरिंद लाहौर कोट गत ॥

सवै सैन अप्पनी। राज एकट्ठ सु क्रिज्जै॥
इष्ट भ्रत्य सगपन सु। हित कागद लिषि दिज्जै॥
सामन्त सामि इहिमन्त है। अरु जुमत चित्तै नृपति॥
धन रहै ध्रम्म जसु जोग है। दिपति दीव दिव लोकपति॥

रघुवंसराम का कहना कि हम सामन्त लोग मंत्र क्या जानें? केवल मरना जानते हैं, पहले शाह को पकड़ा था अब भी पकड़ेंगे।

वह वह कहि, रघुवंश। राम हक्कारि सु उट्ठ्यौ॥
सुनौ सब्ब सामन्त। साहि आए बल छुट्यौ॥
गज रु सिष सा पुरष। जहाँ रूंधै तहाँ सुझ्झै॥
असम समौ जानहि न। लज्ज पकै आलुझ्झै॥
सामन्त मन्त जानैं नहीं। मत्त गहैं इक मरन कौ॥
सुरतान सेन पहिले बच्यौ। फिर बंधौं तो करन कौ॥

कविचन्द का कहना कि हे गुज्जर गँवारी बातें न कहो, इन्हीं बातों से राज्य का नाश होता है। हम सब के मरने पर राजा क्या करेगा?

रे गुज्जर गांवार। राज लै मन्त न होई॥
अप मर छिज्जै नृपति। कौन कारज यह जोई॥
सत्र सेवक चहुआन। देए भग्गै घर गिल्लै॥
पच्छि काम कह करै। स्वामि संग्राम इकल्ले॥
पडित्त भट्ट कवि गाइना। नृप सौदागिर वार हुअ॥
गजराज सीस सोभा वरन। कन उड़ाइ वह सोम लह॥

पृथ्वीराज का कहना कि जो बात आगे आई है, उसके लिए जुद्ध का सामान करो।

दूहा

परी पोर तन दंग गम। अग्ग जुद्ध सुरतान ॥
अब इह मत विचारये। नरन मरन परवान ॥
गजत सग प्रथिराज कै। है दिष्षिय परवान ॥
बजी पष्पर पड रे। चाहुआन सुरतान ॥
ग्यारह अष्पर पंच पट। लहु गुरु होइ समान ॥
कठ सोभ वर छन्द को। नाम कह्यौ परवान ॥

पृथ्वीराज के घोड़ा की शोभा का वर्णन।

छन्द कंठशोभा

फिरे हय वष्पर पष्पर से। मनें फिर इदुज पय कसे ॥
सोई उपमा कविचन्द कथे। सजे मनों पोंम पवग रथे ॥
उर पुट्ठिय सुट्ठिय दिट्ठयता। वपरो पय लगत ता धरिता ॥
लग्गे उड़ि छित्तिय चौ नलयं। सुने पुर केह अवत्तनयं ॥
अग बंधि सु हेम हमेल घनं। तब चामर जोत पवन रुनं ॥
ग्रह अट्टस तारक बीत पगे। मनो सुत के उर भान उगे ॥
पय मंडिहि अंसु धरे उलटा। मनौ बिंटय देषि चलै कुलटा ॥
मुष काढ्ढन घूंघट अरसु बली। मनों घुंघट दै कुलवद्धु चली ॥
तिन उपमा बरनी न धन। पुजे नन बाग पवंन मन ॥

आधी रात को दूत पृथ्वीराज के पास पहुँचा और समाचार दिया कि अट्ठारह हजार हाथी और अट्ठारह लाख सेना के साथ सुल्तान लाहौर से चौदह कोस पर आ पहुँचा।

कुंडलिया

नवे बज्जी घरियार घर। राज महल उठि जाइ ॥
निसा अद्ध वर उत्तरे। दूत सपते आइ ॥

दूत सपते आइ। धाइ चहुआन सु जग्गिय।
तिघ विहथ्थें मुक्कि। साहि साहों उर तग्गिय।
अट्ठ सहस गजराज। लष्प अट्ठारह ताजिय।
उभै सत्त वर कोस। साहि गौरी नव बाजिय।

पृथ्वीराज ने दूत से पत्र लेकर पढ़ा—हिन्दुओं के दल मे शोर मच गया।

दूहा

बंचि कागद चहुँआन नें। फिरन चन्द सह थान।
मनो वीर तनु अंकुरे। मुगति भोग बनि प्रान।
मची कूह दल हिन्दु के। कसे सनाह सनाह।
वर चिराक दस सहस भइ। बजि निसान अरिदाह।

दूत का दरबार मे आकर पृथ्वीराज से कहना कि मुसलमान सेना चिनाब के पार आ गई। चन्दपुंडीर ने उसका रास्ता बांध-कर मुझे इधर भेजा है।

वा बस्त्रू नृप मुक्कते। दूत आइ तिहि वार।
सजी सेन गोरी सुभर। उत्तरए नद पार।
पंचा सज गोरी नृपति। वध उतरि नहिं पार।
चन्द वीर पुंडीर नें। थटि मुक्कें दरबार।

सुलतान का अपने सामन्तों के साथ युद्ध के लिये प्रस्तुत होना।

कवित्त—

पा मारुफ ततार। षान षिलची वर गद्दे।
चामर छत्र मुजक्क। गोल सेना रचि गद्दे।

मारि मारि जम्बूर। सुबर काना गजसार।
नूरीं षा हुज्जाव। नूर महमद सिर भार।
वजीर षान गोरी सुभर। षान षान हजरत्ति षा।
विय सजि सेन हरवल करिय। तहा उभौ सज्जरत्ति षा।

शाहजादे का सरदारों के साथ सेना हरवल रचना और सेना के मुख्य सरदारों के नाम और उनका पराक्रम वर्णन।

रचि हरवल सुरतान। साहिजादा सुरतान।
षा पैदा महमूद। वीर वध्यौ मुविहान।
षा मगोल लल्लरी। वीस टकी वर पचै।
चौ तेगी सह बाज। बान अरि प्रान सु अचै।
जॅहगीर षान जह गोर वर। षा हिन्दू वर वर विहर।
पच्छिमी षान पट्टान सह। रचि उम्भे हरवल गहर।
रच्चि हरवल पट्ठान। षान इसमान द गष्पर।
षेली षा कुजरी। साह सारी दल पष्पर।
षा भट्टी मह नग। षान षुरसानी बब्बर।
हबस षान हुज्जाब। श्रब्ब आलम्म जास वर।
तिन अग्ग श्रट्ठ गजराज वर। मद झरक पट्टे तिना।
पच्च दिन दिढ जो ऊपजे। जुद्ध दौह लज्जी बिना।

शहाबुद्दीन का इस पार, बीस दूतों को रखकर, चिनाव पार करना।

करिल भाय बहु साहि। बीस तहँ रष्षि फिरस्ते।
आलम षान गुमान। षान उजवक्क निरस्ते।
लहु मारुफ गुमस्त। षान दुस्तम बजरंगी।
हिंदु सेन उप्परें। साहिबज्जै रन जंगी।

सह सेन टारि सोरा रच्यौ। साहि चिनाब सु उत्तर्यौ।
सभले सूर सामन्त नृप। रोस बीर नीर ढुर्यौ।

यह सुनकर पृथ्वीराज का क्रोध करना और दूत का कहना कि पुंडीर उसे रोके हुए है।

दूहा

तमसि तमसि सामन्त सब। रोस भरिग अधिराज।
जब लगि चंपि पुंडीर नें। रोक्यौ गौरी साज।

जहाँ पर सुलतान चिनाब पर उतरने वाला था, वहीं पुंडीर ने रास्ता रोका। घोर युद्ध हुआ। चन्दपुण्डीर घायल होकर गिरा। सुलतान पार होने लगा।

भुजंगी

जहाँ उत्तर्यौ साहि चिन्हाब मीर। तहाँ नेज गद्दयौ ठुक्के पुंडीर।
करी आनि साहाब सा बधि गोरी। धके धीग धीग धकावे सजोरी।
दोऊ दीन दीन कढी बकि अस्सी। किधौं मेघ में बीज कोटिन्नि रस्सी।
किए खिप्पर कीर ता सेल अग्गी। किधौं बद्दर कीर नागिन नग्गी।
हबक्के सु मेछ भ्रमत सु छुट्टे। मनौं बेरनी बुम्मि पारेव तुट्टे।
उर फुट्टि बरछी वर छुब्बि नासी। मनो जाल में मीन अद्धी निकासी।
लटक्के तुरन उडै हस हल्लै। रस भीति सूरं चवग्गान पिल्लै।
लगे सीस नेजा भ्रमे भोज तथ्थे। मयं नाइस मात दीपत्ति मथ्थे।
करै मार मार महावीर धीर। भये मेघ धारा नरप्पत तीर।
परे पच पुंडीर सा चद कढ्यौ। तबै साहि गोरी स चन्हाब चल्यौ।

सुलतान का चिनाब उतरना और चन्दपुण्डीर का गिरना देखकर दूत ने बढ़कर पृथ्वीराज को समाचार दिया।

कवित्त

उतरि साहि चिन्हाव। धाय पुंडीर लुथ्यि पर।
उप्पायौ वर चद। पच वंधव सु पथ्थ घर।
दिष्यि दूत वर चरित। पास आयो चहुआन।
उप्पर गोरी नरिंद। हास बढ्ढी सुरतान।
बर मीर धीर मारूफ दुरि। पच अनी एकठ जुरी।
सुर पंच कोस लाहौर तें। मेच्छ मिलानह सी करी।

पृथ्वीराज ने क्रोध के साथ प्रतिज्ञा की कि तब मैं सोमेश्वर का वेटा जो फिर सुलतान को कैद करूँ। पृथ्वीराज ने चन्द्रव्यूह की रचना करके चढ़ाई की।

दूहा

बीर रोस बर बैर यर। झुकि लग्गै असमान।
तौ नन्दन सोमेस कौ। फिरि वंधौ सुरतान।
चन्द्रव्यूह नृप बंधि दल। घनि प्रथिराज नरिंद।
साहि वध सुरतान सौं। सेना विन विधि फद।

पंचमी मङ्गलवार को पृथ्वीराज ने चढ़ाई की। कवि ने उस दिन के ग्रह स्थिति योग आदि का वर्णन किया है।

कवित्त

वर मंगल पञ्चमी। दिन सु दीनौ प्रथिराज।
राहु केत जय दीन। दुष्ट टारे सुभ काज।
अष्ट चन्द जोगनी। भोग भरनी सुधि रारी।
गुर पचम रवि पच। अष्ट मगल नृप भारी।

के इन्द्र जुद्ध भारथ्य भल। कर त्रिमूल चक्का वलिय।
सुभ घरिय राज वर लीन वर। चल्यौ उदै क्रूरह वलिय।

दूहा

सो रचि उद्ध अवद्ध अध। उग्गि मद्दव विधि कद।
वर निपेध नृप वदयौ। को न भाय कवि चन्द।

जिस प्रकार चक्रवाक, साधु, रोगी, निर्धन, विरह-वियोगी लोग रात्रि के अवसान और सूर्योदय की इच्छा करते हैं उसी प्रकार पृथ्वीराज भी सूर्योदय को चाहता था।

कवित्त--

प्रात सूर वछ्छई। चक्क चक्किय रवि वछ्छै।
प्रात सूर वछ्छई। सुरह बुद्धि वल सो इछ्छै।
प्रात सूर वछ्छई। प्रात वर वछ्छि वियोगी।
प्रात सूर वछ्छई। ज्यों सु वछ्छै वर रोगी।
वछ्यौ प्रात ज्यों त्यों उनन। वछ्छै रंक करन्न वर।
वछ्यौ प्रात प्रथिराज नें। सत्ती सत्त वछ्छैति उर।

पृथ्वीराज की सेना तथा चढ़ाई का वर्णन।

दण्डमाली

भय प्रात रत्तिय, जुरत दोसय, चद मंदय चंद यौ।
भर तमस तामस, सूर वर भरि, रास तामस छंद यौ।
वर वज्जियं नीसान धुनि, घन वीर वरनि अंकूरयं।
धर धरकि धाइर, करिप काइर, रस मिसूर सकूरयं।

गज घट धनकिय, रद्द घनक्किय, पनकि मक्कर उड्यौ।
रन नक्कि भेरिय, कन्ह होरिय, दन्ति दान धन दयौ।
सुनि वीर सद्दइ, सबद पद्दइ, सद्द असद्दइ छंडयौ।
तिह ठौर अद्भुत, होत नर दल, बधि दुज्जन पडयौ।
सन्नाह सूरज सज्जि घाट, चंद ओपम राजई।
मुक्कर में प्रतिब्यब राजय, सत घन ससि साजई।
वर फ़ल्लि वंवर, टोप आयौ, त रोस सीसत आइए।
नष्पित्र हस्त कि, भान चपक, कमल सूरहि साइए।
बर वीर धा जोगिंद पत्तिय, कब्यि ओपम पाइय।
तजि मोह माया, छांह कल बर, धार तित्थह धाइयं।
संसार शक्कर बन्धि, गज जिम, अप्प बंधन हथ्थयं।
उनमत्त गज जिमि, नंख दीनी, मोह माया सथ्थयं।
सो प्रबल मह जुग बन्धि जोगी, मुनी आरम देवयौ।
सामन्त धनि जिम वित्ति कीनी, पत्त तरू जिमि भेवयौ।

दूहा

क्रम गाह इक मुगत की। क्यों करिजै बापान।
मन अनंप सामन्त नै। कच कर व्रति पापान॥
बाई विप धुधरी परिय। वद्दर छाए भान।
कुन घर मगल बज्जही। कै चढ़ि मगल आन॥

दोनों ओर की सेनाओं के चमकते हुए अस्त्र-शस्त्र औ निशानों का वर्णन।

दिष्ट देपि सुरतान दल। लोहा चक्कत बान।
धहकि फेरि उड्गन चले। निसि आगम फिर जान।

धजा गाइ नकुर उडति। छवि कविंद इह भाइ।
उडगन चद नरिंद लिय। लगी मनों श्रइ पाइ।
से सनि सकहि वजतहि। वाजे कुहक सुरग।
मेटें सद्द निसान के। सुने न श्रवनति श्रग।

जब दोनों सेनाए सामने हुई तब मेवारपति रावल समरसिंह ने आगे बढकर युद्ध आरम्भ किया।

अनी दोउ घनघोर ज्यों। घाय मिले कर घाट।
चित्रगी रावर बिना। करें कोन दह बाट।

कवित्त

पवन रूप परचड। घालि अमु असि वर भारे।
मार मार सुर वज्जि। पत्त तरू अरि सिर पारे।
पहक्कि सद्द फेकरा। हड्डु ककर उप्पारे।
कटि मसुड परि मुड। भिड कटक उप्पारे।
वज्जयौं विषम मेवार पति। रज उडाद सुरतान दल।
समरथ्थ समर सम्मर मिलिय। अनी मुष्प पिष्षौ सबल।

रावल, जैत पँवार, चामटराय और हुसेनषा का क्रमानुसार हरावल मे आक्रमण करना। पाठि सेना का पीछे से बढ़ना।

रावर उप्पर धाई। परयौ पावार जैत दिषि।
तिहि उप्पर चामड। क्यौं हुस्सेन षान सजि।
धकाइ धक्काइ। दाइ हरवल तर मज्झै।
पच्छ सेन आहुट्टि। अना रषी आलुभझै।

गजराज विय सु सुरतान दल । दह चतुरँग वर बार बर ।
घनि धार धार धारह धनी । नर भट्टी उप्पारि कर ।

हिन्दू सेना की चन्द्र व्यूह रचना ।

छत्र सु जाक सु अप्पि । जैत दीनो सिर छत्र ।
चन्द्रव्यूह अकुरिय । राज तुअ इहा इकत्र ।
एक अग्र हूसेन । वीय अग्रह पुडीर ।
मद्धि भाग रघुवंस । राम उम्भो नर नीर ।
सापलौं सूर सारंग दे । उररि पान गोरीय सुप ।
हथनारि गोर जबूर घन । दुहूं वाह उम्भति रप ।

दोपहर के समय चंदपुंडीर का तिरछा रुख देखकर शत्रु-सेना को दबाना ।

छुडि अद्ध वर घरिय चढ्यौ मध्यान भान सिर ।
सूर कध वर कढिढ । मिलै कादर कुरग वर ।
घरी अद्ध वर अद्ध । लोह सो लोह जु रुक्के ।
मन अग्ग अरि मिले । चित्त में कक परक्के ।
पु डीर भीर भजन भिरन । लरन तिरच्छौ लग्गयौ ।
नव बधू जेन सका सुवर । उदौ जानि जिम भग्गयौ ।

पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का सम्मुख घोर युद्ध होना । योगिनी भैरव आदि का आनन्द से नाचना ।

भुजगी

मिले चाइ चहुआन सा चपि गोरी । स्वयं पंच फेरी निसानं अद्दोरी ।
बजे आवद्ध सभरे अद्ध नोस । घने अग्ग नीसान मिलि अद्ध कोस ।

बरबबर चौर माहीति साई। ले छत्र पीत बले यार धाई।
बुले सूर हक्के दहक्के पचार। चले बध्य दोऊ घर जा अपार।
उत मग तुट्ट परे श्रेन धारी। मनों दंड मुक्की श्रगी बाइ बारी।
नचै कघ बध हर्कै सीस भारी। तहा जोग माया जकी सी बिचारी।
बढी साँग लग्गी नजी धार धार। तहा सैंन दूनू करै मार मार।
नचै रंग भैरु गहै ताल बीर। सुरंग अच्छरी बंधि नारद तीर।
इसी जुद्द बध उब्बेद्दे उभान। भिरे गोरिय सेन अरु चाहुआन।
करै कुंडली तेग बग्गी प्रमान। मनो मंडली रास त कन्ह बान।
फुटी आवध माहि सामंत सूर। बजे गोर श्रोर मनों बज्ज कूर।
लगी धार धार तनै बरह तुट्टै। दुहूँ कुम्भ भग्गे बरं क अहुट्टै।
फुटी श्रॉन भीम अप निय राज। मनों मेघ बुद्दें प्रथीमी समाज।
पराक्रम्म राज प्रथीपत्ति रुट्यौ। रन रुन्धि गोरी सह जग जुट्यौ।

सुलतान का घबराना। तातारखाँ का धैर्य दिलाना।

दूहा

तेज छुट्टि गोरी सुबर। दिय धीरज तत्तार॥
मो उम्मै सुरतान की। भीर परी इन बार॥

उक्त युद्ध की वसंत ऋतु से उपमा वर्णन।

मोतीदाम

रतिराज रु जोवन राजत जोर। चॅपी ससिर उर शैशव कोर।
उनी मधि मद्धि मधू धुनि होय। तिन उपमा बरनी कवि जोय।
सुनी वर श्रागम जुब्बन नैन। लागी कबहूँ न सु उद्दिम मैन।
कबहू दुरि कनन पुच्छत नैन। कही किन श्रब्ब दुरी दुरि नैन।
शशि रोर नसे सर दुंदभि बज्जि। उभै रतिरान सुजोबन सज्जि।

कही वर श्रोन सुरगिय रज्जि । चंपे रन दोउ वन वन भज्जि
इय मीनन लीन भये रत रज्जि । भग विभ्रम भारू परी गहि नज्ज
सुर मारुत फौज प्रथम चलाइ । गति लज्जि सकुचि कछे मिलि भ्राइ
दहि सीत मधूप न कदहि जीव । प्रकटै उर तुच्छ सोऊ उर भीव
बिन पल्लव कोरहि तारहि रभ । गहना बिन बाल बिराजत अंभ
कलि कठन कठ सज्यौ अलि पम । न उड्डिय भग नवेलिय अँप
सजी चतुरङ्ग सज्यौ बन राइ । वजी इन उप्पर सैसव जाइ
कवि मत्तिय जुद्द तिन बहु घोर । बन तन सधय चंद कठोर

रसावला

बोल पुच्छै धन, स्वामि जपे मन । रोष लग्गो तनं, सिघ मर्द मन
छोह मोह पिन, दान छुट्टै नन । नाम राजै घन, प्रेम सातुक्कन
मेच्छ वाहं विन, रत्त कध ननं । ढल्ल जी ढाहन, जीवता सा हत
बान जा सधन, पथि जा वधन । स्याम सेत अनी, पीत रत्त घनी
कूह मची परी, रास दती फिरी । फौज फट्टी पुन सूर ऊमे घन
लेहु लेहु करी, लोह कड्ढे अरी । कन्ह जा समरी, पाइ मडे फिरी
बीर हक्क करी, नैन रत्त'वरी । पड जा पोलिय, बीर सा बोलिय ।
बीर वज्जे चुर दति पट्टे छुर । भार सकोरीय, फौज विप्फोरियं ।
दन्त रुद्धी परे, अग्ग फूल भरे । हेमय नारिय जावक ढारिय ।
आनन ईकय, अग जान चय । सत्त साम तयं बान सा पच्थय ।
फौज दोऊ फटो जानि जूनी ठटी । .... ।

सोलंकी माधवराय ने खिलजीयों से तलवार का युद्ध होने लगा । माधवराय की तलवार टूट गई तब वह कटार से लड़ने लगा । शत्रुओं ने अधर्म युद्ध से उसे मार गिराया ।

कवित्त

सोलंकी माधव। नरिंद दिलचौ मुष लग्गा।
मुगर वीर रस नीर। नीर वीरा रस पग्गा।
दुस्मन उद्ध सुध तेग। दुट्टू हथ्थन उम्भारिय।
तेग तुट्टि चालुक्क। वथ्थ परि कद्दि कटारिय।
अग अग रुधि ठिल्लै वलन। अधम उद्ध लग्गे लरन।
सारंग वध घन घाव परि। गोरी वै दिन्नौ मरन।

वीर गति से मरने पर मोक्षपद पाने की प्रशंसा।

पग्ग हटक्कि त्रुटिक्क। जमन सेना 'समद गजि।
हय गज वर हिल्लोर। गरुअ गोइंद दिथ्थि सजि।
अनम अठेल अभग। नीर अमि मीर समाहिय।
अति दल बल आहुट्टि। पच्छ लज्जो पर वाहिय।
रज तज्ज रज्ज मुक्कि न रहौ। रज न लगी रजरज भयो।
उच्छगन अच्छर सो लयो। देव विमानन चढ़ि गयो।

जै सिंह की वीरता और उसकी वीर-मृत्यु की प्रशंसा।

परि पतंग जै सिंघ। पतँग अप्पुन तन दम्झै।
नव पतंग गति लीन। करे अरि अरिधज धज्जै।
तेल ठाम वार्त्ताय। अगन्नि एकल विदझाइय।
पच अप्प अरि पत्त। पच अरि पथ लगाइय।
आरनि कू आरी बर बरयो। दै दाहन दुजन दवन।
जीतेव असुर महि मंडलह। और ताहि पुज्जै कवन।

वीर पुंडीर के भाई की वीरता और उसके कमध का खड़ा होना।

रुप्यौ बीर पु डरी । फिरो पारस सुरतानो ।
शस्त्र बीर चमक्त । तेज आरुहि सिर ठानी ।
टोप ओप तुटि फिरच । सार सारद जरि भारे ।
मिली नछित्र रोहनी । सीस ससि उडगन चारे ।
उठि परत भिरत भजत अरिन । जै जै जै सुर लोक हुअ ।
उठयौ कमध पल पच चव । कौन नाइ कप्यौ जु धुअ ।

पज्जूनराय के भाई पल्हानराय का खुरसानखां के हाथ से मारा जाना ।

दुजन सल कू रभ । वध पल्हन स्क्कारिय ।
संम्हौ पा पुरसान । तेग लग्गी उभ्भारिय ।
टोप टुट्टि वर वरी । सीस परि तुट्टि कमध ।
मार मार उच्चार । तार त नचि कमध ।
तहँ देपि रुद्र रुद्रह हस्यौ । हय हय हय नदी कह्यौ ।
कवि चद शैल पुत्री चकित । पिप्पि बीर भारथ नयो ।

जैसिह के भाई का मारा जाना

सोलकी सारग । पान पिलची मुप लग्गा ।
वह पगानौ भत्त । इते चहुआन विलग्गा ।
है कध न दिय पाय । कन्द उत्तरि दिय वाजिय ।
गज गुजार हुँकार । धरा गिर कदर गाजिय ।
जय जयति देव जै जै वरहि । पहुपजलि पूजत रिनह ।
इन परचौ पेत साधै सकल । इक रह्यौ बधै धुनह ।

गोइन्दराय का तत्तारखां के हाथी और फीलवान को मार गिराना ।

करी मुष्य आहुट्ट । बीर गोइंद सु अप्पै ।
कवित्त पील जनु कन्द । दन्त दावन गहि नप्पै ।
सुंड दहं भये षंड । पीलवानं गज मुक्यौ ।
गिद्धि सिद्धि वेताल । आइ अपिन पल रुक्यौ ।

वर बीर परयौ भारथ्थ वर । लोह लहरी लगात झुल्यौ ।
तत्तार पान मम्ह्यौ सु क्रत । सिंघ हक्कि अंबर डुल्यौ ।

नरसिंहराय के सिर में घाव लगने से उसके गिर
ने पर चामुंडराय का उसकी रक्षा करना ।

पोलि पग्ग नरसिंघ । पिभ्भिफ पज सीसह भारिय ।
त्रुटि धर धरनि परंत । परत संभरि कट्टारिय ।
चरन अंत उरझंत । बीर कूरंभ करारौ ।
तेग धाइ चुक्कत । झरी झर लोह संभारौ ।

चलि गयौ क्रमन कम्मन चलै । डुल्यौ न डुल्ल तन हथ्थ वर ।
तिन परत बीर दाहर तनौ । चामंडा वज्जी लहर ।

रात होगई दूसरे दिन सबेरे फिर पृथ्वीराज ने शत्रुओं
को आ घेरा ।

भुजंगी

छुटी छंदनी छन्द सीमा प्रमानं । मिली ढालनी माल राही समानं ।
निसा मान नीसान नीसान धूम्रं । धुम्रं धूरिनं मूरिनं पूर कुम्रं ।
सुरत्तान फौजं तिनें पचि फेरी । मुषं लग्गि चहुआन पाररस घेरी ।
भये प्रात सुप्रात संग्राम पालं । चहुव्वान उट्ठाय सालोपि थालं ।

जैतराय के भाई लक्ष्मणराय के मरते समय अप्स-

राओं का उसके पाने की इच्छा करना परतु उसका सूर्य-लोक भेद कर मोक्ष पाना ।

कवित्त

जैत वन्ध ढहि परयौ । लष्य लष्यन कौ जायौ ।
तहँ भगरी मह माय । देवि हुँकारौ पायौ ।
हुँकारे हुँकार । जुह गिद्धनि उड्डायौ ।
गिद्धिन तें अपछरा । लियौ चाहत नहिं पायौ ।
अवतरन सोइ उतपति गयौ । देवथान विभ्रम बियौ ।
जम लोक न शिवपुर ब्रह्मपुर । भान थान भानै बियौ ।
तन झझरि पावार । परयौ धरमुच्छि घटिय बिय ।
वर अक्षर विटयौ । सुरङ्ग मुक्के सुरङ्ग हिय ।
तिहित बाल ततकाल । सलप वधिव ढिग आइय ।
लिपिय अङ्ग बिय अध्ध । सोइ वर वच दिषाइय ।
जनम मरन सह दुह सुगति । नन मिट्टै मिटह न तुअ ।
ए वार सुवर बटहु नहीं । वधि लेहु सुक्की बधुअ ।

महादेव का, लक्ष्मण का सिर, अपनी माला के लिये लेना ।

दूहा

राम वन्ध कौ सीस वर । ईस गह्यौ कर चाइ ।
अथ्यि दरिद्री ज्यौं भयौ । देषि देषि ललचाइ ।

एक पहर दिन चढ़े जङ्घा योगी ने त्रिशूल लेकर घोर युद्ध मचाया ।

जाम एक दिन चढत वर । जघारौ झुकि वीर ।
तीर जेम तत्तौ परयौ । घर अप्पारे मीर ।

कवित्त

जपारी जोगी । जुगिन्द कढ्यौ कट्टारी ॥
परस पानि तुट्टो । त्रिसूल मप्पर अधिकारी ॥
जटत रान सिगी । विभूत हर वर हर सारी ।
सरर सद्द रद्दयौ । विषम मद गघन भारी ।
आसन सदिट्ठ निज पत्ति मे । लिय सिर चन्द अम्रित अमर ।
मडलीक राम रावन भिरत । नमौ वीर इत्तौ समर ।

शस्त्र सजकर सुलतान का युद्ध मे लडना । लङ्गरीराय का वीर युद्ध मचाना । लङ्गरीराय की वीरता की प्रशसा ।

सिलह सज्जि सुरतान । भुक्कि बज्जै रन जग ।
सुनें श्रवन लङ्गरी । वीर लग्गा अनभग ।
वीर धीर सत मध्य । वीर हुँकारि रन धायौ ।
सामता सत मद्धि । मरन ।दीन, भय सायौ ,
पारत धक्क हक्कत रन । पग प्रवाह पग पुल्लयौ ।
बिम्भूत चद अगन तिलक । वद्दसि वीर हकि बुल्लयौ ।
लगा लोह उच्चाह । परयौ घुमर घन मझझै ।
तुरत तेग सम नेग । कार रद्दर कछु सुभझै ।
यों लग्गौ सुरतान । अनल दावानल दग्ग ।
ज्यों लगूर लगाया । अगनि । अगै आलग्ग ।
इक मार उभार अपार मल । एक उभार सुभारयौ ।
इक बार तरयो दुस्तर रुपे । दूजै तेग उभारयौ ।

कुडलिया

तेग झारि उभ्भारि वर । फिरि उपमा कवि कथ्थ ।
नैन बान अंकुर सुट्टरि । तन तुट्टे गहि हथ्थ ।

तन तुट्टै नहि हथ्थ। फेरि वर मीर स बीरह।
मरन चित्त चित्तयौ। जनम जिन तजी जजीरह।
हथ्थ वथ्थ ग्राहिन। फेरि तक्के उर वेगा।
लगा लगरि राइ। वीर उच्चाइ सु लेगा।

लोहाने की वीरता का वर्णन। चौसठ खांओं का मारा जाना।

कवित्त

लोहानी मद मुद। बान मुक्कै बहु मारी।
फुट्टि सु ठट्टर ज्वान। पिट्ठ करद्ध निकारी।
मनो किवारी लागि। पुट्ठि पिरकी उघ्घारिय।
चट्टारी वर कट्टि। वीर अवसान सभारिय।

एक भर मीर उरझारि भर। करि सुमेर परि अरि सु फिरि।
चवसट्ठि पान गोरी परै। तिन रावत इक राज परि।

मानि लोह मारुफ। रोस विड्डुर गाहक्के।
मनु पचानन बाहि। सद्द सिरद्दद् हहक्के।
दुहू मीर वर तेज। सीस इक सिंधह बाही।
टोप तुट्टि बदकरी। चंद ओपमता पाई।

मनु सीस बीच शृँग बिज्जुलह। रही हेत तुटि मान हति।
उलमग सुद्दै नि टूक हैं। मनु उडगन नप तेज मति।

चौसठ खान मारे गये और तेरह हिन्दू सरदार मारे गए। हिन्दू सरदारों के नाम तथा उनका किससे युद्ध हुआ इसका वर्णन।

भुजगी

परे पान चौसट्ठि गोरी नरिंद । परे सुभर तेरह कहे नाम चंद ।
परे लुथ्यि लुथ्थी जु सेना अलुझ्झै । लिपे कक अक बिना कौन बुझ्झै ।
पर्‍यौ गोर जैत मधि सेस दारी । जिन राषिय रेह अजमेर सारी ।
पर्‍यौ कनक आहुट्ठ गोविन्द अंध । जिने मेंछकी पारस सन्न पद्ध ।
पर्‍यौ प्रथ्थ वीर रघुवंस राई । जिनें सधि पधार गारी गिराइ ।
पर्‍यौ जैत बध सु पावार भान । जिनें भजिय मीर बानेति बान ।
पर्‍यौ जोध सम्राम सो हक मोरी । जिनें कढ्ढिय वैर गोदत गोरी ।
पर्‍यौ दाहिमो देव नरसिंघ असी । जिने साहि गोरी मिल्यौ पान गसी ।
पर्‍यौ नार बानेत नादत नाद । जिने साहि गोरी गिल्यौ साहिजाद ।
पर्‍यौ जावली जाल्हते सैन भष्य । हए सार मुष्प निकरसत नष्य ।
पर्‍यौ पाल्हन बंध माल्हन राजी । जिनें अग्ग गोरी क्रम सत्त भाजी ।
पर्‍यौ मीर चहुआन सारङ्ग सोर । नजे दोद मैंद ज आकास तोर ।
पर्‍यौ राव भट्टी बर पच पच्चं । जिनें मुक्ति के पथ चल्लाइ सच ।
पर्‍यौ भान पुडीर ते सोम कम । भिले जुझ्झय बज्जयो पच जम ।
पर्‍यौ राउ परसग लहु बंध भाई । तिन मुक्ति असछिन मझि पाई ।
पर्‍यौ साहि गोरी भिरे चाहुआन । कुसादे कुसादे चवै मुष्प पान ।

दूसरे दिन तत्तारखा का शहाबुद्दीन को विकट व्यूह के मध्य मे रखकर युद्ध करना और सामन्तों का क्रोध कर शाह की तरफ बढना ।

कवित्त

दस हथ्थी सु विहान । साहि गोरी मुष किन्नौ ।
कर अकास बादौं । ततार चवकोद स दिन्नौं ।
नारि गोरि जंबूर । कुहक वर बान अघात ।
गज्जि भग्ग प्रथिराज । चित्त करयो अकुलात ।

सो मोह कोह वर बज्जि कें। अज उन धारय धमसि कैं।
सामन्त सूर बर बीर बर। उठे बीर बर हमसि कैं।
अद्ध अद्ध जोजनह। मीर उडि सगा केरी।
तब गोरी सुरतान। रोस सामतह घेरी।
चक्र अवन चौंडोल। अग्ग सेपन पचासौ।
मूर कोट हैं जोट। सार मारनह हुलासौ।
नर अगनि चगी हल्लौ नहीं। पछर कोट सुजोट हुअ।
वर नीर रास समरह परिय। सार धार वर कोट हुअ।

रसानला

मेलि माह भर पग्ग पोले रूर। हिंदु मेछ जुर, मत जा जभर।
दल कड्ढे कर उप्पमा उप्पर। केद भील जुर, कोपि कड्ढे कर।
कथ नन धर पप जप्प फिर। तीर नये कर मेघ जुट्ट बर।
आवध सम्भर नक तेग कर। चद बीज बरं अद्ध अद्ध धर।
नीय नध धर किति जपै सर। असु दुट्टै फिर रभ वढ्ढे बर।
धान धान नर, धार धार, तुटं। भ्रम वास कुट.. ... ..।
साह गोरी वर पप पोले कर। ....।

खुरासानखा का सुलतान के वचन पर तैश आकर घोर युद्ध मचाना।

कवित्त

पा पुरसान ततार। पिभ्भूकि दुज्जन दल भर्ष्षे।
वचन स्वामि उर पटकि। हटकि तत्त्वी कर नचै।
कज्जल पति गज विधुरि। मध्य सैन चहुआनी।
अनै मानि जै रारि। विपस तेरह चपि प्रानी।

घामन्त फिररतन कढ़ि असी। दहति पिंड सामंत भजि।
बर बीर भीर वाहन कहर। परे धाइ चतुरंग सजि।

रघुवंसी के घोर युद्ध का वर्णन।

भुजंगी

परयौ रघुवंसी अरी सेन जाड़ी। हुतौ बाल वेसं सपं लज्ज डाड़ी।
बिना लज्ज पथ्थे सची ढुंढि पिप्पी। मनौ डिभरू जानि कै मीन झप्पी।
परयौ रूक रिनवट्ट अरि-सेन माही। मनो एक तेगं भरी नीर दाही।
फिरैं अट्ठ वट्ठे उपम्मान चढ्ढे। विश्वकम्म वंनी किदायन्न गढ्ढे।
परे हिन्दु मेच्छं उलथ्थी पलथ्थी। करै रंभ भैरं ततथ्थे ततथ्थी।
गहे अंत गिद्धं बरं जे कराली। मनों नाल कट्टै कि सोमैं म्रनाली।
छुटे एकटं गाढ़ि कै पग्ग धायौ। मनौं विक्रम राइ गोविंद पायौ।
ननं मानवं जुद्ध दानव्व ऐसौ। ननं इंद तारक्क मारथ्थ कैसो।
मकं बज्जि झाकारय झंपि उट्टै। बरं लाह पच्च वधं पंच छुट्टै।
मनोसिंघ उभ्भैं अरुभ्झंत छुट्टै। रनं देव साईं सए ग्राव घुट्टै।
घनं घोर ढुंढं उतकंठ फेरी। लगे भागरैं हस हजार एरी।
तुटै रुंड मुंड बरं जो करेरी। बरद्दाइ रिझैं दुहूँ दिन्न मेरी।

लड़ाई के पीछे स्वर्ग में रम्भाने मेनका से पूछा कि तू उदास क्यों है ? उसने उत्तर दिया कि आज किसी को वरन करने का अवसर नहीं मिला।

कवित्त

पच्छै भौ संग्राम। अग्ग अप्छर विचारिय।
पुछै रंभ मेनिका। अज चिंत्त किम भारिय।

तब उत्तर दिय फेरि। अज पहुनाई आइय।
रथ्थ बैठि औयान। संभतह कत न पाइय।
भर सुभर परें भारथ्थ भिरि। ठाम ठाम चुप जीत सथ।
उथकीय पंथ हल्लै चल्यौ। सुथिर सभौं देषीय तथ।

रम्भाने कहा कि इन वीरो ने या तो विष्णुलोक पाया या ये सूर्य मे जा समाए।

कुँडलिया

कहैं रंभ सुनि मेनकनि। ए रहु जिन मत जुथ्थ।
अरिय अन मति जानि करि। जुति आवे ग्रह रथ्थ।
जुति आवें ग्रह रथ्थ। ब्रह्म शिव लोकह छडी।
विश्न लोक ग्रह करै। भान तन सो तन मडी।
रोमचि निलक्क वसि वरी। इन्द्र वधू पूजन जहीं।
ओपम्म अंग नन हुअ बहुरि। अब तारन बरहै कहीं।

हुसैनखां घोड़े से गिर पड़ा, उजवकखां खेत रहा, मारूफखां तातारखा सब परत होगये, तब दूसरे दिन सबेरे सुलतान स्वयं तलवार निकालकर लड़ने लगा।

कवित्त

षा हुसेन 'दरि परयौ। अस्व फुनि परयौ सार बहि।
भुभूफ फेरि सति षीव। षान उजवक्क। षेत रहि।
षा ततार मारूफ। षान षाना घट धुम्मैं।
तब गोरी सु। बिहान। आइ दुजन मुष भुम्मैं।
कर तेग भल्लि मुट्ठिय सुबर। नहिं सुलतानह पन करी।
अदि हार दीह पलटे सुबर। तबहि साहि फिरि पुक्करी।

सुलतान ने एक बान से रघुवंस गुसाईं को मारा। दूसरे से भीम भट्टी को। तीसरा बान हाथ का हाथ ही में रहा कि पृथ्वी-राज ने उसे कमान डालकर पकड़ लिया।

तब साहिब गोरी नरिंद। सतबान समाहिय।
पहिलबान वर बीर। हने रघुवंश गुसांइय।
दुजे बान ते कएठ। भीम भट्टी वर भजिय।
चहूआन तिय बान। पान अद्ध धरि रजिय।
चहुआन कमान सु सधि करि। तीय बान हथ हथ रहिय।
तब लग्गि ऋपि प्रथिराज नें। गोरी वे गुजर गहिय।

सुलतान को पकडकर और हुसैनखाँ तातरखाँ आदि को विजय करके पृथ्वीराज दिल्ली गए। चारों ओर जै जैकार गया।

गहि गोरी सुरतान। पान हुस्सैन उपारयो।
पा ततार निसुरत्ति। साहि भारि करि डारयौ।
चामर छत्र रषत्त। बषत लुट्टे सुलतानी।
जै जै जै चहुआन। बजी रन जुग जुग बानी।

गज बन्धि बन्धि सुरतान को। गय दिल्ली दिल्ली-नृपति।
नर नाग देव अस्तुति करें। दिपति दीप दिव लोकपति।

एक समय प्रसन्न होकर पृथ्वीराज ने सुलतान को छोड़ दिया।

दूहा

समैं एक यत्ती नृपति। वर छुड्यौ सुरतान।
तपै राज चहुआन यो। ज्यों ग्रीषम मध्यान।

एक महीना तीन दिन कैद रखकर नौ हजार घोड़े और बहुत से माणिक्य-मोती आदि लेकर सुलतान को गजनी भेज दिया।

मास एक दिन तीन। साह सकट मे रुद्धौ।
करिय अरज उमराउ। दड हय मगिय सुद्धौ।
हय अमोल नव सहस। सत्त सै दिनऐ राखी।
उजल दतिय अट्ट। बीस मुर ढाल सु'जक्खी।
नग मोतिय मानिक नवल। करि सलाह समेल करि।
परि राइ राज मनुहार करि। गज्जन वै पठयौ सुघरि।

इति श्री कविचन्द विरचिते प्रथिरासके रेवातट पातिसाह ग्रहन नाम सप्तबीस समो प्रस्ताव सपूरणम्॥ २७॥

विद्यापति

मैथिल-कोकिल विद्यापति का जन्म बेनीपट्टी थाने के "विसपी" ाम में हुआ था। यह स्थान दरभङ्गे से उत्तर कमतौल स्टेशन के सन्निकट है। डा० उमेश मिश्र ने अपनी पुस्तक में कवि का निम्नलिखित वंशवृक्ष दिया है :—

ीवन चरित्र

विष्णु ठाकुर
|
हरादित्य ठाकुर
|
त्रिपाठी कर्मादित्य ठाकुर (राजा नान्यदेव के मन्त्री)
|
देवादित्य — भवादित्य

देवादित्य
|
वीरेश्वर, धीरेश्वर, गणेश्वर, जटेश्वर, हरदत्त, लक्ष्मीश्वर, शुभदत्त

वीरेश्वर
|
ण्डेश्वर, गोविन्ददत्त

गणेश्वर
|
रामदत्त

धीरेश्वर
|
कीर्तिदत्त, जयदत्त

जयदत्त
|
गौरीपति, गणपति (राजा गणेश्वर के सभा-पंडित)

गणपति
|
कविशेखर
विद्यापति ठाकुर
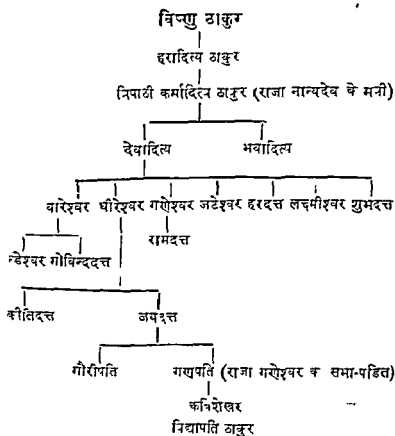
विद्यापति के नाम का एक मठ मनीगाछी (दरभगा) से चार मील पूर्व की ओर स्थित है। इस वश के सभी लोग प्रकाण्ड पडित थे तथा उनका राज दरबार में सम्मान भी अत्यधिक था। इनके पूर्वज, कर्मादित्य त्रिपाठी, राजा नान्यदेव के मत्री थे। इनका उल्लेख मिथिला के तिलकेश्वर नामक शिवमठ की कीर्ति-शिला पर मिलता है। उसमे लक्ष्मणसेन सम्वत् २१२ (वि० स० १३८८) दिया हुआ है।

विद्यापति के पिता श्री गणपति ठक्कुर भी कीर्तिसिंह के पिता गणेश्वर के सभा पडित तथा मत्री थे। इन्होंने 'गङ्गातरंगिणि' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस प्रकार इस वश पर सदैव लक्ष्मी तथा सरस्वती की समान रूप से कृपा रही।

'कीर्तिसिंह' की प्रशसा में ही विद्यापति ने 'कीर्तिलता' की रचना की। ये बडे प्रतापी राजा थे। 'वीरसिंह' तथा राजसिंह' नामक इनके दो भाई थे। स० १४०८ में मलिक असलान नामक एक तुर्क ने कीर्तिसिंह के पिता, गणेश्वर को मार डाला किन्तु अन्त में जौनपुर के बादशाह इब्राहीम शाह की सहायता से इन्होंने उसे मार भगाया और मिथिला का राज्य पुन अपने अधीन कर लिया। कीर्तिलता मे इसी युद्ध का वर्णन है।

कीर्तिसिंह तथा उनके भाइयों की कोई सन्तान न थी, इसलिये राज्य उनके पितामह भ्रातृपुत्र देवसिंह के हाथ गया। इन्होंने दरभगा के समीप देवकुली नामक स्थान को राजधानी बनाया। स० १४५९ वि० में इनकी मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह को अधिकार मिला। इन्होंने गजरथपुर (शिवसिंहपुर) में अपनी राजधानी स्थापित की। इनका उपनाम रूपनारायण था। इनका जन्म स० १४१९ वि० में हुआ था। कहा जाता है कि इनके अधिकार में राज्य

आते ही मुसलमानों ने आक्रमण करना प्रारम्भ किया। किन्तु इन्होंने अपनी वीरता से सब को पराजित किया।

शिवसिंह ने गौड़ देश तथा गजन के राजाओं को पराजित किया और विद्यापति को 'विसपी' ग्राम दिया। सं० १४७१ वि० में मुसलमानों ने पुनः आक्रमण किया। इस युद्ध में शिवसिंह हार गये। कुछ लोगों का कथन है कि वे इसी युद्ध में मारे गये तथा कुछ लोग उनका नेपाल के जंगल में भाग जाना बतलाते हैं। कविवर विद्यापति राज-परिवार को लेकर शिवसिंह के मित्र द्रोणवार-वंशीय 'पुरादित्य' के यहा जनकपुर के समीप वनौली राज्य में रहने लगे। इन्हीं की आज्ञा से विद्यापति ने 'लिखनावली' नामक ग्रन्थ की रचना की।

शिवसिंह के पश्चात् उनके छोटे भाई पद्मसिंह ने राज्य किया। ये बड़े दानी तथा पराक्रमी थे। इनकी मृत्यु के उपरान्त इनकी रानी विश्वास देवी ने बड़ी चतुराई से राज्य किया। विद्यापति ने "शैव सर्वस्वसार", "शैव-सर्वस्वसार-प्रमाण भूत-पुराण-संग्रह" तथा 'गगा-वाक्यावली की रचना इन्हीं की आज्ञा से की थी। इनके पश्चात् उसी वंश में उत्पन्न हरिसिंह राजा हुए। इन्होंने अत्यल्प समय तक राज्य किया। इनके अनन्तर नरसिंह देव उपनाम दर्पनारायण गद्दी पर बैठे। इनकी आज्ञा से विद्यापति ने "विभागसार" की रचना की। इनके पुत्र धीरसिंह राजा हुए। इनका समय १४९७ वि० है। इसी समय विद्यापति ने ' प्राकृत 'सेतुबन्ध-काव्य' पर 'सेतुदर्पणी' नामक टीका लिखी जिसमें धीरसिंह का उल्लेख है। इनके अनन्तर धीरसिंह के भाई भैरवसिंह (हरनारायण) गद्दी पर बैठे। इनके समय में विद्यापति ने अनेक संस्कृत ग्रंथों की रचना की।

इस प्रकार विद्यापति का जीवन अनेक राजाओं से संश्लिष्ट होने के कारण उनका समय सं० १४१७ वि० से १५०७ वि० तक पहुँचता है। इसी कारण डा० उमेश मिश्र इनका जन्मकाल लक्ष्मण सेन सम्वत् २४१ वि० सं० १४१७ मानते हैं।

विद्यापति ने तीन भाषाओं में रचना की है। (१) संस्कृत (२) अपभ्रंश तथा (३) मैथिली। इनकी निम्नलिखित पुस्तकें मिलती हैं —

रचना

संस्कृत—(१) भूपरिक्रमा (२) पुरुष-परीक्षा (३) लिखनावली (४) शैव सर्वस्वसार (५) शैव-सर्वस्वसार-प्रमाण-भूत प्रमाण-संग्रह (६) गंगा वाक्यावली (७) विभागसार (८) दान वाक्यावली (९) दुर्गाभक्ति-तरंगिणी (१०) गयापतल (११) वर्षक्रिया।

अपभ्रंश (१) कीर्तिलता (२) कीर्तिपताका

मैथिली:—पदावली।

विद्यापति मधुर्य-भाव की व्यंजना करने वाले सफल कवियों में हैं। राधाकृष्ण की प्रेम भावना को साहित्यिक दृष्टि से देखने वालों में गीतगोविंद के रचयिता जयदेव के अनन्तर इन्हीं का स्थान है। इन्होंने राधाकृष्ण को कहीं कहीं परब्रह्म स्वरूप मानते हुए भी नायक-नायिका रूप में ही चित्रित किया है। पश्चात् राधाकृष्ण के इसी रूप को लेकर रीति-काल के कवियों ने खेलवाड़ सा किया है। कतिपय लोग इन्हें वैष्णव भक्त मानते हैं किन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि विद्यापति वैष्णव न होकर शैव थे। मिथिला के घरों का जीता जागता चित्र खींचने में विद्यापति की सफलता अतुलनीय है। एक नवोढा कहती है .—

विशेषता

ए सखि, ए सखि लए जनु जाहे, हम अतिवालो से आरत नाहे।
पास जाइते जीऊ मोर काँपे काँच कमले भ्रमर कर झापै॥

उस समय की सामाजिक प्रथाओं की मीठी चुटकी लेना विद्यापति भली भाँति जानते थे। अनमेल विवाह पर उनका व्यंग्य देखिये —

पिया मोर बालक हम तरुणी, कोन तप चुकलहुँ भेलहुँ जननी।
पिया लेलि गोद चललि बजार, हटियाक लोक पुछे के लागु तोहार।

महादेव की 'नचारी' में दीन दशा का चित्रण कवि ने कितना सुन्दर किया है :—

टुटले फुटले मड़ैया अधिक सोहाओन हे।
ताहि तर बैसलि गौरी मनहि मन झाँखति हे।
माँगि चाँगि लएला महादेव तमा दुइ पान हे।
बघछाल देलन्हि सुखाय बसहा कुजि खाएल हे।

इस ग्रन्थ में कीर्तिसिंह तथा असलान खां के युद्ध का वर्णन है। असलान खा ने मिथिला पर आक्रमण किया तब कीर्तिसिंह जौनपुर गये और वहां के बादशाह इब्राहीम शाह की सहायता लेकर असलान खां को पराजित किया। इस ग्रन्थ में चार पल्लव हैं। प्रत्येक पल्लव में कुछ पद्य के उपरांत थोड़ा सा गद्य भी है। यह गद्य अपभ्रंश भाषा में होते हुए भी संस्कृत की समास बहुला शैली में है।

कीर्तिलता

सारांश

प्रारम्भ में महादेव की प्रार्थना है तदनन्तर दुर्जनों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा करते हुए कवि ने अपनी भाषा के सम्बन्ध में लिखा है। राजशेखर की भाँति विद्यापति ने भी अपभ्रंश-भाषा में रचना करने का कारण दिया है :—

सारांश

सक्कय वाणी बहुअ [न] भावइ पाउँअ रस को मम्मअ पावइ।
देसिल बअना सब जन मिट्ठा, तँ तैसन जम्पओ अवहट्ठा॥

अर्थात् संस्कृत भाषा बहुत लोगों को भली नहीं लगती, प्राकृत भाषा रस का मर्म नहीं पाती, देशी भाषा सब लोगों को मीठी लगती है, इसीसे अपभ्रंश में रचना करता हूँ।

इसके अनन्तर भृङ्गी तथा भृङ्ग के संवाद रूप में संपूर्ण कथा कही गई है। प्रथम भृंग वीर पुरुष के गुणों का वर्णन कर कीर्तिसिंह का उल्लेख करता है। भृङ्गी के पूछने पर अपने पिता के वैरी का निकालने वाला कहकर उसका वर्णन करता है। यहीं प्रथम पल्लव समाप्त होता है। प्रथमपल्लव के प्रारम्भ में पांच तथा अन्त में एक संस्कृत श्लोक हैं।

द्वितीय पल्लव में 'असलान, कीर्तिसिंह' के पिता गणेश्वर को पहले विश्वास दिलाकर अन्त में मार डालता है। कीतिसिंह उसे मारने की प्रतिज्ञा कर जौनपुर के बादशाह के समीप सहायता मांगने के लिये जाते हैं। इसमें मार्ग तथा बादशाह के नगर का सुन्दर वर्णन है। कीर्तिसिंह तथा वीरसिंह दरबार में प्रवेश कर शाह को सलाम कर इनाम पाते हैं। फिर सायंकाल वे नगर में एक ब्राह्मण के घर ठहर जाते हैं। यहीं पर द्वितीय पल्लव समाप्त होता है।

तृतीय पल्लव में कीर्तिसिंह असलान खां के विरुद्ध शाह से सहायता की प्रार्थना करता है। शाह प्रसन्न होकर तिरहुत की ओर प्रयाण करता है। इसमें शाह की सेना का सुन्दर वर्णन है। कीर्तिसिंह अपनी अवस्था पर दुःख प्रगट करता है। यहीं तृतीय पल्लव समाप्त होता है।

चतुर्थ पल्लव सबसे विस्तृत है। इसमें जौनपुर के शाह की सेना का तिरहुत में प्रवेश करने का वर्णन है। शाह का असलान पर क्रोध, शाह की सेना से असलान की सेना का युद्ध, कीर्तिसिंह से असलान का युद्ध, असलान का पराजित होना तथा कीर्तिसिंह द्वारा असलान को जीवदान देने का कवि ने बहुत सुन्दर चित्र खींचा है। इसी चतुर्थ पल्लव के कुछ पद इस संग्रह में लिये गए हैं। आरम्भ में जौनपुर के बादशाह की सेना का वर्णन है। विद्यार्थियों को

सुगमता के लिये स्थान स्थान पर शीर्षक दे दिये गये हैं। अन्त में कठिन पदों का अर्थ भी दे दिया गया है।

आलोचना

विद्यापति की प्रसिद्धि शृङ्गारिक रचनाओं के लिये ही है। कीर्तिलता में स्थान-स्थान पर वीर रस की भावना विद्यमान है। ओज की मात्रा इनकी अन्य रचनाओं में न होने पर भी वह कीर्तिलता में पर्याप्त है। घोड़ों का निम्नलिखित वर्णन कितना ओजपूर्ण है :—

अनेअ बाजि तेजि ताजि साजि साजि आनिआ।
परक्कमेहि जासु नाम दीप दीपे जानिआ॥
बिसाल कन्ध चारुबन्ध सत्ति रूअ सोहणा।
तलप्प हाथि लाँघि जाथि सत्तु सेणखोहणा॥

अर्थात् बहुत से 'ताजा' जाति के तेज घोड़े सजाकर लाए गये। उनके पराक्रम के कारण उनके नाम द्वीप-द्वीपान्तरों में ज्ञात थे। चौड़े कन्धों वाले, सुन्दर बन्धन (बागडोर) वाले बल और रूप से शोभित थे तथा तड़पकर हाथी को भी लाँघ जाते थे और शत्रु की सेना में क्षोभ उत्पन्न कर देते थे।

कीर्तिसिंह की यह गर्वोक्ति कितनी मधुर प्रतीत होती है :—

मच्चउँ देम्मऊँ पिट्ठि चढि हओ लावओ रणभाण।
पाचरें पाचरें ठेल्लि कहुँ पकलि देओ असलान॥
अज्जु वैरि उद्धरओ सत्तु जइ मज्झर आवइ।
जइ तसु पक्ख सपक्ख इन्द अप्पन बल लावइ॥
जइ ता वक्खइ शम्भु अवर हरि बम्भ सहित भइ।
दणिवइ लागु गोहारि चाप जमराए कोप कइ॥
असलान जे मारओ तओ हुअओ तासु रहिर लइ देओ पा।
अवमान समभ निअ जीव धके लै नहि पिट्ठ देपाए जा॥

अर्थात् सब कोई देखो (घोड़े की) पीठपर चढ़कर मैं समाम वार्त्ता (विजय) लाता हूँ, किनारे किनारे ठेलकर असलान को पकड़े देता हूँ। यदि वैरी आज युद्ध-भूमि में आवे तो वैर का उद्धार करूं। यदि उसका साथी होकर, इन्द्र अपनी सेना पक्ष मे लावे, यदि शम्भु हरि और ब्रह्मा उसकी रक्षा करें यदि वह शेषनाग को पुकारने लगे और क्रोध करके यमराज के बाप को पुकारे, तब भी असलान को मारूं तब तो मैं, मैं हूँ। उसका रक्त पैरों पर लाकर रख दूँ यदि अपमान के समय वह जीवन बचाकर पीठ न दिखा जाए।

रणक्षेत्र का वर्णन कितना सुन्दर है :—

पले रुण्ड मुण्डो खरो बाहुदण्डो,
सिआरू कलंकोइ कङ्काल खण्डो।
धरा धूरि लोट्टन्त टुट्टन्त काया,
लाग्ता चलन्ता पक्खलेन्ति पाआ।

अर्थात् रुंड मुंड पड़े हैं। (कोई रुंड) बाहुदंड ऊपर उठाए खड़ा है। शृगाल कंकाल के टुकड़े खखोल रहे हैं। कटते हुए शरीर पृथ्वी पर धूलि में लोटते हैं। लड़ते हुए चलते हुए पैर शान्त हो जाते हैं।

भाषा

कीर्तिलता के अध्ययन से प्रतीत होता है कि विद्यापति के समय आधुनिक भाषाओं का कोई नाम स्थिर नहीं था। इसमें किसी भी भाषा का निश्चित् रूप नहीं मिलता। गद्यभाग संस्कृत समास-शैली के आश्रित होने के अतिरिक्त कहीं कहीं संस्कृत-पदावली से भी प्रभावित है। पद्य-भाग पर प्राकृत का अधिक प्रभाव है।

'श्र' का उच्चारण कहा कहीं 'न' किया गया है :—

"श्रश्र वानि नेत्र तानि सानि म जि श्रानिश्रा"।

डा० बाबूराम जी सकसेना ने कीर्तिलता की भाषा का विशेष रूप से अध्यन किया है। आपने इस सम्बन्ध म अँग्रेजी में एक लेख ग्रियर्सन-अभिनन्दन ग्रन्थ मे लिखा है। उसके कुछ अश का अनुवाद नीचे दिया जाता है :—

विद्यापति ने जहा अपनी भाषा को 'अवहट्ट' कहा है वहीं उसे 'देसिल वअना' की सज्ञा भी दी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इनकी भाषा उस समय के सस्कृत लोगों की भाषा है। इसमें तत्सम तद्भव तथा देशी तीनों प्रकार के शब्द मिलते हैं। तत्सम शब्दों का प्रयोग अत्यधिक हुआ है। आरम्भ के मङ्गलाचरण के श्लोक तथा प्रत्येक पल्लव के श्लोक सस्कृत म ही हैं। गद्य लिखने में भी कवि ने सस्कृत की अलकारिक-शैली का प्रयोग किया है।

इससे एक बात और स्पष्ट हो जाती है। और वह यह है कि जिस प्रकार आज कल की साहित्यिक हिन्दी और उर्दू में सस्कृत तथा फारसी शब्दों का प्रयोग होता है, उसी प्रकार उस समय के पढ़े लिखे लोगों की भाषा में भी सस्कृत के तत्सम शब्दों का व्यवहार होता था। अत्यन्त प्राचीन काल से मिथिला के पण्डित अपनी कट्टरता तथा सस्कृत के पाण्डित्य के लिए प्रसिद्ध हैं और वे बोल चाल की भाषा में भी सदैव सस्कृत शब्दों का व्यवहार करते हैं। आज भी इस दृष्टि से पण्डितों को मैथिली तथा गवारों की मैथिली बोली में अत्यधिक अन्तर है।

तद्भव शब्दों के अनेक रूप विद्यापति की भाषा में मिलते हैं। ये रूप विकास की विभिन्न अवस्थाओं को प्रकट करते हैं। उदाहरण के लिए सस्कृत का "ब्राह्मण" शब्द लीजिए। इस शब्द के 'बम्हण'

'बभण'* 'बाँभन'† तथा 'बम्भन'‡ रूप कीर्तिलता में मिलते हैं। इससे यह भी प्रकट होता है कि एक ही शब्द संस्कृत से विभिन्न अवस्थाओं में उधार लिया गया होगा।

कीर्तिलता में देशी शब्दों की संख्या अत्यल्प है।

'छइल्ल' शब्द का प्रयोग पुरानी प्राकृत में मिलता है (देखो कर्पूर मञ्जरी)। कीर्तिलता में भी 'धागड़'' तथा 'रण्ड' शब्द का प्रयोग किया गया है।

कीर्तिलता में फारसी तथा अरबी शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है। जैसे सुरतान (पृ० १०) तुरुतान (पृ० ४४) पातिसाह (पृ० १४), तुरुक्क (पृ० ३८), कमान (पृ० ९०) मइजत (पृ० ४०), मीर (पृ० ४०) खान (पृ० ४० आदि)। इन शब्दों के प्रत्यय आदि संस्कृत के ही हैं। विदेशी उधार लिए हुए शब्दों की ध्वनि में भी परिवर्तन हुआ है किन्तु यह परिवर्तन भाषा की प्रकृति के अनुकूल ही है।

---

* डा० बाबूराम सक्सेना द्वारा सम्पादित कीर्तिलता पृ० ३२

† वहीं पृ० ४४

‡ वहीं पृ० ९०

कीर्तिलता

जौनपुर के बादशाह इब्राहीमशाह की सेना का वर्णन।

छन्द

अणुवरत हाथि, मयमत्त जाथि।
भागन्ते गाछ, चापन्ते काछ।
तोरन्ते बोल, मारन्ते घोल।
सङ्गाम घेघ, भूमिट्ट मेघ।
अन्धार कूट, दिग्गविजय छूट।
ससरीर गव्व देखन्ते भव्व।
चालन्ते काए, पव्वस्र समान।

[दूहा]

पाइग्गह पत्र भरें भउँ, पल्लानिनउँ तुरङ्ग।
थप्प थप्प थन बार कइ, सुनि रोमाञ्चिस्र अंग।

छन्द

अनेस्र बाजि तेजि ताजि साजि साजि आनिस्रा।
परक्कमेहि जासु नाम दीप दीपे जानिस्रा।
विसाल कंध चारु बंध सत्ति रूस्र सोहणा।
तलप्प हाथि लाँघि जाथि सत्तु सेण खोहणा।
समग्ग खूर ऊरपूर चारि पाञे चक्करें।

अनन्त जुज्झ मम्म बुज्झि सामि काज सगरे।
सुजानि शुद्ध कोहे क्रुद्ध तोरि धाव कन्धरा।
विशुद्ध दापे मारदापे चूरि जा वसुन्धरा।
विपक्ख नैन मेन हेरि हिंमि हिंसि दाम से।
निसान सद्द भेरि सग खोणि खुन्द ताम से।
तजान भीत वात जीत चामरेहि मण्डिआ।
विचित्त चित्त नाच नित्त राग वाग पण्डिआ।

एवञ्च—विछि वाछि तेजि ताजि पक्खरेहि साजि साजि।
लक्ख सख आनु घोर जासु मूलें मेरु थोर।

दूहा

ता पाछे आवत्त हुअ, हिन्दू दल गमनेन।
राआ गणए न पारिअइ राउत लेक्खइ केण॥

छन्द

दिग्गन्तर राआ सेवो आआ तें कटकाणी जाही।
निअ निज घन गव्वे सञ्चरे भव्वे पुहवी नाहि समाही।
राउत्ता पुत्ता चलइ बहुत्ता पअ भरे मेइणि कम्पा।
पत्तापे चिन्हे भिन्ने भिन्ने धूली रह रह झम्पा।
जो अण्डा धावहि तुरय णचावहि बोलहि गाढिम बोला।
लोहित पित सामर लहिअउँ चामर सवणहि कुण्डल डोला।
आवत्त विवत्ते पअ परिवत्ते जुग परिवत्तन भाणा।
घन तवल निसाने सुनिअ न काने साणे बुझावइ आणा।
वेसरि अरु गद्दह लक्ख वरद्दह इति का भहिसा कोटी।
असवार चलन्ते पाअ घलन्ते पुहवी भए जा छोटी।

पीछे जे पडिआ तँ लडखडिआ वइठहिं ठामहि ठामा ।
गोइए नहि पावहिं वध्थुलइवहिं भूलल भुलहि गुलामा ।
तुलकन्हि के फौदें हउद हउद चप्परि चौदिस भूमी ।
असोताक धरन्ते कलह करन्ते हीदू उतरथि भूमि ।
अस प्रथ एकै चोईं गणिअ न होइ सरइ चासर माया ।
बारिगाह मण्डल दिग आखण्डल पट्टन परिठम माया ।
जघणे चलिअ सुरुतान लेख परिसेप जान को ।
तरणि तेअ सम्बरिअ अट्ठ दिगपाल कट्ठ हो ।
धरणि धूलि अन्धार छोड्डु पेअसि पिअ हेरव ।
इन्द चन्द आभास कमन परि एट्टु समय पेल्लव ।
कन्तार दुग्ग दल दमसि कहुँ खोणि खुन्द पथ्र भार भर ।
हरि शंकर तनु एक रहु वम्भ हीअ डगमगिअ डरे ।
महिस उंठु मनुसाए धाए असवारहि मारिअ ।
हरिण हारि हल वेग धरए करे पाइक पारिअ ।
तरसि रहिअ सस मूस उड्डि आकास पर्ष्खि जा ।
एहु पाए दरमणिअ ओहु सैचान खेदि खा ।

इब्राहीम शाह की सेना का प्रभाव

दूहा

इबराहिम साह पआनओ ज ज सेना सञ्चरइ ।
खणि खेदि खुखुन्दि धसि मारइ जीवहु जन्तु न उब्बरइ ।
मव्वउँ देप्खउँ पिट्ठि चडि हओ लावओ रणभाण ।
पाथरें पाथरें ठेल्लि कहुँ पक्लि देओ असलान ।

छपप्य

अज्जु वैरि उद्दरओ सत्तु जइ सङ्कर आवइ ।
जइ तसु पप्ख सपप्ख इन्द अप्पन वल लावइ ।

जइ ता वष्खइ शम्भु अवर हरि वम्भ सहित भइ।
फणिवइ लागु गोहारि चाप जमराए कोप कइ।

असलान जे मारओ तजो हुअ जो तासु रूहिर लइ देओ पा।
अवमान समन्त निज जीव धके जै नहि पिट्ठ देघाए जा।

दूहा

तब फरमाणहि वाचिअइ सएलह सुम को सार।
कित्तिसिंह के पूरनहि सेना करिअउँ पार।

कीर्तिसिंह की सेना का वर्णन

राए पुरहि का पुब्व पेत पहरा दुइ वेरा।
वेवि सेन संघट्ट मेल वाजल भट भेडा।
पाओ पहारे पुहवि कप्प गिरि सेहर टुट्टइ।
पलए विट्ठि सओ पलइ काँडे पटवालह फुट्टइ।
वीर हुकारे होहि आगु रोवचिअ अङ्गे।
चोदिस चकमक चमक होइ खग्गग्ग तरङ्गे।
तोवि तुरुअ असवार धाए पइसथि परयुत्थे।
मत्त मतङ्गज पाछु होथ परिआइत सथ्थे।
सोंगिणि गण टङ्कार भाव नह मण्डल पूरइ।
पापर उठ्ठइ फौदें फौदें पर चकइ चूरइ।
तामसे वड्डइ वीर दप्प विक्कम गुण चारी।
सरमहुं वेरा सरम गेल सरमेरा सारी।
चौपट मेइनि भेट हो वमइ कराड कोदण्डे।
नोट उपटि पटवा'''ड्डे'''येघ निज भुज दंडे।

युद्ध वर्णन

छन्द

टुट्टारे वीरा गज्जन्ता, पाइक्का चक्का भज्जन्ता।
धावन्ते धारा टुट्टन्ता सन्नाहा वाणे फुट्टन्ता।
राउत्ता रोस लग्गीत्र्या खग्गेही खग्गा भग्गीत्र्या।
आरुट्ठा सूरा आवन्ता ऊँमग्गे मग्गे धावन्ता।
एक्क्के एक्के भेटन्ता परारी लच्छी मेट्टन्ता।
अप्पा नामाना सारन्ता वेलक्के सत्तू मारन्ता।
ओआरे पारे वुभन्ता, कोहाणे वाणे जूभन्ता।
दुहु दिसँ पाखर ऊँठ माँझ सगाम भेट हो।
खग्गे खग्गे सघलिअ, फुलुग उफ्फलइ अग्नि को।
असवार असिधार तुरअ राउँत सओ टुट्टइ।
वेलक वज निघात काअ कवचहु सओ फुट्टइ।

दूहा

अरि कुञ्जर पंजर सल्लि रह रुहिर धारे गए गगण भर।
रा कित्तिसिंह को कज रसँ वीरसिंह सगाम कर।

रणक्षेत्र वर्णन

पले रुण्ड मुण्डो खरो बाहु दण्डो,
सिआरु वलङ्घोइ कङ्काल खण्डो।
धरा धूरि लोट्टन्त टुट्टन्त काया,
खरन्ता चलन्ता पमालेग्गि पाआ।

असरुझाल अन्तावली जाल वद्धा,
वसा वेग वूडन्त उड्डुन्त गिद्धा।
गश्रएडी करन्तो पिवन्तो भरन्ता,
महामासु खडो परत्ता भरन्ता।
सिश्रासार फक्कार रोल करन्तो,
वुभुप्खा बहू डाकिनी ऽक्करन्तो।

———•———

केशवदास

केशव का जन्म ओड़छा (बुन्देलखण्ड) में हुआ था।
नका जन्म-काल निश्चित नहीं है। मिश्रबन्धुओं के अनुसार इनका
जन्म-काल १६०८ वि० है। आप लोग अपने
जीवन-चरित्र अनुमान की पुष्टि इस प्रकार करते हैं। केशव
ने भाषा में रसिकप्रिया नामक अपना प्रथम
थ १६४८ वि० में बनाया। आप संस्कृत के अच्छे पण्डित थे। संस्कृत
पंडित होते होते उनकी अवस्था ३५ वर्ष की अवश्य हो गई होगी।
तदनन्तर तीन चार वर्ष भाषा का अध्ययन कर १६४८ वि० में
रसिकप्रिया की रचना इन्होंने की होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि
अवस्था का यह अनुमान कुछ अधिक किया गया है। पंडित परिवार
में उत्पन्न केशव को पंडित होने के लिये लगभग २५ वर्ष की आयु
पर्याप्त हो सकती है।

रसिकप्रिया के अनन्तर कवि १६५८ वि० तक रामचन्द्रिका
की रचना में संलग्न था। वृद्धावस्था (सं० १६६७ वि०) में इन्होंने
विज्ञान-गीता की रचना की। इनका मृत्युकाल सं० १६७४ वि०
अनुमान किया जाता है। इन्होंने अपने विषय में निम्नलिखित छन्द
कहा है :—

नदी बेतवै तीर जहँ तीरथ तुंगारन्य।
नगर ओड़छो बहु बसै धरनी तल में धन्य।
ओड़छे तीर तरंगिनि बेतवै ताहि तरै नर-केशव को है।
अर्जुन बाहु प्रबाहु प्रबोधित रेवा ज्यों राजन की रजमो है।

जोनि जगै जमुना मि लगै जग लाल बिलोचन पाप बिपै है।
सूर सुता सुभ सगम तुंग तरंग तरंगित गंग सी मोहै।

इन्होंने अपने वंश का वर्णन इस प्रकार किया है:—

सनाढ्य वंश में कुम्भवार सदृश कुलोद्भूत देवानन्द हुए। उनके जयदेव तथा जयदेव के दिनकर नामक पुत्र हुए। दिनकर के गया गदाधर, गदाधर के जयानन्द तथा जयानन्द के त्रिविक्रम मिश्र हुए। गोपालचन्द्र नरेश ने इनके पैर पूजे थे। त्रिविक्रम के पुत्र भावशर्म तथा भावशर्म के सुरोत्तम मिश्र हुए। इनसे जयपुर नरेश मानसिंह से कुछ अनबन थी। इनके पुत्र हरिहरनाथ, हरिनाथ के कृष्णदत्त तथा कृष्णदत्त के काशीनाथ हुए। इन्हीं काशीनाथ ने ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थ शीघ्र-बोध की रचना की। इनके तीन पुत्र हुए बलभद्रदास, महाकवि केशवदास तथा कल्यानदास। बलभद्रदास एक अच्छे कवि थे। केशवदास ने सनाढ्य ब्राह्मणों की उत्पत्ति तथा महत्व कविप्रिया के द्वितीय प्रभाव में इस प्रकार लिखा है।

ब्रह्माजू के चित तें प्रकट भये सनकादि।
उपजे तिनके चित्त तें सब स्नौढिया आदि।
परशुराम भृगु-नन्द तब तिनके पांइ पखारि।
दिये बहत्तरि ग्राम तिन उत्तम विप्र विचार।
जग पावन वैकुंठ पति रामचन्द' यहि नाम।
मथुरा मंडल में दये तिन्हे सात से ग्राम।
सोम वंश यदुकुल कलश त्रिभुवन पाल नरेश।
फेरि दये कलिकालपुर तेई तिनहिं सुदेश।

अर्थात् ब्रह्मा के मानसिक पुत्र सनकादिकों के मानसिक पुत्र सनाढ्य ब्राह्मण हुए। परशुराम ने उनके पैर धोकर उन्हें बहुत से गाव दान में

दिये। मथुरा मडल में रामचन्द्र जी ने उन्हें सात सौ ग्राम दिये तथा श्रीकृष्णजी ने कलियुग में वही प्रवेश पुनः दिया।

यह कोई पौराणिक घटना नहीं है, किन्तु इससे हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं:—

(१) केशव ने सनाढय ब्राह्मणों के सम्मान की वृद्धि करने के लिए ही परशुराम द्वारा उनके पैर पुजवाये।

(२) वाल्मीकीय रामायण में श्रीरामचन्द्र जी ने सरयूपारीय ब्राह्मणों को बहुत सी भूमि दान दी थी इसी के अनुकरण पर इन्होंने श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्ण द्वारा सनाढ्यों को बहुत सी भूमि दान करवाई है। इससे केशव की जाति प्रियता लक्षित होती है।

केशवदास ओड़छा में जिस घर पर रहते थे वहाँ इस समय खडहरों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। कुछ वर्ष पहले वहाँ एक इमली का पेड अवश्य था किन्तु इस समय वह भी नहीं है। अब टीकमगढ़ नरेश तथा केशव साहित्य परिषद् के सहयोग से वहाँ केशव का स्मृति-चिन्ह बनाने का आयोजन हो रहा है।

केशव के निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) रसिकप्रिया स० १६४८ वि० (२) कवि-प्रिया स० १६५८ वि० (३) रामचन्द्रिका स० १६५८ वि० (४) नख शिख स० १६६० वि० (५) वीरसिंहदेव चरित स० १६६४ वि० (६) विज्ञान गीता स० १६६७ वि० (७) जहाँगीर-जस-चन्द्रिका स० १६६९ वि० (८) रतन-बावनी (अज्ञात) (९) राम-अलकृत-मजरी (अज्ञात)

इनके आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह तथा वीरसिंह देव थे। इनके सम्बन्ध में एक किवदन्ती प्रसिद्ध है। केशव के आश्रयदाता इन्द्रजीत सिंह के दरबार में पाच "पातुरी" थीं। उनमे से एक रायप्रवीन अत्यन्त

सुन्दरी, काव्यकला-निपुण तथा गुणवती थी। उसकी प्रसिद्धि सुनकर बादशाह अकबर ने उसे अपने दरबार में बुलाया। वह घबड़ाकर इन्द्रजीतसिंह के पास पहुँची और बोली:—

> आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हें निज, सासन सौं सिगरी मति गोई।
> देह तजौं कि तजौं कुलकानि, हिए न लजौं लजि है सब कोई।
> स्वारथ औ परमारथ को पथ, चित्त विचारि कहौ अब सोई।
> जामें रहै प्रभु की प्रभुता अरु, मोर पतिव्रत भंग न होई।

इन्द्रजीत सिंह ने रायप्रवीन को अकबर के दरबार में नहीं भेजा, किन्तु इस पर अकबर ने क्रुद्ध होकर उन पर एक करोड़ रुपया दंड कर दिया। तब केशव ने आगरे में बीरबल के पास जाकर यह छन्द पढ़ा :—

> "पावक पंछी पसू नर नाग नदी नद लोक रचे दस चारी।
> 'केशवदेव' अदेव रचे नरदेव रचे रचना न निवारी।
> कै बर बीर बलो बर को सु भयो कृतकृत्य महाव्रत धारी।
> दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दुवौ करतारी।

इस पर बीरबल ने मुग्ध होकर जेब में पड़ी हुई छः लाख की हुंडी केशव को दी और अकबर के पास जाकर इन्द्रजीतसिंह का दण्ड भी क्षमा करा दिया। बीरबल के वरदान मांगने के कहने पर केशव ने कहा :—

> यों ही कह्यौ जु बीरबल, माँगु जु मागनु होय।
> माग्यौं तुव दरबार में, मोंहि न रोकै कोय॥

दण्ड-क्षमा करने पर भी अकबर ने रायप्रवीन को अपने दरबार में बुलाया। रायप्रवीन ने कहा: -

विनती रायप्रवीन की सुनिये साहि सुजान।
जूठी पातर भखत है बारी बायस स्वान।

ऐसी-मीठी चुटकी शायद ही किसी ने ली हो। अकबर ने राय प्रवीन को लौट जाने की आज्ञा दी।

बीरबल की मृत्यु पर केशव का यह छन्द मिलता है :—

पाप के पुञ्ज पखावज केसव सोक के संख सुने सुषमा में।
झूठ की झालरि झांझ अलीक के आवझ जूथन जानि जमा में।
भेद की भेरी बड़े डर के डफ कौतुक भे' कलि के कुरमा में।
जूझत ही बलबीरि बजे बहु दारिद के दरबार दमा में।

केशवदास हिन्दी-साहित्य में एक महान् कवि हैं। विद्वानों ने इनकी गणना नवरत्नों में की है। ये साहित्य-शास्त्र के आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने भामह, दण्डी, तथा रुय्यक की शैली को आदर्श मान कर हिन्दी में अलंकार शास्त्र की रचना की। पीछे के आचार्यों ने इनकी पद्धति का अनुसरण न कर काव्य-प्रकाश, चन्द्रालोक, कुवलयानन्द आदि ग्रन्थों को ही अपना आदर्श बनाया।

विशेषता

इनकी रचना में कतिपय स्थल अत्यन्त सुन्दर हैं। रामचन्द्रिका में सूर्योदय, भरत की सेना तथा स्वयंवर के वर्णन हृदयग्राही हैं। संवाद-वर्णन का कवि को जहा अवसर मिला, उच्च कोटि के भाव प्रदर्शित किये हैं।

केशव चमत्कार वादी थे। उनका मत था :—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजहीं कविता बनिता मित्त ॥

उनकी कविता में कविहृदय की अपेक्षा बुद्धि वैभव की ही प्रधानता दिखाई देती है। यही कारण है कि उनकी कविता अधिक स्थलों पर नीरस प्रतीत होती है। केशव संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। उसकी सहायता से वे रचना-कौशल का प्रभाव जमाना चाहते थे। उनकी रचना में संस्कृतकाव्यों तथा नाटकों की अनेक उक्तियां मिलती हैं। किन्तु अन्य कवियों की उक्तियों को अपनाने के लिये जिस भाषा-चातुर्य की आवश्यकता होती है उसका उनमें अभाव था। अपनाना तो दूर रहा, उसे स्पष्ट व्यक्त करने में भी वे सफल नहीं हुए हैं। कहीं असमर्थ,पदों की अधिकता से, तो कहीं पदों की न्यूनता से मूल अर्थ तो स्पष्ट हुआ ही नहीं है और भाषा भी क्लिष्ट हो गई है।

मारग की रज तापित है अति केशव सीतहि सीतिल लागति।
ज्यौं पद पंकज ऊपर पायनि दै जु चलै तेहिते सुख दायनि।

यह हनुमन्नाटक के एक प्रसिद्ध श्लोक का अनुवाद है। किन्तु मूल भावना नष्ट हो गई है।

हिन्दी के कवि और काव्य के लेखक ने कहा है "सूर और तुलसी इतने कलाकार नहीं जितने केशव और बिहारी।" किन्तु यह कथन युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता है। तुलसी तथा सूर की रचनाओं में हृदय की गम्भीरता तथा कला की सार्थकता का सामंजस्य हुआ है। केशव को न तो हृदय था, न भाषा पर अधिकार ही; था केवल पांडित्य-प्रदर्शन। अतः कला की अधिकता का भ्रम होना स्वाभाविक है। बिहारी का भाषा पर अच्छा अधिकार था अतएव वे अवश्य सफल हुए हैं। किन्तु संस्कृत कवियों की उक्तियां अपनाने में दोनों ही कवि समान हैं।

केशव ने सब रसों की रचना की है किन्तु इन्हें शृङ्गार, वीर तथा हास्य में ही अच्छी सफलता मिली है।

यह मधुकर शाह बुन्देला के पुत्र रतनसेन की आज्ञा से लिखी गई है। इसके नाम से ही ज्ञात होता है कि इसमें

रतन-बावनी ५२ छन्द हैं। यह विप्र तथा कुमार के प्रश्नोत्तर रूप में कही गई है।

रतन-बावनी के एक छन्द में मधुकर शाह बुन्देला तथा अकबर बादशाह के विरोध का कारण बताया गया है :—

दिल्लीपति दरबार जाय मधुशाह सुहायव।
जिमि तारन के मांह इन्दु शोभित छवि छायव।
देख अकब्बर शाह उच्च जामा तिन केरो।
बोले बचन विचारि कहौ कारन यहि केरो।
तब कहत भयव बुन्देल मणि मम सुदेश कटकि अवन।
करि कोप आय बोले वचन मैं देखौं तेरौं भवन॥१॥

इससे प्रतीत होता है कि उस समय-सहिष्णुता का कितना अभाव था। एक छोटी बात कितना भयङ्कर रूप धारण कर लेती थी।

इसमें ब्राह्मण का महत्व बढा कर लिखा गया है।

"परमेश्वर अरु विप्र एक सम जानि सुलिज्जिय।
द्विज चरणोदक बुन्द चन्द सींचत सुख वढ्ढिय॥

केशव ने बादशाह से युद्ध करते समय रतनसिंह को भागने की सलाह दी है क्योंकि वह प्रबल था :—

सुनि रतनसेन मधुशाह सुव पंच सथ्थ नहिं लज्जिये।
कहि केशव पचन संग रहि पंच भजै तहँ भज्जिये॥

यद्यपि यह वीर-धर्म के अनुकूल नहीं है किन्तु राजनीति की दृष्टि से ठीक ही प्रतीत होता है। इसमें कहीं कहीं गीता-पद्धति का उपदेश भी है।

इस बावनी में बहुत थोड़े छन्द वीर-रस के कहे जा सकते हैं और जो हैं वे भी उच्च कोटि के प्रतीत नहीं होते।

"रूपे शूर सामंत रण लागहिं प्रचारि प्रचारि।"
विच्छल पग नहिं चलहिं कोउ जूझत चलहिं अगारि।
मरण धारि मन लियौ वीर मधुकर सुत आयौ।
विचल नृपति सब म्लेच्छ देखि दल धर्म लजायौ।
कटु कुमध्य सब करिय कुँवर रप्पहु जुर अंगहि।
तिलतिल तन कट्टिहव मुरकि फेरौ नहिं अँगहिं।
कहि केशव तन बिन शीश है अतुल पराक्रम कमध किय।
मोह रतनसेन मधुशाह सुव तब कृपान दुहु हत्थ लिय।

वीरसिंहदेव चरित

इसमें इन्द्रजीत सिंह के बड़े भाई वीरसिंह देव का चरित्र वर्णित है। यह ग्रन्थ दोहा चौपाइयों में लिखा गया है। के छन्द वीर-रस के अनुकूल न होने के कारण लाल कवि की तरह इन्हें भी इस रचना में सफलता नहीं मिली।

(१) "जहँ तहँ विक्रम भट प्रगटभए। गज घोटक संघटित सुभये।
तुपक तीर बरछी तिहि वार। चहूँ ओर तें चलैं अपार।
जंग जागरा जंगल जुरे। काहू के न कहूँ मुँह मुरे॥

(२) ह्वै गयो विहान बल मुगल पठाननि कौ,
भभेर भदौरियाऊ सम्भ्रम हिये छयौ॥

सुखे मुख मेखति के खस्योई खिस्यानौ खल,
गढ़ी गह्यौ गाढ़ पाँड एकौ न इतै दयौ।
कँरसिंह जीना जीती पति राजसिंह की,
तुमार केसौ मारयो मारु 'केसोदास' ह्वै गयौ।
हाथी मय हय मय हमम हथ्यार मय,
लोह मय लोथिमय भूतल सबै भयौ।

इनमें पहले की अपेक्षा दूसरे में ओज की अधिकता तथा भाव की गम्भीरता है।

रसोत्कर्ष के लिये इन्होंने कहीं कहीं डिंगल का अनुकरण किया है :—

जहँ अमान पट्टान ठान हिय वान सु वट्टिव।
तहँ केशव काशी नरेश दल रोम धरिट्टिव।
जहँ तहँ पर जुरि जोर ओर चहुँ दुंदुभि वज्जिय।
तहाँ विकट भट सुभट घुटक घोटक तन तज्जिय।

यहाँ टवर्ग के प्रयोग में डिंगल काव्य का अनुकरण किया गया है। ऐसे प्रयोगों का विधान होने पर भी बहुधा इससे भाव की हत्या हो जाती है। इसकी शैली वर्णनात्मक है। वीरसिंह देव चरित में भावों की गंभीरता न होने पर भी वर्णन साधारणतः अच्छे हैं।

रतन-बावनी का सारांश

गणेश स्तुति के अनन्तर रतनसिंह तथा अकबर बादशाह के बीच के युद्ध का इसमें वर्णन है। युद्ध का कारण इस प्रकार दिया है। अकबर से रूस रूम आदि सब देश डरते थे। बुन्देल नरेश मधुकरशाह ने हिन्दू धर्म रक्षक जानकर उनका आश्रय लिया। एक दिन बादशाह ने मधुकरशाह से जामा ऊंचा

रखने का कारण पूछा। मधुकर शाह ने उत्तर दिया—हमारा देश काटे वाला है इसलिये हम ऊंचा जामा पहनते हैं। बादशाह ने इसे व्यंग्य समझकर कहा कि उस काटेदार देश को देखना है। मधुकरशाह ने इसे युद्ध का आह्वान समझकर अपने पुत्र को युद्ध का स्वागत करने के लिये कहा। शाही सेना के बुन्देलखण्ड में पहुँचते ही रतनसेन युद्ध के लिये प्रस्तुत हुआ। आगे का वृत्तान्त विप्र तथा कुमार के संवाद रूप में कहा गया है। विप्र युद्ध न करने के लिये कहता था और कुमार लड़कर मर मिटना कर्तव्य बतलाता था। अन्त में युद्ध होकर रतन सिंह बहादुरी से लड़कर मारा गया तथा स्वर्ग चला गया। इस युद्ध में बुन्देलों की चार हजार सेना मारी गई।

वीरसिंह देव चरित का सारांश

इन्द्रजीत सिंह के बड़े भाई, वीरसिंह देव, 'केशव' के दूसरे प्रधान आश्रय-दाता थे। यह प्रसिद्ध है कि प्रसिद्ध धर्मशास्त्र "वीर मित्रोदय" की रचना इन्होंने "मिश्र" नामक ब्राह्मण की सहायता से की। यह ग्रन्थ मिताक्षरा के समान ही प्रामाणिक माना जाता है। इनकी न्याय-प्रियता इतनी ज्वलन्त थी कि एक अपराध पर इन्होंने अपने पुत्र को प्राणदण्ड दे डाला। ये प्रायः तुलादान कर ब्राह्मणों को धन बाँटा करते थे। इन्हीं के हाथ से अकबर का मन्त्री तथा प्रसिद्ध विद्वान् अबुलफजल मारा गया। इसी कारण अकबर इनपर रुष्ट था। इनके बड़े भाई रामसिंह अकबर के दरबार में रहते थे। उन्होंने अपनी अनुपस्थिति में बुंदेलखण्ड के विभिन्न प्रान्तों का अधिकार इन्द्रजीत तथा वीरसिंह को दे रक्खा था। वीरसिंह देव ने उद्दंड तथा महत्वाकांक्षी होने के कारण आस पास के शाही प्रान्तों पर अधिकार कर लिया। इनका मुख्य स्थान बराव था किन्तु थोड़े ही समय में पवाया, तोआर, नरवर आदि नगर इनके अधिकार में आ गये। इनसे ग्वालियर के राजा, दिल्ली के सरदार तथा

उमराव डरा करते थे। अकबर ने राजा आसकरन की संरक्षता में वीरसिंह को दबाने के लिये सेना भेजी। किन्तु इन्द्रजीत सिंह तथा रावप्रताप की सहायता से मुगल-सेना को नीचा देखना पड़ा। अकबर ने पुनः अब्दुलरहीम खानखाना तथा दौलत खां के साथ एक सेना वीरसिंह को पकड़ने के लिये भेजी। रहीम ने युद्ध में सफल होना असम्भव समझकर मनसब आदि देने की लालच देकर 'वीर सिंह' को मिलाने की चेष्टा की। रहीम इसमें सफल भी हो चुके थे, किन्तु वीरसिंह एक छोटी सी बात पर रुष्ट होकर शिकार के व्याज से भाग निकले। अकबर को इनके बड़े भाई पर सन्देह हुआ। रामसिंह ने वीरसिंह को पकड़ने की प्रतिज्ञा की और राजसिंह के साथ बराव के दुर्ग को घेर लिया। उसने दो दिन दुर्ग छोड़ने पर घेरा उठा लेने का आश्वासन दिया। वीरसिंह देव इनके विश्वास में आकर दुर्ग छोड़कर चल दिए और रामसिंह ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। वीरसिंह देव को सोते हुए मारने का प्रयत्न किया गया, किन्तु ये जग गये थे और उन्होंने अपने साथियों की सहायता से सब का मार भगाया।

इस समय वीरसिंह देव को चारों ओर शत्रु दिखाई देने लगे। आवश्यकता हुई किसी का आश्रय लेने की। उन दिनों अकबर तथा सलीम में अनारकली नामक बाँदी की एक खेद जनक घटना को लेकर घोर वैमनस्य होगया था। यह बांदी अपूर्व सुन्दरी थी। उसे सलीम से सच्चा प्रेम था और वह उसे हृदय से चाहता था। कतिपय कारणों से अकबर को यह बात असह्य हो गई और उसने उस बाँदी को जीवित ही दीवार में चुनवा दिया। उसी दिन से सलीम विद्रोही हो गया।

इसके कुछ ही दिन पश्चात् वीरसिंह देव सलीम की सेवा में पहुँचे। दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता थी। दोनों ने एक दूसरे के साथ आजीवन सच्ची तथा निष्टकपट मित्रता निबाहने की प्रतिज्ञा की। सलीम ने सर्वप्रथम अबुलफजल को मारने अथवा बन्दी बनाने के

लिये उससे कहा। सलीम ने समझाया कि इन्हीं के कारण उसमें तथा उसके पिता में शत्रुता है। उन्हीं दिनों अबुलफजल को अकबर ने आगरे बुलाया था। सलीम समझता था कि हो न हो मेरा ही कुछ अनिष्ट करने के लिये उन्हें बुलाया है। इसलिये उसने अबुलफजल को मारने का आग्रह किया। प्रथम वीरसिंह ने एक सच्चे मित्र के नाते सलीम को ऊँच नींच समझाने का प्रयत्न किया। किन्तु उसके हठ करने पर उन्होंने प्रयाण किया।

इस समय अबुल-फजल नरवर पहुँच गया था। जब उसने सुना कि उसे पकड़ने के लिये सलीम का भेजा हुआ वीरसिंह ,देव आ रहा है, तो वह क्रोधित हो उठा। वह तत्क्षण एक घोड़े पर सवार होकर काफिर को सजा देने चला। इसे एक पठान सरदार ने बहुत रोका किन्तु उसने न माना। 'उसमें तथा वीरसिंह देव में युद्ध हुआ। यह जिधर झुक पड़ता था, भगदड़ मच जाती थी। इस युद्ध का वर्णन केशव ने अत्यन्त सजीव किया है। अन्त में अबुल-फजल वक्ष स्थान पर एक गोली खाकर गिर पड़ा। युद्ध समाप्त होने पर वीरसिंह देव को रक्त से लथपथ अबुल फजल का शरीर मिला। उन्होंने सिर काटकर उसे सलीम के पास भेज दिया।

किन्तु इस घटना से उसे अत्यन्त दुख हुआ।

इस घटना से अकबर दुःखित हुआ। उसने त्रिपुर राजा को वीरसिंह को पकड़ने के लिए भेजा। बेतवा के किनारे यह युद्ध हुआ, अतः 'बेतवा युद्ध' नाम से यह प्रसिद्ध है। इस युद्ध में वीरसिंह देव के प्रधान सहायक संग्रामशाह मारे गये किन्तु विजय बुन्देलों की ही हुई।

बादशाह की मृत्यु के अनन्तर जहांगीर गद्दी पर बैठा। उसने आजीवन वीरसिंह देव से मित्रता का निर्वाह किया।

रतन-बावनी

दूहा

मूषिक-वाहन गज-बदन एक-रदन मुद-मूल।
बंदहु गण-नायक-चरण शरण सदा सुख-तूल।
ओड़छेंद्र मधुशाह सुत रतनसिंघ यह नाम।
बादशाह सौं समर करि गये स्वर्ग के धाम।
तिनकौ कछु बरनत चरित, जा विधि समर सु-कीन।
मारि शत्रु भट विकट अति, सैन सहित परबीन।

(युद्ध का कारण)

जिहि रिस कंपहि रूस रूम, कंपहि रन ऊ नद्द।
जिहि कंपहि खुरसान शान तुरकान बिहूनद्द।
जिहि कंपहि ईरान तूर्न तूरान बलख्खह।
जिहि कंपहि बुख्खार त.र तातार सलख्खह।
राजाधिराज मधुशाह नृप, यह बिचार उदित भयव।
हिंदुवान धर्म रच्छक समुझि, पास अकब्बर के गयव।

दिल्लीपति दरबार जाय मधुशाह सुहायव।
जिमि तारन के मांह इंदु शोभित छवि छायव।
देख अकब्बरशाह उच्च जामा तिन केरो।
बोले बचन बिचारि कहौ कारन यहि केरो।
तब कहत भयव बुन्देलमणि, मम सुदेश कटकि अवन।
करि कोप ओप बोले बचन, मैं देखौं तेरो भवन।

सुनत बचन मधुशाह शाह के तीर समानह।
लिखिव पत्र ततकाल हाल तिहि बचन प्रमानह।
जुरहु जुद्ध करि क्रुद्ध जोरि सेना इक ठौरिय।
तोर तोर तन रार शोर करिये चहु ओरिय।
तुव भुजन भार है कुँवर यह, रतनसेन शोभा लहय।
कछु दिवस गएँ गढ आड़छो दिल्लीपति देखन चहय।

दोहा

सुनत पत्र मधुशाह को, रतनसेन ततकाल।
करिय तयारी जुद्ध की, रोस चढो जिन भाल।

दोहा

साजि चमू मधुशाह सुत, हरवल दल कर अग्र।
हय गय पयदर सजि सकल, छोड़ि ओड़छो नग्र।

(कुमार उवाच)

रतनसेन कह बात सूर सामंत सुनिज्जिय।
करहु पैज पनधारि परि सामतन लिज्जिय।
धरिय स्वर्ग अच्छरिय हरहु रिपु गर्व सर्व अब।
जुरि करि समर आज सुरमडल भेदहु सब।
मधुशाह-नंद इमि उचरइ, खड खड पिंडहि करहुँ।
कइहु सुदत हथियान क, मर्दहुँ दल यह प्रन धरहुँ।
जहँ अमान पट्ठान ठान हियमान सु उट्ठिव।
तहँ केशव काशी नरेश दल रोप भरिट्ठिव।
जहँ तहँ पर जुरि जोर ओर चहुँ दुदुभि बज्जिय।
तहाँ विकट भट सुभट छुटक घोटक तन तज्जिय।

जहँ रतनसेन रण कहँ चलिव, हल्लिय महि कम्पयो गयन।
तहँ है दयाल गोपाल तब, विप्र भेव बुल्लिय बयन।

(विप्र उवाच)

जुतौ भूमि तौ बेलि बेलि लगि भूमि न हारै।
जुतौ बेलि तौ फूल फूल लगि बेलि न जारै॥
जुतो फूल तो सुफल सुफल लगि फूल न तोरै।
जो फल तौ परिपक्क पक्क लगि फलहि न फौरै॥
जा फल पक्क तौ काम सब, परिपक्कहिं जग मंडिये।
प्रान जुतौ पति बहु रहै, पति लगि प्रान न छंडिये॥

कुमार उवाच

गई भूमि पुनि फिरहि बेलि पुनि जमै जरे तैं।
फल फूले तैं लगहि फूल फूलंत मरे तैं॥
केशव विद्या विकट निकट बिसरे तैं आवै।
बहुरि होय धन धर्म गई संपति पुनि पावै॥
फिरि होइ स्वभाव सुशील मति, जगत गति यहू गाइये।
प्राण गएँ फिरि फिरि मिलहि, पति न गएँ पति पाइये॥

विप्र उवाच

मातु हेत पितु तजिय पिता के हेत सहोदर।
सुतहि सहोदर हेत सखा सुत हेत तजहु बर॥
सखा हेत तजि बन्धु, बन्धुहित तजहु सुजन जन।
सुजन हेत तजि सजन, सजन हित तजहु सुखन मन।
कहि केशव सुख लगि घरनि तजि, घरनी हित घर खंडिये।
सुर छंडिय सब घर हेत पति, प्राण हेत पति छंडिये।

कुमार उवाच

जासु बीज हरि-नाम जम्यो सुचि सुकृति भूमि थल।
एकादसी अनेक बिमल कोमल जाके दल।
द्विज चरणोदक बुन्द कुन्द सींचत सुख बढ्ढिय।
गोदानन के देत धर्म-तरुवर दिन चढ्ढिय।
सत फूल फुल्लिय सरस, सुयश बास जग मंडिये
कहि केशव फलती बेर कर "पति" फल किमिकर छंडिये

विप्र उवाच

दानी कहा न देय चोर पुनि कहा न हरई।
लोभी कहा न लेय आग पुनि कहा न जरई।
पापी कहा न करै कह न बेचै ब्योपारी।
सुकवि न बरनैं कहा कहा साधू न सँचारी।
सुनि महाराज मधुशाह-सुव, सूर कहा नहिं मंडई।
कहि केशव घर घन आदि दै, साधु कहाँ नहिं छंडई।

विप्र उवाच

पंच कहैं सो कहिय पंच के कहत कहिज्जिय।
पंच लहैं सो लहिय पंच के लहत लहिज्जिय।
पंच रहैं तौ रहिय पंच के दिष्षित दिष्षिय।
परमेसुर अरु पंच सबन मिलि इक्कय लिष्षिय।
सुनि रतनसेन मधुशाह सुव, पंच सध्य नहिं लज्जिये।
कहि केशव पंचन संग रहि, पंच भजै तहँ भज्जिये।

विप्र उवाच

लोकपाल दिगपाल जिते भुवपाल भूमि मुनि।
दानव देव अदेव सिद्ध गन्धर्व सर्व गुनि।

किन्नर नर पशु पच्छि जच्छ रच्छस पन्नग नग।
हिंदुव तुर्क अनेक और जल थलहु जीव जग।
सुरपुर नरपुर नागपुर, सब सुनि केशव सजियहु।
सुनि महाराज मधुशाह सुव, का न जुद्ध जुरि भजियहु।

कुमार उवाच

महाराज मलखान ठान लाग प्राणन छुडिव।
गहिव तरल तरवार तुरत अरि दल बल खडिव।
राजकाज धरि लाज लोह नरि तुरुक बिहडिव।
खरग सैनि हनि तासु वासु बैकुण्ठहि मडिव।
परताप रुद्र परताप करि, अरि कुलनिनु तप्पत कियहु।
कहि केशव नर सह युद्ध करि, इन्द्रासन उद्दित लियहु।

विप्र उवाच

द्विज माँग सो देव विप्र को वचन न खगिय।
द्विज बोलै सो करिय विप्र कौ मान न भगिय।
परमेस्वर अरु विप्र एक सम जानि सु लिजिय।
विप्र वैर नहिं करिय विप्र कहँ सर्वसु दिजिय।
सुनि रतन सेन मधुशाह सुव, विप्र वोलकिन लिजियहु।
कहि केशव तन मन वचन करि, विप्रकह्य सुई किजियहु।

कुमार उवाच

पतिहि गए मति जाय गए मति मान गरै जिय।
मान गरे गुन गरै गरे गुनलाज जरै जिय।
लाज जरे जस भजै भजे जस धरम जाइ सब।
धरम गये सब करम करम गये पास बसै तब।

पाप बसै नरकन परै, नरकन केशव को नहै।
यह जान देहुँ सरबसु तुम्हैं, सुपात्र दए पति ना रहै।

दोहा

पति मति अति दृढ़ जानि कर, सुनि सब बचन समाज।
राम-रूप दरसन दियौ, केशव त्रिभुवन राज।

(राम-रूप वर्णन)

हाटक जटित किरीट शीश स्यामल तनु सोहै।
हाथ धरैं धनुबाण देखि मन-मथ मन मोहै।
जामवन्त हनुमन्त विभीषण भूपति भूपन।
केशव कपि सुग्रीव सङ्ग अङ्गद अरि-दूषन।
संग सीता शेष अशेषमति, गुण अशेष अंत अंगप्रति।
जहँ रतनसेन सकट विकट, प्रकट भये रघुवंश पति।

कुमार उवाच

बिना लरैं जो चलहुँ सुखद सुन्दर तब को कह।
जो लरि चलौं सदेह लोग भागौ कहि मोकह।
तातैं जुद्धहिं जुरहुं जुद्ध जोवन अँगवाँऊँ।
भुवि राखौ दै बाहु लोग ईसहि पहिराँऊँ।
राखहुँ शरीर खित्तहि खभरि, नहिं केशव नेकहु हलौं।
इहि भांत लोक अवलोक करि तबहिं सुतुव सध्यहिं चलौं।

श्री परमेश्वर उवाच

प्रथम धरेहु अवतार तैं जु मेरौ व्रत किन्नव।
जोबन तनु धन मरदि तबहिं मेरौ प्रण (लिन्नव।
प्रण प्राणन कौं बांद बहुत मेरे मन भायौ।
अब केशव इहि काल अवाहि हो भलौ रिझायौ।

सुनि महाराज मधुशाह सुव, जदपि लोभ नहिं तौ हियव।
तदपि सु मगहि मगने, हौं प्रसन्न तोकहु भयव।

कुमार उवाच

लै कर नर तन नीर सभा महल मन भुल्लिय।
तुम साथी समरथ्थ शत्रु कहँ मत्त न डुल्लिय।
लाज काज धरि लाह लोह लरि लरि यश लिज्जहु।
विकट कटक मैं हटक पटक भट भुवि मर्हँ दिज्जहु।
यह अनूप मेरो वचन, केशव चित धरे सुनहु सब।
मरहु तो मो मध्यहि चलहु, भजहु तो भजि जाव अब।

साथ के लोगन कौ वचन—

तुम बालक हम वृद्ध इते पर जुद्ध न देखे।
तुम ठाकुर हम दास कहा कहिये इहि लेखे।
कहि आवै सो कहौ कहा हम तुमरौ करिहैं।
हम आगे तुम लरौ तु अब हम बूडि न मरिहैं।
कहि केशव मडहि रारि रण, करि राखे खित्तहि भरन।
सुनि रतनसेन मधुशाह सुव, पुनि न होइ आवागवन।

कुमार उवाच

जानि शूर सब सथ्थ प्रगट पश्चम तनु फुल्लिय।
साधु-साधु यह बचन पाय मुख सब सौं बुल्लिय।
दै बरदान प्रसिद्ध सिद्ध कीनौ रण रुद्रहि।
अधिक सुवेश सुदेश उदित उद्दत अरु क्षुद्रहि।
लखि लोकईश गुर ईश मिलि, रचि कविता कविता ठई।
सुरईश ईश जगदीश मिल, एक-एक उपमा दई।

उपमा-वर्णन

किधौं सत्त की शिखा शोभ साखा सुखदायक।
जनु कुल दीपक जोति जुद्ध-तम मेंटन लायक।
किधौं प्रगट पति पुंज पुन्य कर पल्लव पिक्खिय।
किधों किंत्ति परभात तेज मूरति करि लिक्खिय।
कहि केशव राजत परम, रतन सेन शिर शुम्भियहु।
जनु प्रलय काल फणपति कहूँ, फणपति फण उदित कियहु।
साजि साजि गजराज राजि आगें दल दीनहि।
ता पीछें पति-पुञ्ज पुञ्ज पयदर रथ कीनहि।
ता पीछें असवार शूर केशव सब मोसन।
चलत भई चकचौंध बाधि बखतर बर जोशन।
तब फटक भये दल मट्ट सब, तुरत सेन दपटत रन।
जनु बिन्जु सग मिलए कइक, एकहि पवन झकोर घन।
कोइ निबहौ पग दोय कोइ पग तीन-तीन पर।
कोइ निबहौ पग चार चल्यौ, कोइ पाच पाच कर।
कोइ निबहौ पग खष्ट चलौ कोइ सात सात तहँ।
कोइ निबहौ पग आठ चल्यो कोइ अग्ग अक लहँ।
दसह पाय दसहू दिसह, साथी सबहि सटकियह।
इक मधुकुरशाह-नरेन्द्र सुत, सूर कटक फटकयह।
दीठि पीठि तन फर पीठ तन इक न दिक्खिय।
फिरहु फिरहु फिर फिरहु कहत दल सकल उमग्गिय।
ठान ठान निज शान मुरांक पाठान, जु धाए।
काढ काढ तरवार तरल ता छिन तठ आए।
इक इक घाउ घल्लिव सबन, रतनसेन रनधीर कहँ।
जनु ग्वाल बाल होरी हरषि, सहल छोर अहीर कहँ।

दो०—रूपे शूर सामत रण, लरहि प्रचारि प्रचारि।
पिच्छल पग नहि चलहि कोउ, जुभ्कत चलहि अगारि॥
मरण धारि मन लियौ वीर मधुकर सुत आयौ।
विचल नृपति सव म्लेच्छ देखि दल धर्म लजायौ॥
कट्ठ कुभण्ड सव करिय कुँवर रूप्यहु जुर जगहि।
तिल तिल तन कट्टिव मुरकि फरौ नहि अगहि॥
कहि केशव तन बिन शीश हुँ, अतुल पराक्रम कमध किय।
सोइ रतनसेन मधुशाह सुव तव कृपाल दुहु हत्थ लिय॥

दो०—चले शूर सामत सव, धरम धारि प्रभु काम।
कोपेहु तहँ मधुशाह सुव, ज्यों रावण पर राम॥

करि श्रीपतिहि प्रणाम इष्ट अपने सव बुल्लिव।
पातशाह सुनि खवर आय बीचहि दल दिल्लिव॥
सकल समिटि सामत गहिव तव जाइ वाट कहि।
लाहिव जुद्ध अगवान शूर सव चले सामुहहि॥
रजपूत दृष्टि धरणी गहहिं, केशव रण तहँ हकियव।
सोइ रतनसेन महाराज जू, निकट भट्ट वहु कड्डियव॥

दोहा

रतनसेन हय छडियौ, उत कूदे सामन्त।
नोन उचारन शीश तें, कियो लरन कौ तन्त॥

साथी लोगन कौ वचन

बुल्लिन छत्रिय वचन सुनहु महाराज सु-कानहि।
आप जुद्ध कौ छाडि जाहु सुरपुर तिहि ठामहि।
हम करिहैं संग्राम आज आवहि तुव काजहि।
राख धर्म तुम सुभग त्यागि आपुन परिवारहि।

किज्जिय सुराज अरिमूल हनि, केशव राखहि लाज रन।
तुव नीन उधारहि खित्त महि, यश गावहि कवि तुम धरन।

है वाणी आकाश सुबहु सब शूर सत यहि।
रहहुँ तुमारे साथ मनहि करि राखहु अग्रहि॥
राखहु पति कुललाज आवहिं खग्गन तनु खडहु।
जाहु मलेच्छ न इक सबै रण सैन बिहडहु॥
कहि केशव राखहु रणभुवन, जियत न पिच्छल पग धरहु।
सुइ रतनसेन कुल लाडिलहु, रिपु रण में कट्टहि करहु॥

दोहा

राजा मनमुख तनु तजै, करै स्वर्ग में भोग।
दुनियाँ में यश विस्तरै हँसै न, जग कौ लोग॥

रतनसेन रण रहित्र प्राण छत्रिय भ्रम राखहु।
करहु सुवचन प्रमाण शूर सुरपुर पग नाखहु॥
डेढ सहस असवार सहस दो पयदर रहियव।
पील पचास समेत इतिक सुरपुर मग लहियत्र॥
जहँ सहस चार सैना प्रबल, तिन मँह कोउ न घर गयव।
सोइ रतनसेन महाराज कौ, केशव यश छुदन कहित्र॥

वीरसिंह देव चरित

अबुल फजल और वीरसिह देव का युद्ध

कुंडलिया

सुख पायो बैठे हते, एक समै सुलतान।
खाँ सरीफ तिनि बालि लिये, बीरसिंह देव सुजान।
बीरसिंह देव सुजान मान मन बात कही तब।
या प्रयाग में कुँवर सौंहैं करिये मासौ अब।
तोसौं करौं विचार करहि अपने मन भाए।
अनत न कबहूँ जाउ रहहु मा सँग सुख पाए।
पायनि पर तसलीम करि बोल्या बीर सिंह राज।
हौं गरीब तुम प्रकट ही सदा गरीब निवाज।
सदा गरीब निवाज लाज तुमहीं लघु लग्मो।
बिनती करिये कहा महा प्रभु अन्तरजामा।
लोभ मोह भय भाजि भजें हम मन वच कायनि।
जौ राखहु मरजाद तजा सपनेहु नहि पायनि।

चौपही

सौं हैं कीन्ही माँझ प्रयाग। बीर सिंह सुलतान सभाग।
तुमहीं मेरे दोउ नैन। तुम हौ बुधिबल भुज सुखदैन।
तुमहीं आग पीछे चित्त। तुमहीं मंत्रा तुमहीं मित्त।
मात पिता तुम परचा पान। तुम लगि छाडौं अपने प्रान।

वीरसिंह उवाच

इक साहि अरु कीजतु प्रीति । सब दिन चलन कहत इहि रीति ।
तुम्हें छोडि मन आवै आन । तौ भूलौ सब धर्म विधान ।
यह सुनि साहि लह्यो सब मुख्ख । लाग्यो कहन आपनौं दु ख ।
जितनो कुल आलम परवीन । थावर जगम दोई दीन ।
तामें एके बैरी लेख । अब्बुल फजल कहावै सेख ।
वह सालतु है मेरे चित्त । काढि सकै तो काढहि मित्त ।
जितने कुल उमरावनि जानि । ते सब करत हमारी कानि ।
आगे पीछे मन आपन । वह न मोहि तिनुका करिगने ।
हजरत को मन मोहित भयो । याके पारे अन्तर पर्यो ।
सत्वर साहि बुलायो राज । दक्खिन ते मेरे ही काज ।
हजरत सों जो मिलिहैं आनि । तो तुम जानहु मेरी हानि ।
वेगि जाउ तुम राजकुमार । बीचहि वासो कीजै रारि ।
पकरि लेहु कै डारो मारि । यह मन निहचै करहु विचार ।
होहि काम यह तेरे हाथ । सब साहिबी तुम्हारे साथ ।
ऐसो हुकुम साहि जब कियौ । मानि सबै सिर ऊपर लियौ ।
राजनीति गुनि भय भ्रम तोरि । विनयो वीरसिंह कर जोरि ।
वह गुलाम तू साहिब ईस । तासों इतनी कीजहि रीस ।
प्रभु सेवक की भूल विचारि । प्रभुता इहै जु लेइ सम्हारि ।
सुनियतु है हजरत को चित्त । मनी लोग कहत है मित्त ।
तो लगि साहि करै जब रोष । कहिये यो किहि लागै दोष ।
जन की जुवती कैसी रीति । सब तजि साहिब ही सों प्रीति ।
ताते वाहि न लागै दोष । छाड़ि रोष कीजै सन्तोष ।

दोहा

सहसा कछु नहिं कीजई, कीजै सबै विचारि ।
सहसा करें ते घटि परैं, अरु आवै जग गारि ॥

साह सलीम उवाच

बरन्यो मति मते को मार । प्रभु जन को सब यहै विचार ।
जौ लगि यह जीवतु है सेख । तौं लगि मोहि मुआ ही लेख ।
सबैं विचारि दूरि करि चित्त । बिदा हाहु तुम अब ही मित्त ।
कसि तुरतहि बखतर तन बेगि । लैं बाधी कटि अपने तेग ।
घोरी दै सिर पाग पिन्हाई । कोनी बिदा तुरत सुख पाई ।
दरखाने ते राजकुमार । चलत भई यह साभा सार ।
रवि मडल ते आनँद कन्द । निकसि चल्यो ज्यों पूरनचन्द ।
सैद मुजफ्फर लीनों साथ । चले न जाने कोऊ गाथ ।
बीच न एकौ कियौ मोकाम । देख्यो आनि आपनो ग्राम ।
आनन्दे जन पद सुख पाइ । नील-कठ जनु मेघहि पाइ ।
पठये चर नीके नर नाथ । आवत चले सेख के साथ ।
चारन कही कुँवर सो आइ । आए नरवर सेख मिलाइ ।
यह कहि भये सिन्ध के पार । पल पल लखैं सेख की सार ।
आए सेख मीच के लिए । पुर पराइछे डेरा किए ।
आबुलफजल बडेही भोर । चले कूच कै अपने जोर ।
आगे दोनी रसद चलाइ । पीछे आपुनु चले बजाइ ।
बीरसिंह दौरे अरि लेखि । ज्यों हरि मत्त गयन्दनि देखि ।
सुनतहि बीरसिंह को नाउँ । फिरि ठाढो भयो सेख सुभाउ ।
परम सरोष सो सेख बखानि । जस अपर नृसिंहहिं जानि ।
दौरत सेख जानि बड भाग । एक पगन गही तब बाग ।

पठान उवाच

नहीं नवाब पसर को ठौर । भूलिन सत्रु हि सामुहैं दौर ।
चलु चलु ज्यों क्यौहूँ चलि जाहि । तेहि पाइ सुख पावै साहि ।
पुनि अपने मन में करि नेम । जैसो चढि तहँ साह सलेम ।

सेख उवाच

जूझत सुभट ठावँहीं ठाँय। कहियो अब कैसे चलि जाँय।
आनि लिया उन आलम लोग। भाजे लाज मरैगो लोग॥

पठान उवाच

सुभटन का ता यहऊ काम। आप मरे पहुचावहि राम।
जो तू बहुते आलम लोग। जीत बाचि है रचिहैं लोग।

सेख उवाच

मैं बल लीनों दक्खिन देस। जीत्यौ मैं दक्खिनी नरेस।
साहि मुरादि स्वर्ग जब गये। मैं भुवभार आपु सिर लए।
मेरा साहि भरोसो करै। भाजि जाँउ म कैसै धरै।
कहु, यों आलम लोग गँवाइ। कहिहौ कहा साहि सौं जाइ।
देखत लिया नगारा आइ। कहा बजाऊँ हा घर जाइ।
घर का मेंग पाइन परै। मेरे आगे हिन्दू लरै।

पठान उवाच

सेख विचारि चित्त मँह देखु। काजु अकाजु साहि कौ लेखु।
सुनु नवाब तू जूझहि तहाँ। अकबर साहि निलोकै महाँ।

सेख-उवाच

प्रभु पै जाइ ग्मातिहि जोर। सोक समुद्र सलीमहि वोर।
तू जु कहत चलि जैये भाजि। उठे चहूँ दिसि बैरी गाजि।
भाजे जातु मरतु जो होइ। मोको कहा कहै सब कोइ।
जौं भजि ये लरिये गुन देखि। दुहूँ भाँति मरिबोइ लेखि।
भाजौ जौ तौ भाजौ जाइ। क्यौं करि दै है मोहि भजाइ।
पति की बैरी पाइ निहारु। सिर पर साहि भया कौ भारु।

लाज रही अँग अँग लपटाइ। कहु कैसे कै भाज्यो जाइ।
छाँडि दई तिहिं बाग विचारि। दौर्यौ सेख काढि तरवारि।
सेख होइ जितही जित जनै। भर भराइ भागैं भट तनै।
काढै तेग सोह यों सेख। जनु तनु धरे धूमधुज देख।
दड धरे जनु आपुन काल। मृत्यु सहित जम मनहु कराल।
मारै जाहि खड द्वै होइ। ताके सम्मुख रहै न कोइ।
गाजत गज हींसत हय ठारे। बिनु सूडनि बिनु पायनि कारे।
नारि कमान तीर असरार। चहुँ दिसि गोला चलै अपार।
परम भयानक यह रन भयौ। सेखहि उर गोला लगि गयौ।
जूझि सेख भूतल पर परे। नैकु न पग पाछे का धरे।

सोरठा

अवधि धर्म का लेख, द्विज प्रतिपाल तें।
रन में जूझे सेख, अपनी पति लै साहि कीं।

जब खुरखेट निराट मिटि गई। रन देखन की इच्छा भई।
कहु तोग कहु डारे तास। कहु सिंदूख पताक प्रकास।
कहुँ डागे रेजा तरवारि। कहु तरकस कहु तीर निहारि।
कहुँ रुड कहूँ डारे मुड। कहूँ चौर झुँडनि के झुँड।
हिलत लुटत कहु सुभट अपार। टूटनि टिकि टिकि उठत तुखार।
देखत कुँवर गये तब तहाँ। अबुलफजल सेख है जहाँ।
परम सुगन्ध गन्ध तन मर्यो। सोनित सहित धूरि धूसर्यो।
कछु सुख कछु दुख व्यापत भये। लै सिर कुँवर बड़ो नहिं गये।

मान

जीवन-वृत्तान्त

राजविलास के रचयिता मान का जीवन विषय कोई वृत्तान्त ज्ञात नहीं। राजविलास के प्रारं में यह छन्द मिलता है :—

सुभ संवत् दस सात बरस चौंतीस बधाई।
उत्तम मास असाढ़ दिवस सत्तमि सुखदाई।
बिमल पाख बुधवार सिद्धि बर जोग सपत्तौ।
हापकार रिषि हस्त रासि कन्या ससि रत्तौ।
तिन द्यौस मात त्रिपुरा सुकवि, कीनौ ग्रन्थ मंडान कवि।
श्रीराजसिंह महराण कौ रचि यहि जस जौं चन्द रवि।

इससे ज्ञात होता है कि राजविलास की रचना वि० सं० १७३४ अषाढ़ शुक्ल ७ बुधवार को प्रारम्भ हुई। कवि का नाम मंडान तथा इनकी माता का नाम त्रिपुरा था। मान यह इनका उपनाम था सम्भवतः ये मेवाड़ नरेश राणा राजसिंह के दरबार में रहते थे। इनका एक मात्र ग्रन्थ राजविलास उपलब्ध है। इनके विषय अन्य अनेक धारणाएं प्रचलित हैं, किन्तु उनके विषय में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

इस काव्य की रचना कवि ने मेवाड़-नरेश राजसिंह की प्रशंसा में की है। इसमें अठारह विलास (सर्ग) हैं। प्रारम्भ में सरस्वती की स्तुति विस्तार से की गई है। तदनन्तर वंशोत्पत्ति, राजसिंह का जन्मोत्सव तथा उसका बाल्यजीवन चित्रित किया गया है। राजसिंह की चढाइयों तथा उनके युद्धों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

राजविलास

राजविलास का सारांश इस प्रकार है:—

प्रथमः—प्रारम्भ में सरस्वती की विस्तृत वन्दनाके साथ ग्रन्थ-निर्माण का समय देते हुए कवि ने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। इसके अनन्तर मौर्य कुल का वर्णन करते हुए शिवजी के प्रसाद से बप्पा रावल की उत्पत्ति सोरठ के राजा गुहादित्य से बताई गई है। गुहादित्य के मारे जाने पर बप्पा रावल जँगल में इधर उधर भटकने लगे। एक दिन जगल में बप्पा रावल की हारीत मुनि से भेंट हुई और ये उनकी सेवा करने लगे। हारीत ने स्वर्ग जाते समय इन्हें प्रतापी राजा होने का आशीर्वाद दिया। जगल में ही इनका विवाह हुआ तथा ये वहाँ पर कुछ सैन्य सग्रह भी करने लगे। अपने मामा के यहा सेनापति होकर फिर उन्होंने उसी का राज्य दबा लिया है। इन्ही बप्पा रावल के वश में राजसिंह का जन्म हुआ था। प्रथम विलास २३८ छन्दों में समाप्त हुआ है।

द्वितीय:—इसमें बप्पा रावल की वशावली तथा उनसे सम्बन्धित कुछ मुख्य घटनाएं उल्लिखित हैं। समरसिंह, प्रताप आदिका अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन है। इस विलास के अन्त में उदयपुर के महल, सभाएं, बाजार, व्यापार, राज्य-प्रबन्ध तथा नगर-निवासियों का अच्छा वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर राजसिंह के जन्म का वर्णन करते हुए कवि ने उनकी ११ वर्ष तक की अवस्था का चित्रण सक्षेप में किया है। मान ने इनकी जन्म-तिथि इस प्रकार दी है:—

संबत् सोरह सरस बरस छह अमिय बखानह।
असि अमृत ऋतु सरद धरा निष्पनिय सुधानह।
मगल कातिक मास पढम पप बीय पवित्तह।
बलवन्तो बुधवार निरवि भरनी सुनपत्तह।
निसि नाथ उदित गय पहर निशि मेष लगन मन्यों सुमन।
जगतेश राज घर सुत जनम राजसिंह राना रतन॥

इससे प्रकट होता है कि सं० १६८६ वि० शरद् ऋतु कार्तिक कृष्ण द्वितीया को एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर चन्द्रोदय के समय मेष लग्न में राजसिंह का जन्म हुआ था। इस विलास में १९२ छन्द हैं।

तृतीयः—इसमें राजसिंह का बूंदीनरेश हाड़ा छत्रसाल की कन्या से विवाह का वर्णन है। इसी समय छत्रसाल की दूसरी कन्या का विवाह जोधपुर नरेश गजसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह के साथ हुआ था। दोनों बारातें साथ ही साथ आई थीं। शिष्टाचार तथा विवाह किसका प्रथम हो इस प्रश्न पर कुछ झगड़ा भी हुआ और युद्ध होने की सम्भावना होगई थी, किन्तु बूंदी नरेश के समझाने से सब कुछ शान्त हो गया। जगतसिंह के पुत्र राजसिंह का ही विवाह पहले हुआ। इसमें १०७ छन्द हैं।

चतुर्थः—इसमें राजसिंह के लगाए हुए 'ऋतु विलास' नामक बाग का सुन्दर तथा विस्तृत वर्णन है। इसमें केवल २३ छन्द हैं।

पंचमः—इसमें राजसिंह के राज्याभिषेक का विस्तृत वर्णन है। राजविलास के अनुसार राजसिंह २३ वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बैठे।

पालिय प्रवर कुआर पद, बरस तेइस बखान।
पाट बइट्ठे पुहवी पति राजसिंह महारान।

इस विलास में ८३ छन्द हैं।

षष्ठ :—इसमें राजसिंह के "टीकादारी"* के उपलक्ष्य में दिग्विजय का वर्णन है। इसमें सेना की सजावट और मुगलराज्य के एक व्यापारिक नगर मालपुरा के लूटने का वर्णन है। इसमें ३९ छन्द हैं।

सप्तम :—रूपनगर के राजा मानसिंह राठौर की बहिन रूपकुमारी (प्रभावती) से औरंगजेब ने व्याह करना चाहा था, किन्तु रूप कुमारी ने स्वयं पत्र लिखकर राजसिंह को बुलाया। पत्र के अनुसार राजसिंह ने औरंगजेब के आने के पूर्व ही रूपनगर जाकर प्रभावती से विवाह कर लिया। इस विलास में राजसिंह की सेना का विस्तृत वर्णन किया गया है। यह विलास १०७ छन्दों में समाप्त हुआ है।

अष्टम :—इस विलास में 'राजसमुदतालाब' तथा विष्णु मन्दिर बनवाने एवं तुलादान का उल्लेख किया गया है। उल्लिखित तालाब सात वर्षों में तैयार हुआ था तथा इसका विस्तार १५ कोस का था। इस विलास में अकाल का भी अत्यन्त हृदय-द्रावक वर्णन किया गया है। इसमें कुल १७२ छन्द हैं।

---

*टीकादारी दिग्विजय का समय कवि ने इस प्रकार दिया है :—

संवत् प्रसिद्ध दह सत्त दाम। वत्सर सु पञ्चदस जिट्ठ माम॥

सं० १७१५ वि० में इन्होंने मालपुरा पर चढ़ाई की। यह समय राज्याभिषेक होने के ६ वर्ष पीछे का था। यह प्रतीत होता है कि वास्तविक दिग्विजय की तैयारी में इन्होंने यह समय व्यतीत किया। अन्य राजपूत राजाओं की तरह कल्पित दिग्विजय का स्वाग नहीं रचा।

नवम —इसमें राजा जसवन्तसिंह तथा औरंगजेब के विरोध का वर्णन है। बादशाह की अत्याचार पूर्ण पक्षपात पूर्ण तथा साम्प्रदायिक नीति का इस विलास म चित्रण किया गया है

जसवन्तसिंह के मरने पर औरंगजेब ने उनके लडकों से धन मागा। इसका जसवन्तसिंह के सरदारो ने विरोध किया और युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गये। राजसिंह ने भी उनकी सहायता की और वहा के बालक राजा को अपनी शरण मे रखा। इस विलास मे २०६ छन्द हैं।

दशम :—बादशाह ने चिढकर हिन्दूपति राजसिंह को एक पत्र लिखकर जोधपुर के बालक राजा अजीतसिंह को अपने पास भेजने की आज्ञा दी। आज्ञा पालन न करने से बादशाह ने युद्ध की घोषणा कर दी। मेवाड से राजकुमार भीमसिंह के सेनापतित्व में एक सेना रवाना हुई। इस विलास में १२३ छन्द है।

एकादश :—इस विलास मे देवसूरि नामक घाटी मे भीमसिंह तथा मुगल-सेना के भयकर युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध मे गापानाथ राठौर तथा सोलकी सरदारों ने मुगल-सेनापति रूमी को परास्त कर मार डाला। इस विलास में १४ छन्द हैं।

द्वादश —राजकुमार उदयभान ने उदयपुर थाने पर मुगलों से युद्ध किया। इस युद्ध मे मुगल-सेना ७५ हजार तथा उदयभान की सेना एक हजार थी। मुगल सेना-पराजित हुई। इस विलास में २३ छन्द हैं।

त्रयोदश :—इसमें नोनवारा नामक पहाड पर मेवाड के सामन्त रतनसिंह तथा केशरीसिंह द्वारा मुगल-सेना के परास्त करने का वर्णन है। इस युद्ध में मुगल सेना का सचालन शाहजादा अकबर कर रहा था। इस युद्ध में औरंगजेब डरकर चित्तौड के किले में छिप गया था। इस विलास में ३५ छन्द हैं।

चतुर्दश :—केशरीसिंह के पुत्र गंगासिंह संगतावत ने मुगल सेना पर आक्रमण कर शाही हाथियों का झुंड छीन लिया और राजसिंह को समर्पित कर दिया। इस विलास में ४१ छन्द हैं।

पंचदश :—राजकुमार भीमसिंह ने सोरठ तथा गुजरात को मुगल देश समझकर आक्रमण किया। किन्तु पिता की आज्ञा से वे शीघ्र ही वहा से लौट आए। इस विलास में ३९ छन्द हैं।

षोडश :—मेडतिया के राजा बधनौर नरेश सावलदास ने बधनौर किले से निकलकर रुहिल्ला खां के नायकत्व में दिल्ली से आने वाली मुगल सेना पर आक्रमण कर उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसमें सावलदास की शूरता का अत्यन्त प्रभाव शाली वर्णन है। इस विलास में २८ छन्द हैं।

सप्तदश :—मेवाड के मन्त्री दयालशाह ने मालवा प्रान्त पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में माडौ, उज्जैन, सारगपुर, देवास सिरोंज, चदेरो आदि नष्ट हो गये। इस विलास में ३९ छन्द हैं।

अष्टादश :—इसमें शाहजादा अकबर की चित्तौड़ पर चढ़ाई का वर्णन है। शाहजादा अजमेर भाग गया और चित्तौड पर राजसिंह के पुत्र जयसिंह का अधिकार होगया।

इसी युद्ध के साथ ग्रन्थ भी समाप्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थ कुछ अधूरा रह गया है। राणा की मृत्यु का उल्लेख, इसमें नहीं है। यह विलास १०७ छन्दों में समाप्त हुआ है।

महाराणा राजसिंह की आज्ञा से रणछोड भट्ट नामक एक पंडित ने मेवाड के इतिहास से सम्बन्धित सामग्री एकत्रित कर 'राजप्रशस्ति' नामक एक महाकाव्य सस्कृत मे लिखा था जो 'राज समुद' के बाध पर लगी हुई २५ शिलाओं पर उद्धृत है। यह केवल काल्पनिक काव्य नहीं है किन्तु इसमें सम्वतों के साथ साथ ऐतिहासिक घटनाओं का

ऐतिहासिकता

विस्तृत वर्णन है*। राजविलास तथा राज-प्रशस्ति में उद्धृत घटनाएँ परस्पर बहुत कुछ मिलती हैं। उनमें अन्तर केवल इतना ही है जितना एक इतिहास तथा काव्य में होता है। जो घटनाए राजसिंह के चरित्र की हीनता प्रगट करती हैं उनका उल्लेख ही मान ने नहीं किया और किया भी है तो उनका स्वरूप बदलकर। भवनों का उल्लेख राजविलास में ठीक ही मिलता है।

टीकादारी-दिग्विजय के अवसर पर जब राजसिंह ने मालपुरा का बाजार लूटा उस समय बादशाह ने इन पर चढ़ाई कर इन्हें परास्त किया। राजसिंह की मुक्ति क्षमा याचना करने पर हुई थी। इस घटना का राज विलास में कोई उल्लेख नहीं है।

औरंगजेब की जोधपुर की चढ़ाई के समय, राजसिंह ने, महाराज अजीतसिंह की प्रत्यक्ष तथा पर्याप्त सहायता नहीं की थी अत: सरदार दुर्गादास को महत्संकटों का सामना करना पड़ा था। किन्तु अन्त में वह सफल हुए और औरंगजेब की सेना मोग खड़ी हुई। मान ने इसका संपूर्ण श्रेय राजसिंह को दे दिया है और दुर्गादास का केवल सरदार कहकर उल्लेख मात्र कर दिया है।

औरंगजेब द्वारा विवाह का प्रस्ताव करने पर रूपनगर (किशनगढ़) की राजकुमारी का राणा राजसिंह को पत्र लिखने का उल्लेख सब जगह मिलता है। किन्तु राजविलास में लड़की का नाम रूपकुमारी (प्रभावती) लिखा है और अन्य इतिहासों में यह नाम "चारुमती" मिलता है।

इतिहास में प्रसिद्ध है कि चारुमती से विवाह करने के लिये औरंगजेब जब अपनी सेना के साथ रूपनगर (किशनगढ़) आ रहा

*राजपूताने का इतिहास, ओझा पृ० ८८७

था। उस समय चूड़ावत सरदार ने औरंगजेब को तीन दिन तक रोक रखा और अन्त में मारा गया। सरदार के मेवाड़ से प्रस्थान करते समय उसकी नवपरिणीता पत्नी ने पति को चिन्तित देखकर आत्म-घात कर लिया था। राजविलास में इस घटना का कोई उल्लेख नहीं है।

आलोचना

मान ने कई स्थानों पर पचक, सतक आदि लिखा है। इसप्रकार की रचना में सब छन्दों की अन्तिम पंक्ति एक समान होती है। इस प्रकार की कविता पढ़नेमें सुखकर प्रतीत होती है तथा उसमें सरसता भी अधिक आ जाती है :—

उदाहरण स्वरूप निम्न-लिखित पद दिया जाता है:—

सुप्रसन्न सरसुत्ति मात सुमिरत कोटि मंगल कारनी।
भारती सुभर भँडार भरनी विकट संकट वारनी।
देवी अबोधहिँ बोधदायक सुमति श्रुत संचारनी।
अद्‌भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥

इसकी अन्तिम पंक्ति इसी रूप में इक्कीस छन्दों तक चली गई है। मान ने अपने वर्णन में स्थान स्थान पर वस्तुओं की सूची गिनाई है। किन्तु विशेषता यह है कि कुछ विशेषण जोड़कर कवि ने रोचकता लाने का प्रयत्न किया है। पुस्तक में अनेक प्रकार के मेवे, भोजन के प्रकार, हाथी, वस्त्र विष्णु नाम आदि की सूचियां उपलब्ध हैं। घोड़ों की, इस प्रकार की एक सूची नीचे दी जाती है:—

एराकिय आरबि अरव उतंग। कछो कस्मीर कंबोज कलिंग।
बंगालिय कोकनि सिंधवि थाज। पयं पथ बायु पथे पँखराज ॥

वि० १६—१७

हाथी की सुन्दरता तथा सजावट का वर्णन करते हुए कवि ने सिंदूर तथा तेल लगाने का उल्लेख किया है। साधारणतः हाथी की सजावट में सिन्दूर का ही वर्णन मिलता है तेल का नहीं। किन्तु हाथी के मस्तक पर तेल पोतने की प्रथा है। इससे प्रतीत होता है कि कवि को निरीक्षण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी इन सम्बन्ध का पद नीचे दिया जाता है:—

"सुभे शिर तेल सुरङ्ग सिंदूर। बहै विरुदावलि बंक बिरूर ॥
वि० १७—११

एक स्थान पर कवि ने लिखा है:—

सोभन्त चौर सिन्दूर शीश। रस रङ्ग चग अति भरिय रीस ॥
सो भाल घटा मनु मेघ श्याम। ठनकन्त घंट तिन कण्ठ ठाम ॥
वि० ६—५

इसमें कवि ने एक व्यवहारिक भूल की है। हाथी के दोनों ओर घण्टे बाँधे जाते हैं न कि गले में। यद्यपि कवि युद्ध वर्णन में सफल नहीं हुआ है, किन्तु कहीं कहीं वर्णन आकर्षक हुआ है:—

दुहुँ ओर दुवाह दुहाइ बदै। अप अप्पन साँई चहंत उदै ॥
करि ताक सँभारि सँभारि कहे। बरसें घनज्यों बहु बान बहें ॥
कर कुंत कटारि सकत्ति धरै। फरसी हर हुल्ल गुपत्ति फुरैं ॥
गज मुग्गर नेज गुरज्ज बजै। गगनांगन गौर अवाब गजै ॥
धर धु धरि सोर सुरत्त धखें। जहँ अप्पन आन न कोई लखें ॥
तजि साहस संकुर सांइ तजे। भय पायरु कायर जात भजे ॥
घन घोष ज्यों बागल सिंधु घुरे। सहनाइ सुभेरि गंभीर सुरें ॥
कुननन्त किते कलि कूह करें। रिन जोर हहिल्लनि रुड ररें ॥
वि० १६-१५-१८

यह वर्णन पढने से प्रतीत होता है कि कवि मे वीर-रस वर्णन करने की शक्ति है, किन्तु अनुप्रास तथा ओज-प्रदर्शन की भावना के कारण रस का विकास नहीं होने पाया। मान ने वीरत्व प्रदर्शन के लिए "मोछों पर बल देना" आवश्यक माना है।

"मुररन्न मुछ मयमत्त मनु, केइ तोव कंधे वहय"।
वि० ६—८९

अष्टय विलास मे मान के 'राजसमुद्रतालाव' तथा विष्णु-मदिर का वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर किया है।

कवि ने राजसिंह का चित्रण अच्छा किया है। अकाल पड़ने पर 'राज समुद्र' के बाध का काम आरम्भ करना तथा प्रजा की सहायता करना, इसकी दीन-वत्सलता का परिचायक है।

अन्तिम विलास मे राजसिंह के पुन जयसिंह के सामने सरदारों द्वारा की हुई प्रार्थनाओं का वर्णन अत्यन्त आकर्षक है।

भाषा — राजविलास की भाषा ब्रज है। इसमें राजस्थानी के कतिपय रूप देखकर कुछ लोग भ्रम मे पड़ गये हैं। किन्तु सज्ञा-शब्द, कारकों के रूप तथा क्रियायें ब्रज-भाषा की ही होने के कारण इसकी भाषा ब्रज होने मे सन्देह नहीं।

मान ने अपनी रचना मे ओजस्विता बढाने के लिए बहुत से छन्दों में कृतिम डिङ्गल भाषा का प्रयोग किया है:—

के। अडुल्ल हर बल्ल को सु करवल्ल अठित्तह।
किं गज दल्ल मझिल्ल भूप छात्तल्ल छयल्लह।
दुज्जन कोन दुहिल्ल कहा कोतिल्ल रु मिल्लह।
किं सु किथ बनि निल्ल नेत किं पित्त सुल्लल्लह॥

शादुल्ल मल्ल एकल्ल से टए भल्लजे पल्ल जिन।
रावत मन महसिंघ सुप रहे न के आसुर सुरित।।

वि० १३—२४

इसमें डुलना, हरावल, ढलना, मझला, भला, अकेला इत्यादि के डुल्ल, हरवल्ल, ढल्ल, मझल्ल, भल्ल, एकल्ल आदि कृत्रिम डिंगल के रूप रखे गए हैं। यद्यपि इसमें से कुछ रूप अपभ्रंश में भी आ जाते हैं किन्तु इस छन्द में कृत्रिमता ही प्रधान है।

इन्होंने 'सु' का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है, यहाँ तक कि नाम के बीच भी 'सु' लगा दिया है।

"माधव सुसिंह चोंडा मरद कन्हा मगनाउत सुकर"

वि० १८—३०

भाषा को अनुप्रासमय तथा ओजयुक्त बनाने में कहीं कहीं भाव भी भ्रष्ट हो गये हैं। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि राज-विलास हिन्दी साहित्य की एक उत्कृष्ट रचना है। इसके पढ़ने से कवि का गम्भीर पांडित्य तथा भाषण-प्रभुत्व प्रगट होता है। इनके विस्तृत शब्द भंडार का ज्ञान प्रथम दो विलास पढ़ने से ही हो जाता है।

———

राजविलास

राणा श्रीराजसिंह की दिग्विजय यात्रा

कवित्त

चढ़े सेन चतुरंग राण रवि सम राजेसर।
मनो महोदधि पूर वारि चहु ओर सुविस्तर।
गय वर गुंजत गुहिर अंग अभिनव एरावत।
हय वर घन होसन्त धर्रनि खुरतार धसक्कत॥
सल सलिय सेस दल भार सिर, कमठ पीठि उठि कल कलिय।
हल हलिय असुर घर परि हलक, रबांनि सहित रिपु रलतलिय॥

छंद पद्धरिय

सम्वत प्रसिद्ध दह सत्तभास। बत्सर सु पच दस जिट्ठ मास।
सजि सेक राण श्री राज सींह। असुरेश धरा सजन अबीह।
निर्घोष घुरिय नीसान नद्द। सहनाई भेरि जगी सु सद्द।
अति बदन बदन बट्टी अवाज। सब मिले भूप सजि अप्प साज।
किय सेन अग्ग करि सेल काय। पिखन्त रूप पर दल पुलाय।
गुजंत मधुप मद झरत गच्छ। चरघी चलन्त तिन अग्ग पच्छ।
सोभन्त चौर सिन्दूर शीश। रस रंग चंग अति भरिय रीस।
सो झाल घटा मनु मेघ श्याम। ठनकन्त घट तिन कठ ठाम।
उनमत्त करत अग्गाग्ग्ग् अग्राज। बहु वेग जान पावे न बाज।
दलकन्त पुट्ठि उज्जलस ढाल। बर बिविध वर्ण नेजा बिसाल।
बोलन्त चलत बन्दी बिरद्द। दीपन्त धवल रुचि शुचि बिरद्द।
गुरु गाढ गेंद गिरिवर गुमान। पढ़ि धत्त धत्त मुख पीलवान।

एराक आरबी अश्व ऐन। सोभन्त श्रवन सुन्दर सुनैन।
काश्मीर देश काबोज कच्छि। पय पन्थ पौन पथ रूप लच्छि।
बंगाल जात से बाजिराज। काविल सु केक हय भूप काज।
खंधार उतन केहि खुरासान। वपु ऊँच तेज बर बिबिध बान।
हय हींस करत के जाति हंस। कविले मुकि हाडे मोर वंस।
किरडीए खुरहडे वेसु रत्त। पीलडे नेकली लेप चित्त।
चंचल सुवेग रहवाल चाल। थेइ थेइ तान नचन्त थाल।
गुन्थिय सुजान कर केस बाल। बनि कंध वक्र सोभा बिसाल।
साकति सुवर्ण साजे समुख। लीने सु सत्थ हय एक लख।
रवि रथ तुरंग सम ले सरूप। भिन बिपुल पुठि तिन चढे भूप।
पयदल सु सज्जि पोरष प्रधान। जंघालु जंग जीतन जवॉन।
भट विकट भीम भारत भुजाल। साधर्म्मि सूर निज शत्रु साल।
निलवट सनूर रत्ते सु नैंन। गय थाट घाट अप घट गिनैन।
धमकंति धरनि चल्लत धमक्क। धर हरत कोट निजसबर धक्क।
नकी सु पाघ वर भृकुटि वक्क। निर्भय निरोग नाहर निसंक।
शिर टोप सज्जि तनु त्रान सच। प्रगटे सु बधि हथियार पंच।
कटि कसे कटारी अरु कृपान। बंदूक ढाल कोदंड बान।
कमनीय कुंत कर तोन पुठि। भारत शद्द सुनि सबल मुट्ठि।
गल्हार करत गज्जत गैन। बोलत बंदि बहु विरुद बैन।
मुररत मुछ्छ गुरु भरिय मान। गिनि कोन कहै पायक सु गान।
बहु भूप थट्ट दल मध्य बीर। सुरपति समान शोभा सरीर।
श्री राजसिंह राणा सरूप। गजराज ढाल आसन अनूप।
शीशे सु छत्र बाजत सार। चामर ढलत उजल स चारु।
घन सजल सरिस दल घाघरट्ट। भाषत विरुद बर बन्दि भट्ट।
कालंकि राय केदार कत्थ। अस कत्ति राय यप्पत समच्छ।
हिन्दू सु राय राखन सुहद्द। मुगलॉन राय मोरन मरद्द।

कविलान राय कट्टन सु कन्द । दुतियत राय हिन्दू दिनंद ।
अरि विकट राय जाडा उपाड । नलनन्त राय वैरी बिभाड ।
अन पुट्ठि राय पुट्ठिय पलांन । भल हलत रूप मध्यान भान ।
रायाधिराय राजेश रान । जगतेश नन्द जय जय सुजान ।
वानीनि चरन खुरतार बग्ग । मह अनड कट्टि कोजत मग्ग ।
झलझलिय उदधि सलसलिय सेस । कलकलिय पिट्ठि कच्छप असेस ।
रनथान सजल जलथान रेनु । धुन्धरिग भान रज चढि गगेनु ।
अति देश देश सु बढी अवाज । नट्ट सु यवन करते निवाज ।
हलहलिय असुर घर परि हलक्क । थलभलिय नैर पर पुर थलक्क ।
थरहरें दुर्ग मेवास थान । रचि सैन सबल राजेश रान ।
सुलतान मान मची सरक । बलवत हिन्दुपति वीर बक ।
आयौ सुलेन अवनी अभग । आलम सु भयौ सुनि गात भग ।

कवित्त

ऊचलि गयो अगगरो दद मच्यौ अति दिल्लिय ।
हानीपुर परि हक्क डहकि लाहौर सु डुल्लिय ।
थरस लयौ रिनथम्भ धसकि अनमेर सु धुल्लिय ।
सुनौ भयौ सिरौंन भगग भै लसा सु भज्जिय ।
अहमदाबाद उज्जैनि जन थाल मृग ज्यो थरहरिय ।
राजेस राण सु पयान सुनि पिशुन नगर खरभर परिय ।

छद मकुन्द डामर

चतुरग चमू सजि सिधुर चचल बक निरुद्दरु दान बहैं ।
अवधूत अनेन तुरग उतगह रगहि जे रिपु कट्टि रहैं ।
अवगाढ सु आयुध सुद्ध अनीत सु पायक सत्य लिए प्रचुर ।
चित्रकोट धनी सजि राजसी राण सु मारि उजारिय मालपुर ।

अति वट्टि अवाज भगी दिसि उत्तर पथ पुरपुर रौरि परी।
त्रह कत सु त्रयक नूर नह त्रह पंग महा पिति बजि पुरी।
उडि अम्बर रेनु बहूदल उम्मडि सोषि नदी दह मग्ग सर।
चित्र कोट धनी चढि राजसी राण यु मारि उजारिय माल पुर।
करते बहु कूच मुकाम क्रम क्रमि पत्त सु नागर चाल पहू।
भहराय भगे घर लोक महा भय सुन भये अरि नैरस हू।
असुरेश कै गेह सुवट्टि उदगल डुल्लिय दिल्लिय सन्नि डर।
चित्र कोट धनी चढि राज सी राण यु मारि उजारिय मालपुर।
दल विट्टिय माल पुरा सु चहौं दिसि उपम चदन जान अही।
तहँ कीन मुवाम धुरत सु त्रवक सोच परयो सुलतान सही।
नर नाथ रहे तह सत्त अहो निसि सोवन मारस धीर घर।
चित्रकोट धनी चढि राज सी राण यु मारि उजारिय माल पुर।
धक धूनिय घास सु कोट धकाइय गौपुर पौरि गिराइ दिए।
टम ढेर करी हट अग्गि दुदारिय फकर ककर दूर किये।
पतिसाह सुदज्झन नैर प्रजारिय अत्तर पावक झार अर।
चित्र कोट धनी चढि राज सी राण यु मारि उजारिय माल पुर।
तहा श्रीफर पुगिय लौंग तमारह हिंगुल केसरि जायफल।
घन सार मृगमद लीलि अफीमि अँबार जरन्त सु झारफल।
उडि अग्गि दमग्ग सु दिल्लिय उप्पर जाय परैं सु डरे असुर।
चित्रकोट धनी चढि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुर।

जब याद भयौ गिरि मेरु जितौ हरपे सुर आसुर नूर हरं।
चित्र कोट धनी चढ़ि राज सौ राण सु मारि उजारिय माल पुरं ॥
निज जीति धरी रिपु गाढ़ नगाइय आए देत निसान खरे।
पयसार सु कीन सिंगारि उदयपुर आइ अनेक उछाह करे॥
कवि मान दिए हय हत्थिय कचन बुद्धिय जानि कि वारि धरं।
चित्र कोट धनी चढ़ि राजसी राणा सु मारि उजारिय मालपुरं॥

[पष्टम विलास से]

नौन वारा युद्ध वर्णन

दोहा

अगज साहि औरंग को, अकबर साहि अमान।
धम्या पहारनि मध्य धर, रिन जित्तन महारान ॥
वार्जी सह बत्तीस सों, नर वे केद नवाब।
नारि गोर आराब गुर, सजि दल चढ़यौ सिताब।
हरवल अल्लि हुसेन हुअ, पक्को पच हजार।
कलह कूर ककाल कर, रढ छुडे नन रारि।
झंड रुप्पि भारोल थल, द्वादश कोश प्रमान।
नेनवारा गिरिवर प्रकट, सुभट थट्ट महाराण।
निसु निबत्त हिन्दू नृपति, सामन्तनि सनमान।
पठये आसुरि सेन पर, जगहि भीपम जान ॥

कवित्त

तिनहि बर तुरन्त, वीर विफुरत पिव
तरित जानि तटकत, विमल कलिकंत वर्ष...।
महा सिन्ध मुंछाल राज, रक्खन वड़ रावत।
रतन सीह गुरु रोस चडे रावत चोंडावत ॥

चहुँवान राव पुनि सजि, चढे केसरि सिंह सुकक बर।
नयबेनि सलित ज्यों सेन तिहु उलटि जग असुरान पर।

वीर वैर निहुरिय, भीर उम्भरिय रोस भर।
सिन्धु राग सभरिय घोम धुन्धरिय व्योम धर।
साई नाम सभरिय सद्द सधरिय सुनवक।
धक दक धम चक उदरि आसुर झक उम्भूझक।

मुण्डाल काल लकाल सम झड झड देते झपट।
रावत्त राण राजेश के लाह छोह पावक लपट।

दुट्टह रुट्ठ दमुट्ठ भुट्ट आरूढ जुझारह।
मडि मार टक चार बजि वैरिन शिर सारह॥
बरसि बान टुरि भान रेनु नभ उञ्भिर डबर।
फल फल मचि मचि यूह जहँ करिलान उभभर।

ताबा करत हहरत हिय धूक भति रन बन धुसत।
रावत्त मत्त, महसिंघ मुरा शत्रु सेन न धरत सत॥

छंद गीता मालती

घघमसिय धर गिर शिहर उद्धसि वीर गुर गस उम्भरे।
कलकलिय परि मचि यूह कलकल भलल बिज्जुल उग्घरे।
झटझटिय बजि रिन शाक झरझट जिघट घन घट तुच्छय।
महसिंघ धक उत्तम रावत वैरि करन बिमत्थय॥
सलसलिय पनधर सधर सकर कध कच्छप कसमसे।
भल भलिय जलनिधि सलिल थल जल अनल विनल सु उद्धसे।
डर बिहर दिशि दिशि विदिशि डबर यहड भफर पित्थह।
मह सिंघ रक उमत्त रावत वैरि करन निमत्थय।
चढि चाक चहु चक उभक हकबक हैल मद छक छुट्टय।
किलकत मत्त हसत कलरव जग जह तह जुट्टय।

मचि मार मार यस्त मुष मुष छुम्यो नट इव कत्थय।
महसिंघ वंक उमत्त रावत वैरि करन विभत्थय॥

पनक्त पग्ग उनग्ग, पग्गन भनकि नानि कि झल्लरी।
भनक्त भेरि नफेरि तुल्लल तूर नक्क दुरवरी।
गावत सिन्धु राग गोरिय पिशुन पारिन पत्थय।
महसिंघ वंक उमत्त रावत वैरि करन विभत्थय।
कटि कन्ध अन्ध कमन्ध आसुर वीर नचत बावरे।
भटक्त दिसि दिसि धाइ पग भट उझट सझ उतावरे।
सलहत सूर सनूर साहस मीर मीरन समिले।
रघु चोंड हर गुरु रतन रावत रिनहि रिपुदल रलतले।
विवि पह घड विहड बाहू मिथि मत्थय सभिरे।
लखि लोह छोर सुरत्त लोयन वीर रस वर विस्तरे।
घट निघट धाट निघाट धाइय घुरिय घन घन घुम्घले।
रघु चोंड हर गुरु रतन रावत रिनहि रिपुदल रलतले।
भमकत इम्भ भसुरड तुडनि प्रचलि श्रोन प्रनालय।
ढरि ढाल लाल सुपीत नेजा ढग मिलि ढकचालय।
घूमत असि छक विछक घाइल टुट्टि खप्पर टल टले।
रघु चोंड हर गुरु रतन रावत रिनहि रिपुदल रलतले।
लटकत किहि शिर पीठि लडलट तदपि घट घट ना घटें।
असि कक वक उभारि अवर फिरत टट्टर के फटें।
उड्डि छिछ्छि श्रोन सनोर समुह चोल चचर सचले।
रघु चोंड हर गुरु रतन रावत रिनहि रिपु दल रलतले।
पय भरत रोपत कुँत धर पर लरत परत न लरथरें।
जनु जनमि घर इक जय जनपद सूर सूरन सहरें॥
रिण मिलित रोर सुयवन रजवट गलित गज थट गजगले।
रघु चोंड हर गुरु रतन रावत रिनहि रिपु दल रलतल।

तुटि मिलह टोप मुत्रान तुरकनि तेक तुबक तुरङ्गमा।
घज नेज तोरि झझोरि झडनि झाक वज्जि झमझमा।
गटकन्त युग्गिनि रूहिर गट गट दवट दह बट दुज्जना।
केसरी सिघ सुकक गहि करि राव भल सज्यो रिना।
गह गद्दिय पग गोमाय गिद्धिनि, झुन्ड रुन्डनि झरफरे।
कुननत अत फुरत फेफर तग भग सुतर फरे।
धावत शूल तुरङ्ग सिन्धुर तोरि श्रृखल बँधना।
केसरी सिघ सुकक गहि करि रॉव भल सज्यो रिना।
हर अट्टहास प्रहास प्रमुदित कमल गल माला गठे।
बताल वपु विकराल व्यतर बीर बप बप करि उठे।
नच्चन्त नारद तान नव नव बीर बरत बरागना।
केसरी सिह सुकक गहि करि राव भल सज्यो रिना।
लगि जेठ लुत्थि अलुत्थि लुत्थिन आन अप्पन को लपे।
परि दति पन्ति पवग पाइल धप घर धरनी धुपे।
लुट्टत हेम सुरूप लुन्थिय करि तुरगम कूदना।
केसरी सिघ सुकक गहि करि राव भल सज्यो रिना।
दग सेन दह दिसि भर अचल सो अचल दल कल कदले।
भरहरिय अल्लि हुसेन तग्गिय साहिजादा सपुले।
जय पत्त जगहि राय रावत बोल रक्खे बहु गुना।
केसरी सिघ सुकक गहि करि राव भल सज्या रिना।

कवित्त

को अतुल्ल हरवल्ल का सु करवल्ल अठित्तह।
किगज दल्ल मझिल्ल भूप छातल्ल छयल्लह।
दुज्जन कोन ढहिल्ल कहा कोतिल्ल क सिल्लह।
कि मु किञ्च वनि निल्ल नेत कि पित्त मुलल्लह।

सादुल्ल मल्ल एकल्ल से हुए मल्ल जे पल्ल जिन।
रीदस मत्त महसिंघ सुघ रहे न को आसुर सुरित।
रावत चढ़ि रतनेश असुर दल कट्टि अपारह।
रर यरि रंक करंक भूमि बललिय भर भारह।
सार धार झकझार अंधि पिख्यो उद्दम अति।
हर व ल अल्लि हुसेन भगो सुन बर्लहि रन मति।
भय पाइ साहि दल सब भुगो, भगो साहिजादा डरत।
पय गिरत परत लरथरत पथ, धावत पल धीर न धरत।

दोहा

तजि पहार भग्गो तुरक, गिरत परत उरझंत।
घाट घाट घन घट घटतु, हिय सुहारि हहरंत।
फागुन मास सुफरहरत, तनु थरहरत सुशीत।
सब निशि कोश पचीस लों, भग्गो रिपु भयभीत।
आए साहि हुजूर सब, कटे बड़े कदुप।
कहि उद्दंत आलम कविल, इहिं रहना न अनूप।
जोरावर हिन्दू जुरे, झुंड झुंड रहे झूमि।
जैस भूमि के भूमिपति, अप्पन सकल अभूमि।
ए पहार पति आदि के, रहे पहारनि रुक्कि।
लागत अपनो इहि लगे, थान थान मग थक्कि।
मारे पर्वत मध्य ए, फुनि जो करे प्रयास।
गहो धाइ चीत्तोर गढ़, महा अचल मेवास।

कवित्त

साहि सुवचन प्रमानि सकल दल साज बेग सजि।
कियो सुपत्यों कूंच तबल टंकार तूर बजि।

बढि अवाज वसुमती हलकि ज्यों जलधि हिलोरह।
उबट बट्ट गज थट्ट बधि, कठल चहु ओरह।
नरवै नवाब उमराव बहु पर अप्पन समुझि न परत।
चित्रकोट जाइ वेगें चढ्यो, अति दिल अदर आदरत।

दोहा

पच्छा भय धरि दिल्लिपति, पुल्यो कोस पचास।
गह्यो जाइ नीतार गट, उपजी जीवन श्रास।

[त्रयोदश विलास से]

बधनौर-नरेश साँवल द्वारा मुगल सेना का विध्वंस वर्णन

दोहा

बकागढ बधनोर पति, सावल दास सकाज।
केतुनध कमधज्ज कुल, मेरतिया महराज।
भगति जोर तिनको भई, चकेश्वरि वरदाइ।
माता त्रिभुवन मडनी, साप्रति करन सहाइ।
तेग बँधाई देवि तिन, पाती देकरि प्रीति।
जहँ जहँ कीने जग जिन, तहँ तहँ भई सुजीति।

कवित्त

विरिट थान बधनोर परी सेना पतिसाहिय।
धुपटे धर बर धींग गहन गज तन, गिरि गाहिय।
हय मुह सुप्पर कंध रत्त हग मुछ रोम विनु।
भारपंच भुज सुमर भार भंजन रु भार तनु।
खिन नाम रुहिल्ला नर भलन तजै न को पशुपति पल।
जहँ तहँ पराव जल उदधि ज्यों उद्दम गति औरंग दल।

दोहा

नायक सब रुहिलानि में, नाम रुहिल्ला खान।
लबी तेग लिए रहै, आतुर जग अमान।
द्वादस सहस तुरंग दल, नेजा वध नवाब।
मदिरा मत्त मुरव मुंह, जिह तिह देत न ज्वाब।
चिटि रह्यो दल बल निकट, बसुमनि किय विपरीति।
पारि प्रसाद प्रजारि गृह, अति ही मडि अनीति।

कवित्त

सुनि इह सांवल दास मरद मेरतिया महिपति।
खीजि खलनि पय करन थान उतपन अरिन थिति।
सजि सिताब हय गय, दुवाह सन्नाह सपक्खर।
कवच करी झकुरत कुत झलमलत सूर कर।
बजि बंब नगारनि घोष बहु बरन बरन धज नेज बनि।
चढ़ि चले फौज चहुँ फेर घन उदधि जानि उलट्यो अवनि।
खिति धरहरि हय खुरनि चरन गिरि पल्ल चुल्ल भय।
उभिय रेन भरि गेंन भानु भलरिय ताप खय।
चारन भट्ट सुचग रग बोलत जस रूपक।
सावल दास सनूर क्रूर कमधज कुलदीपक।
जय करहु जग घन हनि यवन आलम दल भंजहु अनम।
बैरिन बिनास किज्जै बसति त्रिपुरा दाहिन हत्थ तुम।
सभ सनै लहि सच प्रबल रतियाह बिहारिय।
खान पान खल दल बिलग्गि दोपक अधिकारिय।
तबहिं तरित ज्यों त्रटकि परे पति साह सेन पर।
गाहत दाहत हनत भनत मुख मार मार भर।

रलतलिय रूहिल्लनि परि रवरि दहकि बहकि धकि परि दहल।
तजि खान पान भग्गे तुरक कल कल कदल मचि कविल।

छन्द त्रोटक

हय चंचल सावल दास चढ़े। कर गैंन उभारिय खग्ग कढे।
जुरि जोध विजोध बजे जरके। कटि टोप कटक्कि करी करके।
घिरि ककनि कक सुधार घिरें। झनझत कृपान कृसानु झरें।
मचि कदल मीर गंभीर कटें। खननकति बजति खग्ग झटें।
तुटि सिप्पर खुप्पर लोनि इटें। फिरे शेद विकेद है शीश फटें।
छिलि लोह पठान सुछाक छकें। जल आतुर बारिहि बारि बकें।
दुहुं ओर दुबाह दुहाइ बदै। अप अप्पन साईं चहत उदै।
करि ताक संभारिं सभारि कहें। बरसें घन ज्यों बहु बान वहें।
कर कुंत कटारि सकत्ति धरै। फरसी हर हुल्ल गुपत्ति फुरै।
गजमुग्गर नेज गुरुज्ज बजै। गगनागन गोर श राब गजै।
धर धुंधरि सोन सुरत्त धखें। जहँ अप्पन आन न कोइ लखें।
तजि साहस सक्कुर साह तजे। भय पाय रु कायर जात भजे।
घन चौप त्रंबागल सिंधु घुरे। सहनाइ सुमेरि गभीर सुरें।
कुननंत किते कलि कूह करें। रिन जोरि रुहिल्लनि रूड रुरें।
भय रूकिनि टूकनि तेइ रमी। निकरें; दुहुं'लोइन ग्रीव नमी।
हबसी मिलि आपस मैंइ हने। अंधियारि निसा नन सुद्धि गनें।
नर आसुर केक कमध नच्चें। सिर भूमि अटट्टहास सचें।
हय हरिय बिना असवार फिरें। धन पक्खर भार|सुढार ढ़रें।
उड़ि श्रोनित छिछि अयास तटें।
पय कोकम ज्यों पिचकारि छुटें।
गवरीपति 'अंबुज माल गठें।
सब धेक हँकारि बेकारि उठें।

गुरु गिद्धिनि तुंडनि मुंड गहैं।
झरफें गगनागन झुंड बहैं।
रत लै युगिनी जल ज्यों अचवैं।
चवसट्ठि जय जय सद्द चवैं।
धज्ज नेज झझोरिय जोरि घनं।
टक चार ढढोरिय ढान घनं।

कमधज्ज महा बलि जैति वगी भय मनि रूहिल्लनि फौज भगी।
तजि थानहि तनु तुपार तई। रथ कंचन बारून बस्तु नई।
निशि ही निशि भागि हैरान भए। गति हीन ह्वै साहि के पास गए।

दोहा

इहिं पार थान उत्थप्पि के, रक्ख्यो जस रट्ठौर।
स्वामिधर्म पन सच्चयो, सकल सूर सिरमौर।

[षोडश विलास से]

भूषण

हिन्दी-काव्य का इतिहास अपने कई युग पार कर चुका है। धीरे धीरे उसका पुरातन साहित्य भी पहले की अपेक्षा अब अधिक सुलभ होता जा रहा है। हिन्दी-भाषा और उसके साहित्य के मर्मदर्शी पाठक की अगली पीढी के लिए यह बात बड़े गौरव की तो होगी ही, साथ ही बड़े संतोष की भी होगी। परन्तु इस क्षेत्र में सब से बड़ी कमी अभी तक चली ही जारही है। और वह यह कि हमारे अनेक प्राचीन कवियों के जीवन, जन्मभूमि, जन्मतिथि, रचना-काल आदि का यथार्थ पता अब तक नहीं चल पाया है। प्राचीन वीर-काव्य के अमर कवि भूषण के भी सम्बन्ध में यही बात है। किंवदन्तियों, प्रामाणिकअनुसन्धानों तथा विश्वस्त-सूत्रों से इस सम्बन्ध में जो कुछ सामग्री उपलब्ध हो सकी है, उसका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है।

भूषण का असली नाम

भूषण कवि को हृदयराम ने 'भूषण' की उपाधि दी थी, अतः यह कवि का उपनाम है, जैसा कि इस दोहे से प्रकट है :—

कुल सुलंक चित्रकूट पति, साहस सील समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई, हृदयराम सुतरुद्र॥

शि० भू०—२८

जब 'भूषण' कवि का असली नाम नहीं है तब यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि कवि का मूल नाम क्या है?' इसके बारे में कुछ प्रयत्न भी किया गया है। किसी ने मतिराम के वज़न पर

इनका नाम 'पतिराम' ठहराया तो किसी ने 'द्विज कनौज कुल कश्यपी का सहारा लेकर कनौज' ही नाम निश्चित करने का प्रयत्न किया। कुछ लोगों की सम्मति है कि कवि का नाम 'भूषण' ही था। परन्तु ये सब अनुमान हैं और खींचतान कर लाये गये हैं। इनके लिए कोई प्रमाण नहीं।

प० बदरीदत्त जी पांडेय ने अपने कुमाऊँ के इतिहास पृष्ट ३०३ पर निम्नलिखित उल्लेख किया है :—

"कहते हैं सतारागढ़नरेश शाहू महाराज के राज-कवि मनिराम राजा (उद्योतचन्द्र) के पास अलमोड़ा आये थे। उन्होंने राजा की प्रशंसा में यह कवित्त बनाकर सुनाया था। राजा ने दस हज़ार रुपया और एक हाथी इनाम में दिया।"

यह छन्द इस प्रकार है:—

पूरन पुरुष के परम दृग दोऊ जानि,
कहत पुरान वेद बानि जोरि रढ़ि गई।
..........दिनपति यों निशापति जो,
दुहुँन की कीरति दिशानि मांझि मढ़ि गई।
रवि के करन भये एक महादानि यह,
जानिजिय आनि चिंता चिरा मांझ चढ़ि गई।
ताहि राज बैठत कुमाऊँ श्री 'उद्दोतचन्द्र'
चन्द्रमा की फरक करेजे हूँ ते कढ़ि गई॥

यही छन्द शिवसिंह सरोज के पृ० २३० (प्रथम संस्करण) पर मतिराम के नाम से दिया हुआ है।

कुमाऊँ इतिहास में यह छन्द बहुत विकृत रूप में दिया गया है। यहाँ हमने 'सरोज' का ही रूप लिया गया है। इतिहास वाले छन्द की दूसरी पक्ति में कई अक्षर न्यून हैं। अन्य पंक्तियों में भी यह न्यूनाधि-

कता दिखलाई देती है। अतः सरोज का छन्द निर्विवाद रूप से अधिक शुद्ध है। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि सरोज में वह छन्द मतिराम के नाम से दिया हुआ है। परन्तु कुमाऊँ के इतिहास में इसे 'मनिराम' के नाम पर कहा गया है और पत्र में कवि का नाम कुछ अन्य ही दरशाया गया है जो छन्द में व्यक्त नहीं है। इस सम्बन्ध में पं० कृष्ण बिहारी जी मिश्र तथा पं० बदरीदत्त जी पांडेय के बीच पत्र व्यवहार चला था। सम्भवतः उसी के परिणाम स्वरूप पांडेय जी भ्रम में पड़ गये हों। फिर भी उस विवरण में कुछ संकेत ऐसे जान पड़ते हैं जिनसे यथार्थ तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित हो सकता है। भूषण की मृत्यु के पश्चात् उनके बहुत से कवित्त दूसरों के नाम चढ़ा दिये गये थे।

उदाहरण के लिये यह छन्द लीजिये :—

> शुण्डन समेत काटि बिहद मतगन को,
> रुधिर सौं रंग रण-मण्डल में भरिगौ।
> भूषण भनत तहाँ भूप भगवन्तराय,
> पारथ समान महाभारत सौ करिगौ॥
> मारै देखि मुगल तुरावखान ताही समै,
> काहू अस न जानी मानौ नर सौ उचरिगौ।
> बाजीगर कैसी दगाबाजी करि बाजि चढ़ि
> हाथी हाथा हाथी तें महादति उतरिगौ।

(ना० प्र० पत्रिका भाग ६ अंक १)

इस छन्द को किसी ने सारंग के नाम से कर दिया है और शिवसिंह सेंगर ने इसे अपने सरोज में इसी नाम से प्रकाशित किया है। परन्तु अन्वेषण से यह भावना नितान्त अशुद्ध प्रमाणित हुई है।

(भूषण विमर्श पृष्ठ १११-११६)

इसी प्रकार भूषण का कुमाऊँ वाला छन्द मतिराम के नाम पर बना दिया गया है। इस विचार के लिये हमें कुमाऊँ की ओर चलना चाहिये। यह बात सब हिन्दी के विद्वान और इतिहास स्वीकार करते हैं कि मतिराम कुमाऊँ-नरेश के दरबारी कवि थे। उन्होंने अलकार-पचाशिका ग्रन्थ उद्योतचन्द्र के पुत्र राजकुमार ज्ञान-चन्द्र के लिये ही बनाया था। भूषण उसके पश्चात् कुमाऊँ दरबार में भ्रमण करते हुए पहुंचे थे। उनके बनाये हुए कुछ छन्द उद्योतचन्द्र की प्रशसा में मिलते हैं। ये एक राष्ट्रीय-सन्देश लेकर गये थे। उस समय उन्होंने एक छन्द रचकर सुनाया था। जिसपर उन्हें दस हजार रुपए और एक हाथी पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया गया था। परन्तु इस पुरस्कार में अभिमान की मात्रा सम्मिलित होने से भूषण उसे त्याग कर चल दिए थे। और कहा था "मैं यह देखने आया था कि शिवाजी का यश यहां तक पहुँचा या नहीं। अर्थात उनके अनुकरण पर यहाँ कार्य होता है या नहीं।"

इस किंवदन्ती के आधार पर यह धारणा पुष्ट होती है कि कवि मतिराम के स्थान पर "भूषण भनत" पद होगा। फतहशाह की प्रशसा में भी कवि का नाम इसी रूप में आया है। इस पर भी बदरी-दत्त पाडेय ने यह लिखा है कि मतिराम, सितारागढ नरेश साहू के दरबारी कवि, उद्योतचन्द्र के यहा आये। उनको उक्त एक ही कवित्त पर इतना भारी पुरस्कार मिला था। इससे स्पष्ट है कि वह कवि मतिराम कदापि न था, क्योंकि मतिराम तो स्थायी रूप से दरबारी कवि थे। उनके विषय में यह किंवदन्ती तथा घटना हो ही नहीं सकती। उस पर यह भी निश्चित है कि सितारागढ नरेश साहू महाराज के दरबार में भूषण को छोड़कर अन्य कोई हिन्दी कवि नहीं पहुँचा। राजकवि होना तो दूर की बात ठहरी। अतः वह कवि जो कुमाऊँ नरेश के दरबार में गया, भूषण ही होना चाहिए।

मतिराम के फुटकर छन्द बहुत थोड़े मिलते हैं। दो एक को छोड़कर अधिक नहीं पाये जाते। उनके किसी ग्रन्थ में यह छन्द नहीं पाया जाता। अन्य प्रमाण भी इसी ओर सकेत करते हैं, अतः अधिक सम्भावना यही है कि उक्त छन्द भूषण का होने से "मनिराम" भूषण का असली नाम है।

छन्द की रचना-शैली और शब्द-विन्यास पर ध्यान देने से भी इसी बात की पुष्टि होती है। भूषण वैदिक-संस्कृति तथा भावना के पक्षपाती थे। साथ ही ऐतिहासिक-विवेचन-पद्धति भी उनकी रचना की एक विशेषता थी। इसी प्रकार पौराणिक विचारों को भी वे सदैव नवीन रूप में ही उपस्थित किया करते थे। इन सब बातों का आभास उनकी कविता में मिलता है और वह इस छन्द में भी स्पष्ट रूप से झलक रहा है। यत्र तत्र उसमें श्लेष और अन्योक्ति का पुट भी मिला रहता है और वह आपको यहा भी दिखलाई देगा।

यहा पर तुलना के लिए फतह-प्रकाश से भूषण कृत छन्द उद्धृत है, जो श्रीनगर-नरेश फतहशाह की प्रशंसा में ऊपर लिखे छन्द के कुछ समय बाद ही रचा गया है। महाकवि भूषण कुमाऊँ से प्र कर श्रीनगर (गढवाल) के दरबार मे गये थे। ॥

यह छन्द यह है :—

देवना को पति नीको पतिनो शिवा को हर,
श्रीपति न तीरथ विरथ उर
परम धाम को है सेइवो न प्रत नेम
भोग को संजोग त्रिभुवन जोग
'भूषन' कहा भगति न कनक मनि
विपति कहा वियोग सोग न

सपति कहा मनेह न गध गाढ़िरो सुख,
वहँ निरखिबोई मुकुति न मानियो।

इन दोनों छन्दों पर विचार करने से विदित होता है कि दोनों में पौराणिक भावना एक सी ही है। इन्द्र और शिव की महत्ता बतलाते हुए तीर्थों का भ्रमण, व्रत, नेम आदि निरर्थक कहा गया है। इस छन्द के अन्तिम चरण में यह भी बतलाया गया है कि अगर गहरा प्रेम नहीं है, तो सम्पत्ति व्यर्थ की वस्तु है, केवल सुख ही मोक्ष नहीं है। इस छन्द में भी भूषण की वैदिक-भावना स्पष्ट झलक रही है। साथ ही उनका सकेत उद्योतचन्द के दिए दान को त्यागने की ओर भी है, जैसा कि किंवदन्ती रूप मे हिन्दी-जगत में प्रसिद्ध है। इस छन्द द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करना भी एक मुख्य कार्य बतलाया गया है। प्रथम छन्द की भाति इस छन्द में भी श्लेष का पुट स्पष्ट प्रतीत होता है। उक्त दोनों छन्दों की शैली, भावना और शब्द व्यञ्जना भी एक सी ही है। अतः उक्त प्रथम छन्द को भूषण कृत मानने मे हमें कुछ भी हिचकिचाहट न होनी चाहिये। ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि 'मनिराम' ही महाकवि भूषण का असली नाम है। और भूषण उनकी उपाधि है। ऐतिहासिक प्रमाण, किंवदन्ती रचना ये सब इस एक ही बात की साक्षी दे रहे हैं।

भूषण का जन्म-काल

भूषण के जन्म-काल पर हिन्दी संसार में घोर मतभेद है। किसी ने इनका जन्मकाल स० १६७२ वि०, तो किसी ने स० १६६२ वि० माना है। मिश्रबन्धु महोदय हिन्दी-नवरत्न तथा मिश्रबन्धु विनोद में इनका समय स० १६७२ वि० ही मानते हैं। परन्तु ठाकुर शिवसिंह सेंगर अपने "सरोज" मे चिन्तामणि का जन्म-समय स० १७२९ वि०

मतिराम के फुटकर छन्द बहुत थोड़े मिलते हैं। दो एक । छोड़कर अधिक नहीं पाये जाते। उनके किसी ग्रन्थ में यह छन्द ीं पाया जाता। अन्य प्रमाण भी इसी ओर सकेत करते हैं, अतः धिक सम्भावना यही है कि उक्त छन्द भूषण का होने से "मनिराम" पूषण का असली नाम है।

छन्द की रचना-शैली और शब्द-विन्यास पर ध्यान देने से भी सी बात की पुष्टि होती है। भूषण वैदिक-संस्कृति तथा भावना ; पक्षपाती थे। साथ ही ऐतिहासिक-विवेचन-पद्धति भी उनकी रचना की एक विशेषता थी। इसी प्रकार पौराणिक विचारों को भी वे सदैव नवीन रूप में ही उपस्थित किया करते थे। इन सब बातों का आभास उनकी कविता में मिलता है और यह इस छन्द में भी स्पष्ट रूप से झलक रहा है। यत्र तत्र उसमें श्लेष और अन्योक्ति का पुट भी मिला रहता है और वह आपको यहा भी दिखलाई देगा।

यहा पर तुलना के लिए फतह-प्रकाश से भूषण कृत छन्द उद्धृत है, जो श्रीनगर-नरेश फतहशाह की प्रशंसा में ऊपर लिखे छन्द के कुछ समय बाद ही रचा गया है। महाकवि भूषण कुमाऊँ से प्रस्थान कर श्रीनगर (गढवाल) के दरबार में गये थे।

वह छन्द यह है :—

देवता को पति नीको पतिनी शिवा को हर,
श्रीपति न तोरस विरष उर आनियो।
परम धरम को है सेइयो न व्रत नेम,
भोग को संजोग त्रिभुवन जोग मानियो।
'भूषन' कहा भगति न कनक मनि तातें,
विपति कहा वियोग सोग न बखानियो।

सपति कहा सनेह न गथ गाढ़िरो सुख,
कहूँ निरखिबोई सुकुति न मानियो।

इन दोनों छन्दों पर विचार करने से विदित होता है कि दोनों में पौराणिक भावना एक सी ही है। इन्द्र और शिव की महत्ता बतलाते हुए तीर्थों का भ्रमण, व्रत, नेम आदि निरर्थक कहा गया है। इस छन्द के अन्तिम चरण में यह भी बतलाया गया है कि अगर गहरा प्रेम नहीं है, तो सम्पत्ति व्यर्थ की वस्तु है; केवल सुख ही मोक्ष नहीं है। इस छन्द में भी भूषण की वैदिक भावना स्पष्ट झलक रही है। साथ ही उनका सफ्रेत उद्योतचन्द के दिए दान को त्यागने की ओर भी है, जैसा कि किंवदन्ती रूप में हिन्दी-जगत म प्रसिद्ध है। इस छन्द द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करना भी एक मुख्य कार्य बतलाया गया है। प्रथम छन्द की भाति इस छन्द में भी श्लेष का पुट स्पष्ट प्रतीत होता है। उक्त दोनों छन्दों की शैली, भावना और शब्द व्यञ्जना भी एक सी ही है। अत उक्त प्रथम छन्द को भूषण कृत मानने म हम कुछ भी हिचकिचाहट न होनी चाहिये। ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि 'मनिराम' ही महाकवि भूषण का असली नाम है। और भूषण उनकी उपाधि है। ऐतिहासिक प्रमाण, किंवदन्ती रचना ये सब इस एक ही बात की साक्षी दे रहे हैं।

भूषण का जन्म-काल

भूषण के जन्म-काल पर हिन्दी ससार में घोर मतभेद है। किसी ने इनका जन्मकाल स० १६७२ वि०, तो किसी ने स० १६६२ वि० माना है। मिश्रबन्धु महोदय हिन्दी-नवरत्न तथा मिश्रबन्धु विनोद में इनका समय स० १६७२ वि० ही मानते हैं। परन्तु ठाकुर शिवसिंह सेंगर अपने "सरोज" में चिन्तामणि का जन्म समय स० १७२९ वि०

और भूषण का जन्म-काल सं० १७३८ वि० लिखते हैं। काँथा (ठा० शिवसिंह सेंगर की जन्म-भूमि) तिकमापुर (भूषण का निवास स्थान) से १५–२० मील के ही अन्तर पर है। साहित्य के इतिहासों में उन्हें भूषण मतिराम सम्बन्धी अशुद्धियां बहुत खटकी थीं। इसका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने सरोज की भूमिका म किया हैं, वास्तव में शिवसिंह सरोज की रचना ही भूषण-मतिराम के जीवन चरित्र को संशोधित कर परिष्कृत रूप देने के लिये हुई है। इससे प्रतीत होता है कि सरोज में दिया गया भूषण तथा चिन्तामणि का यह जन्मकाल अन्य विद्वानों की अपेक्षा अधिक शुद्ध है।

साथही उनके कविता-काल, आश्रयदाता, उपाधिदाता तथा अन्य कार्यों तथा रचनाओं से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि भूषण का यह जन्मकाल नितान्त शुद्ध और ऐतिहासिक घटना चक्र के अनुरूप है। इसके लिये सर्वप्रथम इस बात पर विचार कर लेन अत्यन्त आवश्यक है कि भूषण तथा मतिराम में परस्पर क्या सम्बन्ध था।

भूषण और मतिराम

जनश्रुति और कुछ लेखकों के भ्रम के कारण भूषण तथा मतिराम सगे भाई माने जाते हैं। उनके समय आदि के बारे में भी गहरा मतभेद है। तजकिरए सर्व आजाद, यश भास्कर, शिवसिंह सरोज, मिश्र बन्धु विनोद, साहित्य का इतिहास आदि अनेक ग्रन्थों म यह भ्रम भरा हुआ है। अत भूषण मतिराम के निरूपण एव बन्धुत्व सम्बन्धी भ्रान्तियों पर विवेचनात्मक दृष्टि डालना युक्ति-युक्त प्रतीत होता है।

मतिराम के आश्रय-दाता तथा उनकी रचनाएँ

महाकवि मतिराम का समय रहीम काल से प्रारम्भ होता है।

है ... बरवै नायका

भेद पर लक्षण पाये जाते हैं। रहीम का शरीरान्त सवत् १६८४ वि० में हुआ था। उस समय उनकी अवस्था ७२ वर्ष की थी। "बरवै नायका भेद" यदि रहीम ने ४०—४५ वर्ष की अवस्था में भी लिखा हो, तो यह रचना सवत् १६५५ वि० के लगभग की ठहरती है। सम्भवत उसके ४—५ वर्ष के भीतर ही मतिराम ने उस पर लक्षण लिखे होंगे। अत उनकी यह प्रथम रचना स० १६६० वि० के आस पास होगी। यदि उस समय मतिराम की अवस्था ३० वर्ष की भी मान ली जाय तो उनका जन्म सवत् १६३० वि० पडता है। लक्षण लिखने के ४—५ वर्ष पीछे ही खानखाना द्वारा वे बादशाह जहाँगीर के दरबार में उपस्थित हुए होंगे। अत फूलमञ्जरी* का रचनाकाल स० १६६५ वि० के समीप पडता है। प० कृष्णबिहारी जी मिश्र मतिराम-ग्रंथावली की भूमिका में फूलमञ्जरी का रचना काल सवत् १६७८ वि० मानते हैं। यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उस समय तो रहीम पर जहाँगीर की वक्रदृष्टि थी। ऐसी दशा में उनके आश्रित कवि पर बादशाह द्वारा उदारता प्रगट की जाने की बात दरबारी ढंगों के अनुकूल नहीं जान पडता।

इनके अतिरिक्त मतिराम के निम्नलिखित ग्रन्थ और पाए जाते हैं। (१) रसराज (२) ललित ललाम (३) मतिराम-सतसई (४) साहित्यसार (५) लक्षण शृङ्गार (६) छन्दसारपिंगल (वृत्तकौमुदी) (७) अलङ्कार पचाशिका।

इनमें से न० १, २ और ३ के ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। इन ग्रन्थों में से ललित-ललाम बूँदी नरेश भाऊसिंह के आश्रय में सवत् १७१५-१८ वि० के बीच लिखा गया और मतिराम सतसई राजा भाग

---

* नोट—फूलमञ्जरी मतिराम ने जहाँगीर बादशाह के आश्रय में रहकर उनके कहने से बनाई थी। दे० मतिराम ग्रंथावली का भूमिका भाग।

नाथ जम्बूनरेश के लिये रची गई है। अलङ्कार-पचाशिका का निर्माण कुमाऊँ के राजकुमार ज्ञानचन्द्र के लिये संवत् १७४० वि० में और छन्दसार पिङ्गल का निर्माण, कुण्डार-पति स्वरूपसिंह बुन्देला के अर्थ संवत् १७५८ वि० में हुआ था, शेष ग्रन्थों का रचना काल अज्ञात है।

पं० कृष्णबिहारी जी मिश्र ने मतिराम का एक छन्द भगवन्तराय खींची के लिये भी रचा हुआ प्रकाशित किया है।

यह छन्द यह है —

दिल्ली के अमीर दिल्लीपति सों कहत बीर,
दक्खिन की फौज लेके सिंहल न्याइहौं।
जड़ाती जमैयन की जेर कै सुमेर हू लौं,
सम्पति कुबेर के खजाने ते कढ़ाइहौं।
कहै 'मतिराम' लङ्कपति हू के धाम जाइ,
जङ्ग जुर चमहु कौं लोह सौं बनाइहौं।
आगि मैं गिरैंग कृदि कूप मैं परैगे एक,
भूप भगवन्त की मुहीम पै न जाइहौं।

असोथर-नरेश भगवन्तराय खींची का समय सं० १७७४ वि० से सम्वत् १७९२ वि० तक है। इनमें से उनका मृत्यु-समय सम्वत् १७९२ निश्चित् है, क्योंकि इसी सम्वत् में वे सआदतखां से युद्ध करते हुए मारे गये थे। भगवन्तराय खींची एक साधारण जमींदार के लड़के थे और अपने बाहुबल द्वारा एक विशाल-राज्य के अधिपति हो गये थे। अत उक्त छन्द में वर्णित दशा सम्वत् १७८५ वि० के पश्चात् की ही हो सकती है, जब उन्होंने कोड़ा जहानाबाद के सूबेदार को मारकर वहाँ का राज्य हस्तगत कर लिया था।

जैसो चित्तौर धनी राना नरनाह भयो,
 तैसोई कुमाऊँपति पूरो रजराज है।
जैसे जयसिंह जसवन्त महाराज भए,
 जिनसों मही मैं सजी बड़ो ब्रजराज है।
मिश्र माहिचन्द सों बुन्देल कुल चन्द जग,
 ऐसो अब उदित स्वरूप महाराज है।

इस छन्द में मतिराम ने अपने तीन आश्रयदाताओं का उल्लेख किया है—(१) श्रीनगर (गढ़वाल) नरेश फतहशाह (२) कुमाऊँपति उद्योतचन्द और ज्ञानचद तथा (३) कुडार अधिश्वर स्वरूपसिंह बुन्देला। इस प्रकार मतिराम के आश्रय-दाता निम्न-लिखित ठहरते हैं।

*(१) अब्दुलरहीम खानखाना (रहीम कवि) सं० १६१३ वि० से १६८४ वि० तक।

(२) बादशाह जहाँगीर, सं० १६६२ वि० से १६८४ वि० तक।

(३) राजकुमार गोपीनाथ, बूंदी सं० १६८८ वि० से पूर्व।

(४) महाराज भाऊसिंह (बूंदीनरेश) सं० १७१५ वि०से १७३८ वि० तक।

(५) राजा भागनाथ।

(६) फतहशाह (श्रीनगर नरेश) सं० १७४१ से सं० १७७३ वि० तक।

(७) उद्योतचद व ज्ञानचद (कुमाऊँ-पति) सं० १७४५ वि० १७५५ वि० तक।

(८) कुण्डार पति स्वरूपसिंह बुन्देला, सं० १७५८ वि० के लगभग

(९) भगवन्तराय खींची (असोथर-नरेश) सं० १७७० वि० १७९२ वि० तक।

ऊपर की सूचा और छन्दों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि मतिराम का कविता काल सम्वत् १६६० वि० से प्रारम्भ होकर सम्वत् १७९० वि० तक पहुँचता है। इस १३० वर्ष के दीर्घकाल तक एक कवि कदापि रचना नहीं कर सकता। अतः अवश्य दो मतिराम हुए हैं। ललित-ललाम ग्रन्थ भाऊसिंह के आश्रय में रहकर रचा गया है वह अधूरा है। उसमें सम्वत् १७१८-१९ वि० तक की ही घटनाएँ आई हैं। अतः अनुमान होता है कि प्रथम मतिराम का समय सम्वत् १६६० वि० से सम्वत् १७१६ वि० तक था।

रसराज, ललित ललाम, और मतिराम-सतसई के छन्द एक दूसरे में ओत-प्रोत हैं। भाषा और शैली भी मिलती है। अतः ये तीनों एक ही कवि की रचनायें हैं।

मतिराम ग्रन्थावली के सम्पादक महोदय ने उक्त ग्रन्थ की भूमिका पृष्ठ २२३ पर फतहशाह का समय स० १७०० से १७१० वि० रखा है। ज्ञात नहीं इसका उनके पास क्या आधार है। गढ़वाल-पति फतहशाह का समय गढ़वाल गजेटियर में स० १६४० वि० तक निश्चित है।

स० १७१६ वि० तथा १७४६ वि० के बीच का कोई ग्रन्थ मतिराम का रचा नहीं मिला, इससे यही प्रतीत होता है कि प्रथम पाँच सज्जन—रहीम, जहाँगीर, गोपीनाथ, भाऊसिंह और मोगचन्द—प्रथम मतिराम के आश्रय-दाता थे और उद्योतचन्द्र, ज्ञानचन्द्र फतहशाह स्वरूपसिंह बुन्देला और भगवन्तराय खीची—ये पाच, दूसरे मतिराम के आश्रयदाता थे। इनमें से प्रथम चार का उल्लेख वृत्त कौमुदी के उक्त छन्द में आ गया है। भगवन्तराय खीची के दरबार में मतिराम पीछे गये थे, अतः उनका उल्लेख इस छन्द में नहीं किया गया। यहाँ इस बात की चर्चा करना असंगत नहीं है कि दोनों कवियों

की रचनाओं में बहुत अंतर है। भाषा और शैली दोनों में ही विभिन्नता पायी जाती है। इस प्रकार दो भिन्न मतिरामों का होना निश्चित और प्रमाण सिद्ध प्रतीत होता है।

भूषण और मतिराम की सम-सामयिकता

भूषण और मतिराम के आश्रय दाताओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि प्रथम मतिराम के आश्रयदाताओं (रहीम, जहाँगीर, गोपीनाथ, भाऊसिंह और भोगनाथ) में से भूषण का एक भी आश्रयदाता नहीं है और न उनकी प्रशंसा का कोई छंद ही मिलता है। इसके विरुद्ध दूसरे मतिराम के पांच आश्रयदाताओं (१) उद्योतचंद्र (२) ज्ञानचन्द्र, (३) फतहशाह (४) स्वरूपसिंह बुन्देला और (५) भगवन्तराय खीची—में से उद्योतचन्द्र ज्ञानचन्द्र, फतहशाह और भगवन्तराय खीची, ये चार भूषण के भी आश्रयदाता हैं। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि द्वितीय मतिराम ही भूषण के समकालीन थे, प्रथम नहीं। मतिराम के पौत्र बिहारी लाल कवि ने भी इन दोनों को सम-सामयिक लिखा है।

भूषण और मतिराम का सम्बन्ध

त्रिपाठी बनपुर बसैं, वत्सगोत मुनि गेह;
विबुध चक्रमणि पुत्र तहँ, गिरिधर गिरिधर देह ।२१।
भूमि देव बलभद्र हुव, तिनहिं तनुज मुनि मान ;
मंडित पंडित मंडली, मंडन मही महान ।२२।
तिनके तनय उदार मति, विश्वनाथ हुव नाम,
दुतिधर श्रुतिधर को अनुज, सकल गुननि को धाम ।२३।
तासु पुत्र मतिराम कवि, निज मति के अनुसार,
सिंह स्वरूप सुजान को, बरन्यौ सुजस अपार ।२४।

इन्हीं प्रतियों में आश्रयदाता के सम्बन्ध में यह दोहा मिलता है।

वृत्त कौमुदी ग्रन्थ की सरसी सिंह स्वरूप,
रचौ सुकवि मतिराम ना पढ़ो सुनौ कविभूप ।*

भूषण अपने को शिवराज भूषण के छन्द न० २६ में कश्यपगोत्री रत्नाकर का पुत्र बतलाते हैं।

मतिराम के पन्ती विहारीलाल ने विक्रम सतसई की रसचन्द्रिका नामक टीका में अपना परिचय इस प्रकार दिया है। :—

"हैं पन्ता मतिराम के सुकवि विहारी लाल।"
कश्यप वंश कनौजिया, विदित त्रिपाठी गोत,
कवि राजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत ।†

इन तीनों (भूषण, मतिराम और विहारीलाल) के वर्णनों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि मतिराम वत्स गोत्री (यथार्थ में कश्यप गोत्री) विश्वनाथ के पुत्र और भूषण कश्यप गोत्री रत्नाकर के पुत्र थे। अतः भूषण और मतिराम सहोदर कदापि नहीं हो सकते। एक गोत्र के मानने में भी सन्देह है, फिर बन्धुत्व कैसा?

* छन्दसार-पिंगल, सर्ग १

† विक्रम-सतसई, प्रथम शतक

यहाँ पर एक यह अवश्य शंका उत्पन्न होती है कि मतिराम तो अपने को वत्स गोत्री कहते हैं, परन्तु उनके पन्ती बिहारीलाल अपने को कश्यप-गोत्री बतलाते हैं। इसका क्या कारण है?

मतिराम के वंशज तिकमापुर के समीप सॅजती और नॅाद नामक गावों (जिला कानपुर) में रहते हैं। वे सब अपने को कश्यप-गोत्री बछई के तिवारी कहते हैं। उनके यहा से जो कान्यकुब्ज वंशावली प्राप्त हुई है, उसमे भी बछई के तिवारी कश्यप गोत्र के अन्तर्गत हैं। इससे स्पष्ट है कि मतिराम और उनके वंशज वास्तव मे कश्यप गोत्री हैं। इस दशा मे फिर यह प्रश्न होता है कि मतिराम ने कश्यप गोत्री होते हुये भी अपने को वत्स-गोत्री क्यों लिखा? इसका कारण यही प्रतीत होता है कि बछई "वत्स" का अपभ्रंश रूप है, अत: उन्होंने बछई को वत्स रूप देकर अपने को शुद्ध और परिष्कृत रूप में लाने का प्रयत्न किया है। बिहारीलाल कवि का—

"कश्यप वंश कनौजिया विदित त्रिपाठी गोत,"

छन्दांश भी मतिराम की उक्त भूल का मार्जन करता हुआ सा प्रतीत होता है, अन्यथा कश्यप-गोत्र और त्रिपाठी वंश लिखना युक्ति युक्त होता। 'त्रिपाठी गोत' से कवि बछई के त्रिपाठी की ही ओर सचेत कर रहा है और कश्यप-वंश उसका पूरक होकर बैठा है। इस प्रकार पन्ती बिहारीलाल ने अपने पितामह मतिराम की त्रुटि का प्रक्षालन कर अपने को पुनः परिष्कृत रूप मे लाने की कोशिश की है। इस विवरण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम मतिराम भूषण के जन्म से बहुत पहले मर चुके थे और द्वितीय मतिराम भूषण के समकालीन होते हुए भी उनके सहोदर न थे।

आश्रयदाताओं की सूची

यहाँ पर भूषण के आश्रयदाताओं की तालिका उनके राज्यकाल समेत दी जाती है। इससे भूषण का समय समझने में सुगमता होगी।

१—चित्रकूटपति हृदयराम सुरकी, सवत् १७५० वि० के लगभग।

२—कुमाऊँ-नरेश उद्योतचंद, १७३१ से १७५४ वि० तक

३—श्रीनगर-नरेश फतहशाह, स० १७४१ वि० से १७७३ वि० तक।

४—रीवाँ-नरेश अवधूत सिंह, १७५५-१८१२ वि० तक।

५—जयपुर नरेश सवाई जयसिंह, १७५६ १८०० तक।

६—सितारा-नरेश छत्रपति शाहू, १७६५ १८०५ वि० तक।

७—बूँदी-नरेश राव राजा बुधसिंह, स० १७६४ से १७९८ वि० तक।

८—दिल्ली-नरेश जहाँदारशाह स० १७६९ वि०।

९—मैहू-नरेश अनिरुद्धसिंह पौरच, स० १७७० वि० के लगभग।

१०—असोथर-नरेश भगवतराय खीची, स० १७७० वि० से १७९२ वि० तक।

११—बाजीराव पेशवा, स० १७७७ वि० से १७९७ वि० तक।

१२—चिमनाजी (चिन्तामणि), स० १७८० वि० के लगभग।

१३—चित्रकूटपति वसन्तराय सुरकी, स० १७८० वि० के लगभग।

१४—पन्ना नरेश छत्रसाल, स० १७२८ वि० से १७९१ वि० तक।

भूषण और शिवाजी

भूषण के जितने आश्रयदाता हुए हैं, वे सब शिवा जी की मृत्यु के बीस तीस वर्ष पीछे ही रंगस्थली पर आते हैं, शिवाजी के समय में

नहीं। 'भूषण' की उपाधि* देने वाले हृदयराम का समय भी सं० १७५० वि० के पीछे ही पड़ता है भूषण† का जन्म ही शिवाजी की मृत्यु के एक वर्ष पीछे हुआ है, फिर उनका शिवाजी के दरबार में रहना तो बहुत दूर की बात है। तब प्रश्न यह होता है कि भूषण ने शिवाजी की भूरि भूरि प्रशंसा करके व्यर्थ ही पोथे के पोथे क्यों रच डाले?

इसका एक प्रधान कारण है, और वह बहुत महत्त्वपूर्ण भी है। जिस समय उत्तर भारत के राजपूत शक्ति-शून्य हो रहे थे उस समय शिवाजी ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने औरंगजेब के अत्याचारों से राष्ट्र तथा जाति की रक्षा की थी, तथा स्वराज्य की स्थापना कर राष्ट्रोद्धार किया था। इसीलिये भूषण ने उन्हें ईश्वर का अवतार माना था। शिवराज भूषण में पचासों छन्द ऐसे मिलेंगे जिनमें शिवाजी को ईश्वरावतार, देवत्व-प्राप्त अथवा राष्ट्र-धर्म का उद्धारक कहा गया है। शिवाजी गौ, ब्राह्मण, राष्ट्र, जाति और धर्म के रक्षक थे। अतः उन्हें साक्षात् शिव और विष्णु का अवतार माना गया है। तत्सं-बन्धी कुछ उदाहरण ये हैं:—

दशरथ जू के राम भे, बसुदेव के गोपाल,
सोई प्रगटे साहि के, श्री शिवराज भुआल।

(शि० भू० ११)

इन्द्र को अनुज तैं उपेन्द्र अवतार याते,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।

(शि० भू०, १०३)

---

* भूषण-विमर्श पृ० ४७

† शिवसिंह सरोज पृ० ४४६

इसी प्रकार :—

तुम शिवराज ब्रजराज अवतार आजु,
तुमहीं जगत काज पोषत भरत हौ।

और,

बाभननि देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ।
(शि० भू०, ७५)

इस छन्द में भूषण ने शिवाजी को कृष्ण का अवतार बतलाते हुए भृगु और विष्णु की घटना की ओर संकेत किया है तथा प्रसन्नता के साथ समाज के उत्थान की प्रार्थना की है।

फिर शिवराज-भूषण के छन्द १४५ में,

"चक्कइ गयंद चक्कइ तुरग
जिमि सुरपति सरिवर करहि"

कहकर शिवाजी को इन्द्र से भी बड़ा बतलाया गया है। नीचे के छन्द में भी भूषण ने शिवाजी को 'हरि' का अवतार माना है।

ब्रह्म रचै पुरुषोत्तम पोषत संकर सृष्टि संहारन हारे।
तू हरि को अवतार सिवा नृप,काज सँवारे सबै हरि बारे।
(शि० भू०, २२८)

दारुन दइत हिरनाकुस विदारिबे कों,
भयौ नरसिंह रूप तेज विकरार है।
भूषन भनत त्यौं ही रावन के मारिबे को,
रामचन्द्र भयौ रघुकुल सरदार है।

> कंस के कुटिल दल बंसन बिधुंसिबे कों,
> भयो यदुनाथ बसुदेव को कुमार है
> तैसो पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
> म्लेच्छन के मारिबे को तेरो अवतार है
>
> (शि० भू०, २५०)

इस छन्द में नृसिंह रूप का "तेज विकरार" राम को 'रघुकुल सरदार' और कृष्ण को 'वसुदेव कुमार' कहकर, तथा शिवाजी को 'अवतार' मान कर चारों की नाम्यावस्था का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। इस प्रकार के अनेकों छन्द जिनमें भूषण ने शिवाजी को स्पष्ट ईश्वर का अवतार माना है, उदाहरण स्वरूप दिये जा सकते हैं।

शिवाजी की अवतार रूप में स्थिरता बनी रहने के लिये आशीर्वाद देते हुये भूषण ने अपने ग्रन्थ शिवराज भूषण के अन्त में लिखा है :—

> एक प्रभुता को धाम, सजे तीनों वेद काम,
> रहै पंच आनन षड़ानन सरबदा।
> सातो बार आठो जाम जाचक निवाजै नव,
> अवतार थिर राजै कृशन हरि गदा।
> शिवराज भूषण अटल रहै तौलौं,
> जौलों त्रिदस भुवन सब राजै औ नरमदा।
> साहितनै साहसिक भौंसिला सूरज बंस,
> दासरथि राज तौलौं सरजा बीर सदा।
>
> (शि० भू० ३८१)

इस कवित्त में भूषण ने शिवाजी के अवतार की दाशरथि-राम के अवतार से तुलना करते हुये उन्हें 'नव अवतार' माना है, तथा

अपने ग्रन्थ 'शिवराज भूषण'' के स्थायित्व (स्वर्ग और नर्मदा नदी जब तक रहें तब तक) के लिये प्रार्थना की है। इस छन्द में शिवाजी भोंसिला का अवतार स्थिर रखने का भी स्पष्ट उल्लेख है। साथ ही शिवाजी की तलवार को 'हरिगदा' के रूप में प्रदर्शित कर उस अवतार की पुष्टि की गयी है। यहां 'दाशरथिराज' और "नव अवतार थिरराजै" शब्दांश विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं।

इसके अनन्तर भूषण ने अपने भावों का शिवराज भूषण के अन्तिम दोहे में और भी अच्छी तरह व्यक्त कर दिया है :—

> पुहुमि पयानि रवि ससि पवन, जब लौं रहैं अकास,
> शिव सरजा तब लौं जियौं, भूषन सुजस प्रकास।
> (शि० भू०, ३८२)

यहाँ भूषण शिवाजी के सुयश के प्रकाश को (शिवाजी को नहीं) जीवित रहने का आशीर्वाद देते हैं।

इन उदाहरणों से हम भूषण की आभ्यन्तरिक भावनाओं का अनुमान सहज ही कर सकते हैं कि उन्होंने किन प्रेरणाओं से शिवाजी ही को आदर्श रूप में चित्रित किया था। उनके हृदय में शिवाजी के लिये कौन सा स्थान था ? वे सारे देश में चक्कर लगाते हुए शिवाजी की प्रशंसा के गीत क्यों गाते फिरते थे। तथा किन कारणों से वे उनका ईश्वर के रूप में प्रतिपादन कर रहे थे ?

इन सब का स्पष्ट उत्तर एक ही है। भूषण का प्रधान लक्ष्य था, शिवाजी के आदर्श पर राष्ट्र का संगठन करना तथा अत्याचारी औरङ्गजेब के साम्राज्य को छिन्न भिन्न करके स्वराज्य की स्थापना कर धर्म-रक्षा के लिये प्रयत्नशील रहना। इसी उद्देश्य की पूर्ति में भूषण ने अपना सारा जीवन लगा दिया था।

गाओं की भूरि भूरि प्रशसा की है। और उनकी मर्यादा की आदर्श बतलाया है। अत. उन्हे समाज-द्वेषी कोई नहीं ... दाने किसी मुसलमान की सम्प्रदाय के कारण निन्दा

उन्होंने शिवराज भूषण में लिखा है :—

> नृप समाज में आपनी, होन बड़ाई काज,
> साहि तनै शिवराज के, करत कवित कविराज।
> (शि० भू०, २७८)

तथा—

> को कविराज सम्मानित होत,
> सभा राजा के बिना गुन गाये।
> (शि० भू० १५३)

भूषण ने शिवाजी को छोड़कर अन्य किसी को ईश्वरावतार नहीं माना और न किसी को अनुकरणीय ही बतलाया है। शिवाजी का अनुकरण करने वाले राजाओं की ही उन्होंने प्रशंसा की है। इनमें भगवन्तराय खीचीं, छत्रपति छत्रसाल, सवाई जयसिंह और बाजीराव पेशवा मुख्य थे। कुमाऊँ नरेश को भूषण ने जो उत्तर दिया था, उससे भी इसी बात की पुष्टि होती है कि उनके आदर्श केवल शिवाजी थे और वे ही तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलन के प्रसिद्ध एवम् सर्व-प्रधान नेता थे।

उपसंहार

भूषण-कालीन परिस्थिति का एक शब्द में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है कि वह औरंगजेब का अत्याचारी समय था, उसी की प्रतिक्रिया में भूषण का आविर्भाव हुआ था। परन्तु उसमें जाति-विद्वेष की गन्ध भी नहीं थी। भूषण ने प्रत्यक्ष रूप में बाबर, अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब के पोते जहाँदारशाह तथा बीजापुर-गोलकुण्डा के

शिया राजाओं की भूरि भूरि प्रशंसा की है। और उनकी मर्यादा की भावना को आदर्श बतलाया है। अतः उन्हें समाज-द्वेषी कोई नहीं कह सकता। उन्होंने किसी मुसलमान की सम्प्रदाय के कारण निन्दा नहीं की। जिन्होंने औरंगजेब का साथ दिया वे सब हिन्दू-मुसलमान दोनों ही निन्दनीय माने गये।

भूषण-कृत शिवराजभूषण का रचना काल सं० १७३० वि० माना जाता है। उसके सम्बन्ध में यह दोहा प्रचलित है।

शुभ सत्रह सैतीस पर सुचि बदि तेरसि भान।
भूषण शिव-भूषण कियौ, पढ़ियो सकल सुजान॥

यह दोहा कई प्रकार के रूप धारण करने पर भी शुद्ध न हो सका*।

शिवराज भूषण में वर्णित घटनाएं भी सं० १७३७ वि० तक की पाई जाती हैं. जो कि शिवाजी के मृत्युकाल का समय है। यथार्थ में देखा जाय तो शिवाजी के सम्बन्ध की महत्वपूर्ण घटनाएं इसी बीच में हुई थीं। शिवा-बावनी सुनाने की घटना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसके पश्चात् ही शिवराज-भूषण रचा गया है। परन्तु शिवा-बावनी में घटित बातें सं० १७६९ वि० तक हुई है। इसलिये शिवराज-भूषण भी सं० १७६६ वि० के ही आस पास का बना प्रतीत होता है। वरन् कुछ संकेत भी शिवराज भूषण में सं० १७३७ वि० के पीछे के दिखलाई देते हैं। इसलिये उक्त विचार और भी दृढ़ हो जाता है।

---

* भूषण विमर्श पृ० ३५।

† देखो, वही पृ० ३१

जब भूषण का जन्म ही स० १७३८ वि० है तब उससे पूर्व ग्रन्थ निर्माण कैसा। यह भयंकर भ्रान्ति शीघ्र ही साहित्य संसार में दूर हो जानी चाहिये।

भूषण बड़े समाज सुधारक और वैदिक भावना के अनुयायी* थे। इसलिए भूत प्रेत आदि पूजाओं को हेय समझते थे। वे हिन्दू-मुसलमानों के मेल के प्रबल पक्षपाती थे। इसके लिये उन्होंने हिन्दू मुसलमानों में विवाह सम्बन्ध कराये† तथा मुसलमानों की लड़कियाँ लेने में भी संकोच नहीं किया। छुआछूत और जाति-पाँति तथा वर्ण-व्यवस्था‡ को संशोधित रूप में ही वे देखना चाहते थे। इसकी ओर भी उनकी रचना में संकेत पाये जाते हैं।

कुछ सज्जनों ने भूषण पर जाति-विद्वेष अश्लीलता-कथन आदि दोषों के आक्षेप किये हैं। ये आक्षेप भ्रमवश किये गये हैं। भूषण ने न तो जाति विद्वेष फैलाया और न अश्लील वर्णन ही कहीं किया। इसी प्रकार भूषण पर भँड़ैती का आक्षेप भी निराधार है। भूषण शुद्ध राष्ट्रीय कवि था, उसने जीवन भर इसी के लिये उद्योग किया। राजनैतिक प्रगति में भी उसने सर्वत्र घूम घूम कर संगठन किया। बाजीराव पेशवा और सवाई जयसिंह की सन्धि कराना भूषण का एक महत्व-पूर्ण राजनैतिक-कार्य था। इस प्रकार भूषण के कार्य की धारा अनेक मार्गों में प्रवाहित हो रही थी।

---

* भूषण विमर्श पृ० १७४।

† भूषण विमर्श पृ० २७३।

‡ भूषण विमर्श पृ० २०९।

? भूषण विमर्श पृ० २० २५५।

= परिशिष्ट पृ० २६१ २६०।

शिवराज-भूषण

कवित्त मनहरण

तेरो तेज सरजा समत्थ! दिनकर सोहै,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सो।
भौंसिलाभुआल! तेरो जस हिमकर सोहै,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो।
भूषन भनत तेरो हियो रतनाकर सो,
रतनाकरो है तेरो हियो सुख कर सो।
साहि के सपूत सिव साहि दानि तेरो कर,
सुरतरु सो है, सुरतरु तेरो कर सो। १।

सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल हठी,
भठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।
भूषन भनत, देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मति हिये मैं धरि काहुवै न हटक्यो।
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजलै पंजाबल पटक्यो।
ता बिगिरि है करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो। २।

कवि कहै करन, करनजीत कमनैत,
अरिन के उर माहिं कीन्ह्यौ इमि छेव है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो
और धरा धरन को मेट्यो अहमेव है।
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज काज देखि कोई पावत न भेव है।

कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहै,
बहरी निजाम के जितैया कहै देव है। ३।

मालती सवैया

दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भारयो।
भूषन बाहुबली सरजा तेहि भेंटिवे को निरसंक पधारयो।
बीछू के घाय गिरे अफजल्लहिं ऊपर ही सिवराज निहारयो।
दाबि यों बैठो नरिन्द अरिन्दहिं मानो मयन्द गयन्द पछारयो। ४।

साहितनै सिव साहि निसा मैं निसाँक लियो गढ सिंह सोहानौ।
राठि वरो को सँहार भयो लरिकै सरदार गिरयो उदैभानौ।
भूषण यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानो मसानौ।
ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ। ५।

कवित्त मनहरण

लूट्यो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु,
लूट्यो तलब खा मानहु अमाल है।
भूषण भनत लूट्यो पूना मैं सइस्तखान,
गढन मैं लूट्यो त्यों गढोइन को जाल है।
हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार,
घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है।
मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है। ६।

अटल रहे हैं दिगअंतन के भूप धरि,
रैयति को रूप निज देस पेस करि कै।
राना रह्यो अटल वहाना करि चाकरी को,
बाना तजि, भूषन भनत, गुन भरि कै।

हाड़ा, रायठौर, कछवाहे, गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डरि कै।
अटल सिवाजी रह्यौ दिल्ली को निदरि धीर,
धरि, ऐंड धरि, तेग धरि, गड धरि कै।७।

मदजल धरन द्विरद बल राजत हैं,
बहुजल धरन जलद छबि माने है।
भूमि के धरन फनपति अति लसत हैं,
तेज ताप धरन ग्रीषम रवि छाने है।
खग्ग के धरन सोहे भट मारे रन ही में,
भूषन लसत गुन धरन समाने है।
दिल्ली के दलन देस दच्छिन के थमन ही,
ऐंड के धरन सिव सरजा निराने है।८।

छूट्यो है हुलास आम खास एक सग, छूट्यौ,
हरम सरम एक, सग बिनु ढग ही।
नैनन तें नीर धीर छूट्यो एक सग छूट्यौ,
सुख रुचि मुख रुचि त्योंही बिन रग ही।
भूषन बखाने, सिवराज, मरदाने तेरी,
धाक बिललाने, न गहत बल अग ही।
दक्खिन के सूबा पाय दिली के अमीर तजैं,
उत्तर की आस जीव आस एक सग ही।९।

उत्तर पहार बिधनौल खण्डहर भार,
खण्डहु प्रचार चारु केला है बिरद को।
गौर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जतु जगलीन की बसति मार रद की।

भूषन जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो अपनी ऊँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की ॥१०॥

बचैगा न समुहाने, बहलोल खाँ अयाने,
भूषण बखाने, दिल आन, मेरा बरजा।
तुझ तें सवाई तेरा भाइ सलहेरि पास,
कैद किया, साथ का न कोई बीर गरजा।
साहिन के साह उसी औरंग के लीन्हे गढ़,
जिसका तू चाकर और जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिली दल का दलन,
अफजल का मलन सिवराज आया सरजा ॥११॥

मालती सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत लखे कुनबा नृप सारे।
साहि तनै तव कोप कृसानु ते बैरि गरे सब पानिपवारे।
एक अचम्भव होत बड़ो तिन ओठ गहे अरि जात न जारे ॥१२॥

कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की।
भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर,
छाती दरकत है खरी अखिल खल की।
कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कटि नाक सिगरेई दिली-दल की।

सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी।१३।

सहज सलील सील जलद से नील डील,
पब्बय से पील देत नाहिं अकुलात है।
भूषन भनत, महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेर जो सुमेरु सो लखात है।
सरजा सवाई कासों करि कविताई तब,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।
जाको जस-टंक सातो दीप नव खण्ड महि,
मंडल की कहा ब्रह्मंड ना समात है।१४।

मालती सवैया

मोरंग जाहु कि जाहु कुमाऊँ सिरीनगरै कि कवित्त बनाए।
बाँधव जाहु कि जाहु अमेरि कि जोधपुरै कि चित्तौरहिं धाए।
जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु बोलाए।
भूषन गाय फिरौ महि मैं बनि है चित चाह सिवाहि रिझाए।१५।

भागि पठायो सिवा कछु देस वजीर अजानन बोल गहे ना।
दौरि लियो सरजा परनालो यों भूषन जो दिन दोय लगे ना।
धाक सों खाक बिजैपुर भो मुख आय गो खान खवास को फेना।
भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिल साहि की सेना।१६।

कवित्त मनहरण

बिना चतुरंग संग बानरन लै के बाधि,
बारिध को लंक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम से लाख भट,
जीति लीन्हीं नगरी बिराट मैं बड़ाई है।

भूषन भनत, है गुसलखाने में खुमान,
अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभो महाराज सिवराज, सदा,
वीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है।१७।

शिवा-बावनी

कवित्त मनहरण

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठैल पैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।१८।

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस देस के।
नग भहराने ग्राम-नगर पराने, सुनि,
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के।
हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के।१९।

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।

भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जुरि आई है।
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाजु आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा-नरेश भृकुटी चढाई है।२०।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छै हजारिन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत महाबीर बलकन लागो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे।२१।

केतकी भो राना और बेला सब राजा भये,
ठौर ठौर लेत रस नित यह काज है।
सिगरे अमीर भये कुन्द मकरंद भरे,
भृङ्ग से भ्रमत लखि फूल के समाज है।
भूषन भनत सिवराज वीर तैंहीं देस,
देसन मैं राखी सब दच्छिन की लाज है।
त्यागे सदा षटपद पद अनुमान यह,
अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज हैं।२२।

कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाब राना केतकी बिराज है।

पाँडर पँवार जही सोहत है चदावत,
सरस बुंदेला सो चमेली साजबाज है।
भूषन भनत मुचुकुंद बड़गूजर है,
बघेले बसन्त सब कुसुम-समाज है।
लेइ रस एतेन को बैठ न सकत अहै,
अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज है।२३।

छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचान हूँ की ओट मैं।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला वीरवर जोट मैं।
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहा लगि है जाकी भट झोट मैं।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परै कोटमैं।२४।

मालती सवैया

केतिक देस दल्यो दल के बल, दच्छिन चंगुल चापि कै चाख्यो।
रूप गुमान हर्‌यो गुजराज को, सूरत को रस चूसि कै नाख्यो।
पंजन पेलि मलिच्छ मले सब, सोइ बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो।
सो रँग है सिवराज बली, जिन नौरंग में रँग एक न राख्यो।२५।

कवित्त मनहरण

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को।
भूषन अखंड नवखंड महि-मंडल मैं,
तम पर दावा रवि किरन समाज को।

पूरब पछाह देस दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहा पातसाही तहाँ दावा सिवराज को।२६।

वारिधि के कुंभभव घन वन दावानल,
तरुन तिमिर हूँ के किरन-समाज हौ।
कस के कन्हैया, कामधेन हू के कंठकाल,
कैटभ के कालिका विहंगम के बाज हौ।
भूषन भनत जालिम के सचीपति,
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ।
रावन के राम कातवीज के परसुराम,
दिल्लीपति-दिग्गज के सेर सिवराज हौ।२७।

मौरंग कुमाऊँ औ पलाऊ बाधे एक पल,
कहाँ लौ गिनाऊं जेऽव भूपन के गोत हैं।
भूपन भनत गिरि बिकट निवासी लोग,
बावनी-बवंजा नवकोटि धूंध जोन हैं।
काबुल कंधार खुरासान जेर कीन्ह जिन,
मुगल पठान सेख सैयदहु रोत हैं।
अब लग जानत हे बड़े होत पातशाह,
सिवराज प्रकटे ते राजा बड़े होत हैं।२८।

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग पर उग्ग नीचे रुंड मुंड फरके।
भूपन भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके।
मारे मुनि सुभट पनारे वारे उदभट,
तारे लगे फिरन सितारे गढ़ धर के।

बीजापुर बीरन के गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके।२९।

मालवा उजैन भनि भूषन भेलास ऐन,
सहर सिरोंज लौं परावने परत हैं।
गोंड़वानो तिलगानों फिरगानो करनाट,
रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं।
साहि के सपूत सिवराज, तेरी धाक सुनि,
गढपति बीर तेऊ-धीर न धरत हैं।
बीजापुर गोलकुंडा आगरा दिल्ली के कोट,
बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं।३०।

मारि करि पातसाही खाकसानी कीन्हीं जिन,
जेर कीन्हों जोर सों लै हद्द सब मारे की।
खिसि गइ सेखी फिसि गई सूरताई सब,
हिसि गई हिम्मत हजारों लोग मारे की।
बाजत दमामे लाखौं धौंसा आगे घहरात,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की।
दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारे,
दिल्ली दुलहिन भइ सहर सितारे की।३१।

जिन फन फुतकार उड़त पहार, भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो।
विष-ज्वाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो।
कीन्हो जिन पान पयपान सो जहान सब
कोलहू उछलि जलसिंधु खलभलिगो।

खग्ग खगराज महाराज सिवराज जू को,
अखिल भुजंग दल-मुगल निगलिगो ।३२।

छत्रसाल-दशक

रैया राव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
भूषन भनत गजराज जोम जमकैं ।
भादौं की घटा सी उड़ि गरद गगन घिरे,
सेलैं समसेरैं फिरैं दामिनी सी दमकैं ।
खान उमरावन के आन राजा-रावन के,
सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं ।
बैहर बगारन की, अरि के अगारन की,
लाँघती पगारन नगारन की धमकैं ।३३।

चाकचक-चमू कै अचाकचक चहूँ ओर,
चाक सी फिरत धाक चपति के लाल की ।
भूषण भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की ।
सुनि सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की ।
जंग जीति लेवा तेऊ ह्वै कै दाम देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की ।३४।

सागन सों पेलि पेलि खग्गन सों खेलि खेलि,
समद सा जीता जो समद लौं बखाना है ।
भूषन बुंदेला-मनि चंपति-सपूत धन्य,
जाकी धाक बचा एक मरद मियाँना है ।
जगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा,
महमद अमीखा का कटक खजाना है ।

बीर-रस मत्ता जाते काँपत चकत्ता यारो,
कत्ता ऐसा बाँधिये जो छत्ता बाँधि जाना है।३५।

देस दहपट्टि आयो आगरे दिली के मेंडे,
बरगी बहुरि मानों दल जिमि देवा को।
भूषन भनत छत्रसाल छितिपाल मनि,
ताके ते कियो बिहाल जंग जीति लेवा को।
खंड खंड सोर यों अखंड महि-मंडल में,
मंडिड बुन्देलखंड मंडल मदेवा को।
दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
ज्यों सहसबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को।३६।

अत्र गहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवै के,
उत ते पठानन हू कीन्ही झुकि झपटैं।
हिम्मति बड़ी कै कबड़ी के खिलवारन लौं,
देत से हजारन हजार बार चपटैं।
भूषन भनत काली हुलसी असीसन कौं,
सीसन कौं ईस की जमाति जोर जपटैं।
समद लौं समद की सेना त्यों बुँदेलन की,
सेलैं समसेरैं भई बाडव की लपटैं।३७।

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी सी,

पच्छी-पर छीने ऐसे परे पर छीने वीर,
तेरी बरछी ने वर छीने हैं खलन के।३८।

राजत अखण्ड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को।
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हें,
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को।
और राव राजा एक मन मैं न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।३६।

(गोरेलाल)

गोरेलाल ने अपने विषय में कहीं कुछ भी नहीं लिखा। इनकी रचनाओं से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि ये सम्भवतः छत्रसाल के समकालीन थे तथा इनका उपनाम 'लाल' था। इनके प्रपौत्र

जीवन चरित्र के प्रपौत्र बीकानेर-निवासी उत्तमलाल गोस्वामी से इनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ बातें ज्ञात हुई हैं। उसके अनुसार इनके पूर्वजों का निवास-स्थान आन्ध्र-प्रदेश में राजमहेन्द्री जिले के नृसिंह क्षेत्र धर्मपुरी में था। इनके एक पूर्वज काशीनाथ की कन्या का विवाह वल्लभाचार्य से हुआ था। काशीनाथ-पुत्र जगन्नाथ के छः लड़के थे। उनके नाम क्रमशः ये हैं:—(१) गिट्टा (२) लम्बुक (३) जोगिया (४) तिपरा (५) गिरधन तथा (६) भरस। इसमें से गिट्टा के पुत्र नागनाथ हुए और उनकी दसवीं पीढ़ी में गोरेलाल उत्पन्न हुए। ये मुद्गलगोत्रीय तैलंग ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १७१५ वि० के लगभग हुआ था।*

इसी की पुष्टि एक दूसरे प्रमाण से होती है। प्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् प० गंगाधर शास्त्री तैलंग के पुत्र कृष्ण शास्त्री ने 'वल्लभ-दिग्विजय' नामक ग्रन्थ में अपना परिचय देते हुए इस आशय का श्लोक कहा है, "मुद्गलगोत्रीय नागनाथ के वंश में कविकुल-तिलक गोरेलाल हुए, जिन्हें बुन्देलखंड के अधीश्वर बड़ी पूज्य-दृष्टि से देखते थे।"

महाराजा छत्रसाल के अतिरिक्त अन्य किसी के नाम पर इनकी कोई रचना प्राप्त न होने से इनके आश्रयदाता एकमात्र छत्रसाल

---

* शिवसिंह सेंगर इनका जन्म सं० १७३८ वि० मानते हैं।

अनुमान किये जाते हैं। छत्रसाल ने इन्हें बडई, पठारा, अमानगंज, सगैरा, तथा दग्धा नामक पांच गांव दिये थे। इनके वंशज अब तक दग्धा में वर्तमान हैं। छत्रप्रकाश में १७६४ वि० तक की घटनाओं का उल्लेख देखकर यह अनुमान किया जाता है कि इनकी मृत्यु इसी के लगभग हुई होगी। शिवसिंह स १७६० वि० तक इनका जीवित रहना बताते हैं।

इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ कहे जाते हैं—(१) छत्र प्रशस्ति (२) छत्र-छाया (३) छत्र-कीर्ति (४) छत्र-छन्द (५) छत्रसाल शतक (६) छत्र-हजारा (७) छत्र दंड (८) छत्र-प्रकाश ९) राज-विनोद तथा (१०) विष्णु-विलास। इनमें से छत्र-प्रकाश, राज-विनोद, तथा विष्णु-विलास ही प्रकाशित हुए हैं।

छत्र-प्रकाश

महाराज छत्रसाल की आज्ञा से इस ग्रन्थ की रचना हुई। यह कवि की अन्तिम रचना है। इसमें छब्बीस अध्याय हैं। किन्तु कतिपय अध्याय नाम मात्र के ही हैं। यह ग्रन्थ प्रायः दोहा चौपाई छन्दों में ही लिखा गया है।

सारांश

प्रारम्भ में गणेश तथा सरस्वती वन्दना के अनन्तर छत्रसाल के वंश का वर्णन किया गया है। गहिरदेव के वंश में वीरभद्र की उत्पत्ति हुई। वीरभद्र के अनन्तर सम्पूर्ण-राज्य भाइयों से छीन लेने पर वीरभद्र का पुत्र पंचम विन्ध्यवासिनी देवी की शरण गया। सात दिन तक उपवास करने पर भी देवी प्रसन्न न हुई तब वह तलवार से अपना शिर काटने को उद्यत हुआ। किन्तु इसी समय देवी ने प्रगट होकर तलवार पकड़ ली और राज्य बढ़ने का आशीर्वाद दिया। तलवार के

किंचित् लगने से रक्त का एक बूँद गिर पड़ा और तभी से उनका तथा उसके वंश का नाम बुन्देला पड़ा।

पंचम के एक वंशज उदयाजीत के वंश में भगवंतराय के चार पुत्र हुए। इनमें से एक छत्रसाल के पिता चम्पतिराय थे। छत्रसाल के अतिरिक्त चम्पतिराय के और चार पुत्र थे। (१) सारवाहन (२) अंगदराय (३) रतन (४) गोपाल। इसमें छत्रसाल के जन्म के सम्बन्ध में एक घटना का इस प्रकार उल्लेख है:— चम्पतिराय को परास्त करने के लिये बादशाह ने बाकीखाँ को भेजा। एक समय राजकुमार सारवाहन थोड़े से सरदारों के साथ भ्रमण कर रहे थे कि बाकीखाँ ने उन्हें आकर घेर लिया। सारवाहन वीरगति को प्राप्त हुए। एक दिन उनकी दुखित माता ने स्वप्न में सारवाहन को यह कहते हुए सुना कि मैं शीघ्रही तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होकर शत्रुओं से बदला लूँगा। इसी के अनन्तर उत्पन्न हुए पुत्र का नाम छत्रसाल रखा गया।

इसके अनन्तर इसमें चम्पतिराय तथा मुगल सेना में हुए अनेक युद्धों का वर्णन है। एक समय शाह की कुटिलता से चम्पतिराय को विष-भोजन कराया जा रहा था किन्तु उसके एक सरदार ने स्वयं उस अन्न को खाकर उसकी रक्षा की। शाहजहाँ की मृत्यु के अनन्तर चम्पतिराय औरंगजेब से मिल गये। किन्तु उसके धार्मिक कट्टरता से दुखी होकर इन्होंने उससे सम्बन्ध तोड़ दिया। आपत्ति के समय इनकी बहन ने भी इनका साथ न दिया। अपनी सेना को विश्वास घात करते हुए देखकर इन्होंने तथा इनकी पत्नी ने आत्मघात कर लिया।

इनके पुत्र छत्रसाल बड़े प्रतापी राजा हुए। जयसिंह के कहने से ये शाही सेना में भरती होगये। वीरता के अनेक कार्य करने पर भी बादशाह का ध्यान अपने ऊपर न देखकर ये असन्तुष्ट हो

गये और नौकरी छोडकर शिवाजी से जामिले। शिवाजी ने इन्हें बुन्देल खड में स्वराज्य-स्थापन करने की सलाह दी।

छत्रसाल ने बुन्देलखड आकर सैन्य सग्रह करना प्रारम्भ किया। सुजान सिंह तथा बलदाऊ को अपनी ओर मिला लिया। सर्वप्रथम इन्होंने धघेरेगढ पर विजय की। गणपति ने अपनी कन्या का विवाह छत्रसाल से करा दिया। इसके अनन्तर छत्रसाल के अनेक आक्रमण तथा विजय का वर्णन विस्तार से दिया गया है।

*एक बार शैदबहादुर के दूतों ने उसे छत्रसाल के शिकार खेलने जाने का समाचार दिया। उसने आक्रमण किया किन्तु वह हार गया। इसके अनन्तर छत्रसाल ने ग्वालियर के शैदमनौवर का घेर कर लूटा। उसके अनन्तर कजिदा के किलेदार- तथा उसके साथियों को हराया। इसके कुछ समय पश्चात् बादशाह ने तास हजार सेना के साथ इनइलाही सूबेदार को इनका दमन करने के लिये भेजा। किन्तु अन्त में उसी को भागना पडा।

इसके अनन्तर अवरगजेब ने रूमी नामक सरदार को भेजा। उससे बसिया में युद्ध हुआ। रूमी के बारूद को एकाएक आग लग गई और इसी समय छत्रसाल ने उस पर आक्रमण कर उसे भगा दिया

इसी समय जसवन्तसिंह के लडके सीमाप्रान्त से लौट कर दिल्ली आये। बादशाह उन्हें पकडना चाहता था, किन्तु दुर्गादास ने उन्हें बचा लिया। बादशाह ने शाहजादा अकबर को जोधपुर पर आक्रमण करने के भेजा किन्तु वह स्वय राजपूतों से मिलकर दिल्ली का सिहासन लेने का प्रयत्न करने लगा।

*इस सग्रह में यहीं से पद्यभाग लिया गया है।

छत्रसाल का एक विवाह सागर में हो रहा था। इसी समय तहव्वर-खा ने आक्रमण किया। छत्रसाल ने बलदाऊ को भेजकर उसे परास्त किया*।

इसके अनन्तर अनेक युद्धों का वर्णन करते हुए छत्रसाल को विजय दिखाई गयी है। चौबीसवें अध्याय में प्रसंगवश कृष्ण-जन्म की कथा भी वर्णित है। ग्रन्थ अन्त में कुछ अधूरा सा जान पड़ता है प्रवाह एकाएक रुक गया है।

ऐतिहासिकता

इसमें वर्णित घटनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से बिलकुल ठीक हैं। छत्र प्रकाश के तेरहवें अध्याय में छत्रसाल से केसोराइ दागी के द्वन्द्व-युद्ध का उल्लेख है। किन्तु बुन्देल-खंड के संक्षिप्त इतिहास में यह नाम केसोराइ दुरगी लिखा हुआ है।

आलोचना

अपनी रचना का अवलम्बन छत्रसाल को बनाने से 'लाल' की कविता का महत्व बढ़ गया। भूषण के अनन्तर राष्ट्रीय कवियों में इन्हीं का स्थान है। कवि प्रबन्ध-काव्य के सम्बन्ध-निर्वाह करने के कठिन कार्य में सफल हुआ है। लाल किसी बात को कहने के लिये क्लिष्ट-कल्पना का आश्रय नहीं लेते। सरल-भाव-व्यंजना के कारण ही इनकी रचना में कतिपय काव्य-गुण स्वाभाविक रूप से वर्तमान रहते हैं:—

चपति के परताप त पानिप गयो ससाइ।
पौसेरी भरि रहि गयौ नौसेरी उमराइ।

नौसेर के स्थान पर पावभर रह जाना यह कल्पना कितनी सरल किन्तु प्रभावी है। भयभीत उमराव ककाल रूप में उपस्थित हो जाता है।

इन्होंने अलकारों का जबरदस्ती लाने का प्रयत्न नहीं किया। किन्तु स्वाभाविक रूप से कतिपय अलङ्कार अवश्य वर्तमान हैं।

कवि ने अपने नायक की प्रशस्ति में एक नवीन ढग का उपयोग किया है —

दान दया। घमसान में, जाके हिये उछाह।
साई वर बखानिये, ज्यों छत्ता छितिनाह।

इन्होंने अन्य रीति कालीन कवियों के समान सर्वत्र सूची गिनाने का प्रयत्न नहीं किया। किन्तु जिन गावों को छत्रसाल ने जीता या लूटा था उनके नाम क्रमश गिना दिये गये हैं —

बारि विलाखरा रयपुरा रडमैदी परजार।
गड्ढ डौगर ग्यारसपुर झानाबाद उजार। अ १७ छ. ४

छत्र प्रकाश वीर रस की रचना होने पर भी उसमें टकार, डकार, रेफ, क्लिष्ट तथा सयुक्ताक्षर-युक्त वाक्यों का अभाव है। ये सरल से सरल शब्दों से रौद्र तथा भयानक रस की भी व्यजना कर सकते थे।

देवगढ पर मुगलों के आक्रमण के समय छत्रसाल ने जिस वीरता का प्रदर्शन किया था उसका कवि ने निम्नलिखित शब्दों में वर्णन किये है —

हिस नाद गलगर्जि के, भगि उठ्यो भट भीर।
[illegible] उमग में [illegible] ॥ अ १० छ ४

चम्पतिराय के पुत्र सारवाहन के युद्ध का यह चित्र भी कम आकर्षक नहीं है:—

ज्यों बैरिनि अभिमन्यु दबाये। कुँवर एक सहसन घरि धाये।
इक इक बान दुहूँ भट फूटैं। भुंकि भुंकि सऊ षहू दिसि जूटैं।
रव्यो कुंवर अभिमन्यु ज्यों महारथिन के बीच।
सारु फारु रिपु रुधिर की बिरचि मचाई कीच। अ. ३

कवि ने की हुई शिवाजी की प्रशंसा भी उचित ही है:—

ऐंट एक शिवराज निबाही।
करै आपने चितकी चाही।
आठ पात शाही झकझोरै।
सूबनि बाँधि डाँड़ ले छोरै।
अ. ६ छ. ७८

भाषा

दोहा चौपाई पद्धति पर रचना करने वाले सब कवियों ने अवधी का ही अपनाया है। किन्तु लाल ने अवधी, व्रज तथा बुन्देली मिश्रित भाषा का उपयोग किया है। भाषा को सरल करने की दृष्टि से ऐसा करने पर भी उनकी रचना में गाम्भीर्य पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। महोबे के पुराने पान में किसी नुकीली वस्तु का खोंचा लगने से उसके रेशे छितरा जाते हैं। इस प्रसिद्ध बात का उपयोग कवि ने कितना सुन्दर किया है:—

तीछन तीर बज्र से छूटे। बखतर पोस पान से फूटे।

वज्र के समान तीक्ष्ण बाणों के आघात से कवच पान के रेशों की तरह टूटकर छितरा गये।

इन्होंने मुहावरों का अच्छा उपयोग किया है। कहीं कहीं कवि ने शब्दों को अत्यन्त विकृत कर दिया है। 'गढ़कु ढार' के लिये 'कुठार' शब्द का प्रयोग अत्यन्त दोषपूर्ण है। मुसलमानी नामों में भी ये मन-मानी परिवर्तन करते थे। किन्तु ऐसे परिवर्तन कम अवश्य हैं।

अनेक गुणों से युक्त होने पर भी लाल की प्रसिद्धि उतनी नहीं हुई जितनी आवश्यक थी। इसका एक मात्र कारण यही प्रतीत होता है कि इन्होंने अपने प्रसिद्धि के लिये अन्य कवियों की तरह प्रयत्न नहीं किया।

छत्रसाल-सैदबहादुर-युद्ध

छन्द

मधु दिन तहाँ मुकाम बजायौ। सुरहौ घाउ चाउ चित आयौ।
छुरी भीर छत्रसाल बुँदेला। सुभट छ सातक आयु अकेला।
सहज सिकार खेल रस पागे। बन बराह मृग मारन लागे।
सैदबहादुर हिम्मत कीनी। खबर जसूसनि सौं सब लीनी।
दल सजि उचकि आनि हकारयौ। खलभल सहज खेल में डारयौ।
ज्यों हरिनन की होत हँकाई। उचका उठै बाघ निरझाई।
त्योंही सैदबहादुर धायौ। डका निकट नगीच बजायौ।
सुनि डका छत्रसाल रिसाने। छत्र-धरम कौ बाँधैं बाने।

दोहा

फौज बहादुर सैद की, परी फन्द में आइ।
वाके थल वीरन दई, गोलनि गोल गिराइ।

छन्द

गिरी गरज गाजै सो गाली। डग डग चमू अरिन की डोली।
मुगल पठान खेत में जूझे। नैरिन ब्यौत चाल के सूझे।
चमकि चाल तुरकनि यौ दीनौ। जीत-पत्र छत्ता तहँ लीनौ।
ह्याँ तैं उमडि बराधा मारयौ। धूमघाट पर डेरा पारयौ।
गोपाचल में खलभल मान्यौ। सैदमनौवर त्यों रिस रान्यौ।
भारी फौज निसान बजाये। धूमघाट पर उमड्न आये।

त्यौं छत्रसाल बाररस बाढे। सनमुख गये जूझ कौ ठाढे।
माची मार रुद्र अनुराग्यौ। बाजन सार सार सौ लाग्यौ।

दोहा

सेल्ह ढकेलनि ठेल दल, पिले बुँदेला वीर।
महा भयानक भाँति लख, पगनि डगमगे मीर।

छन्द

डगे मीर तजि खेत परानै। पिले बुँदेला रन सरसानै।
मुगल पठान हने ज जूटे। सेंद सहर भीतर लौं लूटे।
सहर लूट कीनी मन भाई। गढ के गेरत रहगो राई।
लूटि ग्वालियर मुलक उजार्यौ। हाँ ते दौरि कजियौ मार्यौ।
गिरिवर मारि करै अरि हीनै। कटिया केनर डेरा कीनै।
त्यौं महमद ह शिम चलि आये। सग अनन्द चौधरी धाये।
पिले उमडि तीन सजि गोले। तीन्यौ ओर खग्ग भक भोले।
ते आवत छत्रसाल निहारे। अस्त्रनि उमडि तिहूँ दिस मारे।

दोहा

तीन्यौ गोल दिदार कै फते लई छत्रसाल।
सुधि करि त्रिपुर सहार की, नाचे भूत बिताल।

छन्द

हाँ ते दून टूक कौ आये। भयौ ब्याह त्यौं बजे बधाये।
अति आतक चहूँ दिशि फैले। भये बदन बैरिन के मैले।
हौन फतूह लगी मनमानी। चली चौथ चुकि जग मे जानी।
सुनत चाह कुँवरस मन कीनौ। सबन सग छत्रसालहि दीनौ।
रतनसाह त्यौंही चलि आये। अमर दिवान खबर सुनि धाये।

सब्रलसाह हितु आये कीने। वेनीराइ मिले मनु ल्याने।
धारू अरु कीरति मन भाये। टीप दीवान दीप छवि छाये।
मिले रामजू समर सूरे। पृथ्वीराज बल विक्रम पूरे।

दोहा

माधोराइ बसन्त अरु, उदैभान त्यों बर्न।
अमरसिंह परताप तहँ, मिले चन्द अरु कर्न।

छन्द

अब सब सुनौ साहिगढ वारे। जिन रन मध्य अस्त्र झुक झारे।
आइ इन्द्रमनि मिले अगाऊ। उग्रसेन सम काहि गनाऊ।
जगतसिंह बानैत बुँदेला। रन में करत प्रथम बगमेला।
सकतसिंह त्यौं गुननि गरूरे। दान कृपान बुद्धि बल पूरे।
जामसाह अङ्गद मरदानैं। मनसिब छाँड़ि मिले जग जानै।
आये परबतसिंह प्रबीने। रूपसाह त्यौं रन रस भीने।
देव दिवान प्रेम उर बाढ़े। भारतसाह समर अति गाढे।
चन्द्रहस अरिकुल को घाती। मिलौ सुजानराइ कौ नाती।

दोहा

दूजे भारतसाह त्यौं, राइ अजीत बसन्त।
बलि दिवान के नद द्वै, चित्रांगद जसवन्त।

छन्द

रामसिंह जैसिंह बखानै। जादौराई करन जू जानै।
गाजीसिंह कदेरा वारे। दै करनाल दुवन जिन मारे।
जगत सिंह मुनि कबिन प्रमानैं। त्यौं गुपालमनि परम सयानै।
और अनेक कहा लगि गाऊँ। गनती सत्तर कुंवर गनाऊँ।

केते सगे सोदरे सारे। और पमार अँधेरे भारे।
नाते ममा फुफू के जेते। मिले आइ छत्रसालहिं तेते।
उच्च निसान दलनि फहराने। धौंसा धुनि घन से घहराने।
उमडि चली गोलन पर गोलै। दल के भार फनी फन डोलै।

दोहा

लगन लगे कुल कटक में, तंबू तुंग कनात।
झंडा गडे बजार में, अति ऊँचे फहरात।

रनदूलह-पराजय

छन्द

लागी चमू चढन चतुरंगै। ज्यों जल निधि की तरल तरंगै।
ऐंडदार जितही सुनि पावैं। फौजें उमडि तहाँ को धावैं।
बाला अरु वृन्दावन मारयो। प्रलै पथरिया ऊपर पारयो।
दीनी लाइ निदर निदराई। फौज बहुत राई पर आई।
पहिली पसर रनेही टूटयौ। फाटा कूट दमोयौ लूटयौ।
धामौनी मैं धूम मचाई। जन न और की बचै बचाई।
तब खालिक ऐसी मति कीनी। वाकन खबर साह कों दीनी।
लिखी बहादुरखाँ को ऐसै। बादर पटयो टाकियै तैसे।

दोहा

चहूँ चक्क गमड़े फिरत, बड़े बुँदेला बीर।
अमल गए उठि साह के, थके जुझ करि मीर।

छन्द

कोका खबर हजूर जनाई। यहै लिखी वाकन में आई।
सुनत साह मनम अनखाने। भेजे रनदूलह मरदाने।

सँग बाइस उमराइ पठाये। आठक लिखे मद्दती ठाये।
बिदा भये मुजरा करि ज्योंहीं। बजे निसान कूच करि त्योंही।
दतिया अरु ओंडछौ बगौनी। सजी सिरौज कोंच धामौनी।
उमडि इदुरखी चढी चँदेरी। पिलि पाडौर जुद्ध की टेरी।
ये मुद्दती उमड़ि चढि आये। मनसिबदार तीस ठिक ठाये।
कर्‍यो गढा कोटा पर पेला। जहाँ सुनै छत्रसाल बुँदेला।

दोहा

उमड्यौ रनदूलह सजे, तीस हजार तुरंग।
बजे नगारे जूझ के, गाजे मत्त मतंग।

छन्द

दिन के पहर तीन जब बाजे। लागी लाग मीर गल गाजे।
त्यौं छत्रसाल चढाई मौंहैं। अड़े नव दे भये मिरौहैं।
उमडि रारि तुरकन त्यों माँडी। छूटे तीर उडति ज्यौं टाडी।
त्यौं रन उमडि बुँदेला हाँके। रजक धुँवन धामनिधि ढाँके।
बाजन लगी बदूखे सोईं। गिरे तुरक जे लगे अगोईं।
गिरत हरौल गोल के साऊ। कढि कलार तै ठिले अगाऊ।
लग खान गोलिन की चोटे। नट ज्यौं उछल लाग लै लोटे।
समर बिलोकि सुरन भय कीनौ। सूरज सरकि अस्तगिरि लीनौ।

दोहा

जोत जामगिन म जगी, लागे नखत दिखान।
रन असमान समान भौ, रन समान असमान।

छन्द

पहर रात भर भई लराई। गोलिन सर सैथिन भर लाई।
खाइ घाइ सब स्वान अघानै। लोह मानि तजि कोह पराने।

डेरा कोस द्वैक पर पारे। हिम्मत रही हिये सब हारे।
अडे बुँदेला टरै न टारे। जीते जूझ बजाइ नगारे।
रनदूलह रन तै विचलाये। ह्वाँ तै हनूटूक को आये।
मारि गुनाह मरोरी टोरी। खग्ग झार झागर झलझोरी।
फिरि मवास रननागर मारयौ। औडेरा में डेरा पारयौ।
दल दौरन हरथौन उजारी। धामौनी में खलभल पारी।

दोहा

चौंकि चौंकि चहुँ दिस उठै, सूबा-खान खुमान।
अबधौ धावै कौन पर, छत्रसाल बलवान।

तहवर-युद्ध

छन्द

त्योंही दौर करकरा कूटयौ। आस पास नरवर कौ लूटयौ।
सौ गाड़ी सकलात सलौनी। पातसाह कौ जात पठौनी।
सो ताकी छत्रसाल बुँदेला। लई लुटाइ फौज सों पेला।
सब ही लूट छूट कर पाई। लुँगी मोल मोधुरन लाई।
लूटी रसद साह कौ त्योंही। वाकन लिखी हकीकत त्योंही।
सुनी दिलीस खबर ठिकठाई। सूबा दल कों नालस आई।
रनदूलह डांडे रएऊमा। पठये साह रोस करि रूमा।
लै मुहीम रूमी रिस कीनी। मोट उठाइ अरे की लीनी।

दोहा

फौज जोरि रूमा बढ्यो, बाजे तबल निसान।
छत्रसाल तासौं करयौ, बसिया में घमसान।

छन्द

बसिया में माच्यौ रन खेला। उत रूमी इत बीर बुँदेला।
तुपक तीर सैथी तरवारें। खात सनावत श्रीर हँकारे।
उमगे भिरत जुद्ध रस पागे। कटि कटि गिरन परस्पर लागे।
कढ्यौ कल्यानसाह मन श्राछे। पग परिहार न दोनैं पाछे।
मीर बहबहे उमड़त आये। सनमुख कुटे हटे न हटाये।
गना रूम के तके बुंदेला। वियौ तुपकदारनि कौ पेला।
तिन चोटैं कीन्हीं चितचीती। सारै भई सबनि की रीती।
गनी रूम कौ समर पहारू। बाटन लग्यौ सबनि कौ दारू।

दोहा

भई भीर गलबल मच्यौ, दारू बाटत लेत।
लग्यो पलीता सोढरन, उड्यौ धूम उहि खेत।

छन्द

त्यौंही हला बुंदेलनि बोले। समर खेत खग्गनि के खोले।
लागे मुंह ते मारि गिराये। पिलिपन बीर धुँवा पर धाये।
दारू उड़ै उड़ै अरि ज्यौंही। मारे बीर बुंदेलनि त्यौंही।
रूमी बिड्डरि खेत तैं भाग्यो। छत्रसाल जस जग में जाग्यो।
ज्यों रँग मच्यौ दिली में श्रौरै। दुदिलौ भये साह कित दौरै।
नृप जसवन्तसिंह के बेटा। कढ़े दिली कौं मारिव बेटा।
फिरि जोधापुर धनी श्रन्यारे। अति साह श्रजमेर पधारे।
त्यौं अकबर सहिजादौ साऊ। राठौरन पर पिल्यौ श्रगाऊ।

दोहा

त्यौं प्रपच रचि बुद्धि बल, दुरगदास राठौर।
सहिजादे सौ मिलि किये, तखत लैन के डौर।

छन्द

तखत लैन के लोभ बढाये। पुत्रहि पितहिं बैर उपजाये।
सहिजादौ खगी कर पायौ। तब दच्छिन कौ वाहि चलायौ।
ताकी पीठ साह उठ लागे। दच्छिन कों उमगे रिस पागे।
रूमी भगे साह त्यौं जानै। कारी परी कुल्ल तुरकानै।
बल व्यवसाइ सबनि कै थाके। तब दिलीस तहवर मन ताके।
जानि जुद्ध अमनैक अठायौ। तहवरसौं इहि देस पठायौ।
चढी चमू तहवर की बाँकी। दिसा धूरि घँघरि सौं ढाँकी।
ज्यौं तहवर की सुनी अवाई। त्यौं ही लगन ब्याह की आई।

दोहा

साबर तैं आई लगन, मिले बोल बघान।
दवादवे बीरा दियो, अब हितु भयौ निदान।

छन्द

जब दिन निकट ब्याह के आये। मगल गीत दुहूँ दिस गाये।
तन दल थलदाऊ सँग राखे। लागे करन काज अभिलाषे।
छुरी बरात ब्याह की साजा। तीस सवार सब स्त्र बाजी।
दूलह छत्रसाल छवि छाये। करन ब्याह सानरहि सिधाये।
तहँ बिधि सौं आगौनो कीनी। बाध्यौ मौर इन्द्र छवि लीनी।
लागी परन भाँउरै त्योंही। परी फौज तहवर की त्यौंही।
ऊनी बना दोई बनि आई। दोऊ वरो करी मन भाई।
इतहि भाँउरै सजी सुहाई। उत तुरकनि सौं मची लराई।

दोहा

रन रुपि तहवर खान कौ, मुद मुरकायौ मारि।
पूरन बेद बिधान सौं, लइ भाँउरै पारि।

छन्द

मारी फौज तुरक मुरकाये। तँह सब धाये बजे बधाये।
ब्याही बरी जीति अरि लीनौ। ककन छोडि तुरगम दीनौ।
धामौनी दौरन झकझोरा। फिरि पछौरि सब खरी पिछौरी।
बारी बार मवासी कूटें। गाँउ कलौंजर के सब लूटें।
रामनगर मारयौ करि डेरा। कालिंजर कौ पारयौ घेरा।
रोज अठारह गढ सौं लागे। चौकिन तहाँ घौस निसि जागे।
बाहिर कढन न पावे कोई। रहे सक सकराइ गढोई।
लई रोकि चारिउ दिस गैलै। गढ पर परै रैन दिन ऐलैं।

दोहा

चिंतामनि सुर को तहाँ, कीनौ आइ सुदेस।
अति आदर सौं लै चले, न्योतौ करि निज देस।

छन्द

न्योतौ करि कीनी महिमानी। धन्य घरी सब ही वह मानी।
तातैं तुरी तिलक में दीनौ। उर आनन्द परस्पर लीनौ।
हाँ तै कूच बिदा ह्वै कीनौ। कालिंजरहि दाहिनौ दीनौ।
लरै उमडि तहँ सुभट अन्यारे। घाटी रोकि बीर गढयारे।
छत्रसाल त्यों हल्ला बोल्यो। सगन खेल बुँदेलन खोल्यौ।
समरभूमि अरि-लोथिन पाटी। रोकी रुकै कौन की घाटी।
मारि बनहरी लूट मचाई। धामौनी सौं लई लराई।
पटना अरु पारौलि उजारै। तहवरखाँ पै परी पकारै।

छन्द

परगौ मिलान आइ जब गौने । बरकै तन्नू तनै सलौने ।
दहिनी दिसि उतरे बलदाऊ । जहँ गोली पँहुचे पहुँचाऊ ।
थम्हे अपनी अपनी पाली । परयौ पहार पीठ तन खाली ।
ऊपर सिखर चौंपरा जान्यौ । सो देखन छत्ता उर आन्यौ ।
छत्री भीर कौतुक मन बाढ़े । चढ़ि करि भये सिखर पर ठाढ़े ।
ज्यौं यह खबर जसूसन दीनी । त्यौं तहव्वरखाँ आगे लीनी ।
बखतरपोस सहस दस धाये । प्रलै मेघ से उमड़त आये ।
निकट आइ धौंसा घहराने । हयखुरधार छुटा छहराने ।

दोहा

बड़ी फौज उमड़ी निरखि, रच्यौ छता घमसान ।
चढ़ि सनमुख रनमुख तहा, बरषन लाग्यौ बान ।

छन्द

बरषन लाग्यौ बान बुँदेला । कियौ तुरक दै ढाल ढकेला ।
बखतर पोस बान सों फूटे । नल से स्रतज छाड़ि के छूटे ।
कौतुक देखि जोगिनी गाई । खप्पर भरनि नाचती धाई ।
बिसुनदास तहँ मार मचाई । आप कटेरहि भली चढ़ाई ।
गह्यो पहार बुँदेला गाढे । त्यौं पठान पैठे मन बाढ़े ।
चड लेहु दुहुँ दिसि ठहराने । सूरज गगन मध्य ठहराने ।
घोर सिंहनादन के मांचै । भूत बिताल ताल दै नाचै ।
डेरन खबर जूझ की पाई । सुभट भीर त्यौं उमड़त आई ।

दोहा

चढ़े रग सफजग के, हिन्दू तुरक अमान ।
उमड़ि उमड़ि दुहुँ दिसि लगे, कौरन लोहौ खान ।

छन्द

कौरन लोह खान भट लागे। दुहूँ ओर रन में रस पागे।
सुरतनाल हथनालै छूटी। गरजि गरजि गाजै सी टूटी।
गोलिन तीरन की झर लाई। माची सेल्ह समसेरन घाई।
त्यौं लच्छे रावत प्रभु आगै। सेलहन मार करी रिस पागै।
प्रबल पठान मारि कै साऊ। कढ़्यो मिश्र हरिकृष्ण अगाऊ।
उमड़ि लोह लपटन मन दीनौ। तनके होम स्वामिहितु कीनौ।
बाघराज परिहार पचारयौ। सार पैर रवि-मण्डल फारयौ।
जूझयौ नन्दन छिपी सभागौ। ज्योतन लग्यौ इन्द्र कौ बागौ।

दोहा

कृपा राम सिरदार त्यौं, कढ्यौ धँधेरौ धीर।
बैठ्यौ जाइ बिमान चढ़ि, भानु भेदि वह बीर।

छन्द

उतहि पठान चढ़त गिरि आवैं। इत छत्रसाल बान बरसावैं।
इक इक बान दुई भट फूटै। झुक झुक तक झपट रन जूटै।
बान बेग जगतेस हँकारयौ। त्यौं करवान झरप झुक झारयौ।
घाउ ओड़ि भुज ऊपर लीनैं। उमड़ि पाउ रन सनमुख दीनैं।
गिरे पठान डील त्यों भारे। गोलनि सेल्ह सरनि के मारे।
जथा घाउ छतारे ओढ्यौ। भुजडण्डन रन सिन्धु बिलोड्यौ।
पिले तुरक जे बखतरबारे। ते रन गिरे छता के मारे।
चढे गिरिन सोनित के नाले। धर धमकन धरतीतल हाले।

दोहा

कहर जूझ द्वै पहर भौ, झरयौ सार सों सार।
तेज अगिन कौ त्यौं घटयौ, लोयन पटयौ पहार।

छन्द

चारह बीर खेत इत आये। सत्ताइस घाइल छवि छाये।
तुरक तीन मै खेत खपाये। घाइल द्वै सै बीस गनाये।
मारि तुरक कौ मुँह मुरकायौ। रन में जिजै बुंदेला पायौ।
मुरके तुरक सग्ग फिर खोल्यौ। बल दिवान पर हल्ला बोल्यौ।
बजे नगारे फेर जुझाऊ। रन में रूप्यौ उमड़ि बलदाऊ।
पहर राति भर मार मचाई। मुरक्यो तुरक उहां खम खाई।
ओढि अरिन के ढाल ढकेला। भलौ लरयौ बलरुरन बुँदेला।
खर्भरि खेत तहबर बिचलायौ। सूबन के उर साल सलायौ।

दोहा

घले सात सूबानि के, धक्कनि हले पठान।
दियो भाल छत्रसाल के, राजतिलक भगवान॥

,

———

श्रीधर

कवि श्रीधर उपनाम मुरलीधर का कुछ भी विशेष परिचय अव-गत नहीं है। इन्होंने अपने सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है। कवि-विनोद-पिंगल में कवि ने लिखा है:—

श्रीधर मुरलीधर कियो, निज मति के अनुमान।
कवि विनोद-पिंगल-सुखद, रसिकन के मनमान॥

कुछ विद्वान् श्रीधर तथा मुरलीधर को भिन्न भिन्न व्यक्ति मानते हैं किन्तु जंगनामा पढ़ने से ज्ञात होता है कि ये दो नाम एक ही व्यक्ति के थे। ये प्रयाग-निवासी थे। इनकी रचना का एक संग्रह "रत्नाकर" जी ने प्रकाशित किया था। उसमें जंगनामा तथा कवि-विनोद-पिंगल के अतिरिक्त एक संगीत-ग्रन्थ, नायिका-भेद सम्बन्धी ग्रन्थ, तथा एक जैन साधु की प्रशंसा में एक ग्रन्थ पाया जाता है। श्रीधर जंगनामा के कारण ही प्रसिद्ध हैं।

जंगनामा की रचना सं० १७६९ वि० में हुई। इसमें जहाँदारशाह तथा फर्रुखसियर के बीच हुए तीन युद्धों का वर्णन है। इन युद्धों का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है। प्रथम युद्ध भरवारी स्टेशन, जि० इलाहाबाद ई, आई, आर. के पास आलमचन्द नामक गाँव में हुआ था। द्वितीय बिंदकी (फतहपुर) तथा तृतीय सिकंदरा (आगरा) में हुआ था। 'जंगनामा' का सारांश नीचे दिया जाता है: -

बहादुर शाह के चार पुत्र थे (१) मौइजुद्दीन (जहादार शाह) (२) अजीमुश्शान (३) रफीउश्शान (४)

ऐतिहासिक-सदर्भ शाहजहाँ। बादशाह का विशेष प्रेम द्वितीय पुत्र से था। उनकी मृत्यु के पश्चात राज्य के लिये चारों लड़कों में झगड़ा हुआ। शाह के पास लाहौर में अजीमुश्शान ही था उस पर तीनों भाइयों ने आक्रमण कर दिया। अजीमुश्शान का हाथी एक गोला खाकर ऐसा बिगड़ा कि पीलवान तथा, अजीमुश्शान के साथ रावी नदी में डूब गया। तीनों भाइयों में बराबर राज्य बाटने का विचार जहादार शाह को पसन्द न आया और उसने दोनों भाइयों पर आक्रमण कर उन्हें मार डाला। वह दिल्ली आया। उसे यह सूचना मिली कि अजीमुश्शान का द्वितीय पुत्र फर्रुखसियर पटने से उसपर आक्रमण करने दिल्ली आ रहा है। इसपर उसे रोकने के लिये जहादार शाह ने अजीजुद्दीन को पचास हजार सेना देकर भेजा। इन्हीं युद्धों का जगनामे में वर्णन है।

फर्रुखसियर जहादार शाह से युद्ध करने के लिये अपनी सेना तैयार करता है और यह सुनकर बादशाह भी

सारांश अपने पुत्र को ५०००० सेना देकर आगरे की ओर भेजता है। दोनों सेनाओं में तीन स्थानों पर युद्ध होता है:—

प्रथम युद्ध इलाहाबाद जिले में भरवारी स्टेशन के पास हुआ। शाही सेना में कुली अखार खां, जुलफिकार, जैनदी खा, फतह अली आदि उमराव सम्मिलित थे। राजा छबीलेराम, आजम खा, सुल्तान कुली खा तथा सैयद फर्रुखसियर के साथ हुए युद्ध में फर्रुखसियर के साथी जीत गये।

द्वितीय युद्ध बिदकी में हुआ। इसमें मुख्तार खा, जो जहादार शाह की ओर से लड़ रहा था मारा गया। मोहम्मद खा बगश तथा

सादिर खां फर्रुखसियर की ओर से लड़े। कोकिलताश खां ने कुतुबुलमुल्क को पकड़ लिया। जुल्फिकार को नवाब सर बुलन्द ने पकड़ लिया और रफीउलकदर मारा गया। विजय फर्रुखसियर की ही हुई।

तृतीय युद्ध आगरे के पास सिकन्दरा में हुआ। शेख सैफुल्ला ने खूब युद्ध किया। दिलाजान की धमकी से हलीम खां डरकर रणक्षेत्र से भाग गया। फर्रुखसियर की सेना ने अजीजुद्दीन की सेना पर बड़ा भारी आक्रमण कर मार काट मचा दी। अजीजुद्दीन की सेना तितर बितर हो गई और जहादार शाह पकड़ा गया।

ऐतिहासिकता

अरविन साहब ने 'जगनामे' को अपनी टिप्पणी के साथ बगाल एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित कराया था। उसमें जगनामे की कुछ ऐतिहासिक भूलें दिखलाई गई हैं।

आलोचना

कवि ने कई स्थलों पर युद्ध का सजीव चित्रण किया है उदाहरण नीचे दिया जाता है।

मिल चारि हूँ ओर सूबे गरूरी। जिन्हें चारकै शत्रु की फौज चूरी ॥
कहा लौं कहौं फौज में सूर राजै। किते कौ बली लै बदूखै गराजै ॥
सबै सूरमा चोर बाके बनैते। सजे साज बाजी चढे हाक देते ॥
कहै फौज सों डाकि घोरे धपावै। किते कूद कै कै मुमाले फिरावै ॥

इसी प्रकार सिकन्दरे के युद्ध के अनन्तर जब अजीजुद्दीन भागकर दिल्ली पहुँचा तब जहादार शाह की महफिल का जो चित्र कवि ने अकित किया है, दर्शनीय है —

यह सुनत ऐजुद्दीन भाग्यौ फौज सग सबै भगी।
वह सकल मजलिस मौज में इकबारगी दुख सों पगी।

तब लगो मुख विपसो बिरी अरु गीत गारी सी लगी।
अँग अमल की लालो घनी तदबीर श्री हर रिम जगी।
कहुँ परी दिनगत ढोलकी सुध ताल घुघरू की गई।
सब गयो मद छुटि छाकमों रह ऊहि श्राहि दड दई।
हहरे कलावँत गिर गये मेहरान के मुरछा भई।

भय का इतना सजीव चित्रण करने मे बहुत ही कम कवि सफल हुए हैं। छन्दों के चुनाव में कवि सफल नहीं हुआ है। कवित्त, भुजग प्रयात तथा छप्पय तो वीर रस के अनुकूल हैं किन्तु हरिगीत छन्द वीर रस के उपयुक्त नहीं। कहीं कहीं निरर्थक शब्दों का उपयोग भी कवि ने खूब किया है :—

कटारनि की कराकरी तरातरा तीरकी।

इसमें 'कराकरी' तथा 'तरातरी' शब्द का कोई अर्थ नहीं है।

इनकी रचना में यति भग दोष का बाहुल्य पाया जाता है :—
गिरिधर लाल बहादुर वीर समसेर गहि कर पातशाही रा पनाखौ
इसमें 'सम' तथा सेर को पृथक पढना पड़ता है। एक और छद देखिये :—

अति दलभर दुरत दुहमिस दवत, गडमड मवत धकनि मकै ॥

इसे 'दुरत पवत, सन्धत करके पढने से इसकी लय ठीक बैठती है। कवि की प्रतिभा तथा चमत्कारपूर्ण रचना देख कर इन दोषों का उत्तरदायित्व कुछ अशों मे हम प्रतिलिपिकार के सिर मढ सकते हैं।

कवि की रचना से ज्ञात होता है कि कवि श्रादर्शवादी नहीं है। वह धन प्राप्ति के लिये, एक जैन साधु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक बनाने

के लिये तैयार है। यदि आश्रयदाता की प्रवृत्ति शृङ्गार की ओर अधिक है तो कवि ने भी नायिका-भेद का ग्रन्थ लिख मारा। ऐसे कवि समाज में मार्ग दर्शक का कार्य नहीं कर सकते।

भाषा — जगनामा भाषा सुसगठित, परिष्कृत तथा व्याकरण सम्मत ब्रज-भाषा है। यह वीर-रस के अनुकूल है। लाल, मान आदि कवियों के समान सूची न गिनाने से श्रीधर की भाषा में कुछ गम्भीरता आगई है। कहीं कहीं सूदन के समान शाब्दिक-जाल से भावना व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है :—

भट्ट ठट्ठ उट्ठ भट्ट हौर आभट्टे हरि।
उद्धत जुद्धत क्रुद्ध सुद्ध जिमि केहरि।

कहीं कहीं डिंगल के रूप भी मिलते हैं :—

परी पक्खरैं झालरा झूल झाँपै।
सजे पक्खरा अक्खरा लक्ख घोरे।

किन्तु इस प्रकार के उदाहरण अधिक मात्रा में नहीं हैं। इनकी भाषा पर अवधी तथा बुन्देली का भी प्रभाव है।

दुहुँ ओर फौजै साजि यों गलगाजि भट ठाढ़े भये।
खुर धार मार दुधार सों घटि धार सूरज रूपए।

इसमें अवधी का पुट दिखाई देता है।

'मित ओपची तापची या घनेरे' मे "ओपची" शब्द बुन्देली का है। कुछ सज्जनों ने इससे भरनी का शब्द माना है। इस शब्द का प्रयोग पद्माकर, लाल आदि बुन्देलखंडी कवियों ने किया है। यहाँ, यह शब्द विशेषण है।

कहीं कहीं कवि ने यमक-रूप में तुच्छ शब्दों का प्रयोग किया है :—

(अ) मृग के तन म्यान दौरा। मनहु उनको खान दौरा॥

(ब) जे सूमन दान देत हैं। जिय देतभागे ठग ठगे॥
जे दान निरखें दान में। जियदानहू में जगमगे॥

इसमें 'खान' की अपेक्षा 'दान' का यमक अधिक सुन्दर है। कहीं कहीं अनुप्रास की छटा अच्छी दिखाई देती है किन्तु कवि उसके लिये प्रयत्न करता हुआ नहीं प्रतीत होता।

जंगनामा

फर्रुखसियर-जहांदारशाह-
युद्ध-वर्णन

छप्पय

फर्रु कसियर समरथ शाहजहाँ दल सज्ज्यों।
पक्खर पक्खरि बहुल बार बारन दल गज्ज्यो।
श्रोधर धोंसा धमक घोर दसह्रँ दिसान भर।
चमकत नेजे फह्‌र बान नैरख निसान बर।

भुव दलत मलत जेहि दिसि चलत, सक्क सोर चहुँ अक्क हुव।
अति अक्क धुधरित धूरि मडि आफ्ताब भुव लोक धुव।

कौन सबल बल उथपि निबल बलकाहि सुथप्पिहि।
केहि महीप को मुलुक मीडि अब काहि समप्पिहि।
काहि पाय गज रज्ज करिहि केहि पील पीठि पर।
खग्ग धनिहिं केहि थरिहिं ढरिहि केहि तमकि तेग तर।

अबहि मॅडहि खॅडहि सो केहि, बड बाढ गढपति थरथर्‌यो।
सजि शहशाह फर्रु कसियर, सो अब श्रोधर हम पक्खरयो।

भुजंगप्रयात छन्द

दुहूँ ओर साजे महा मत्त दंती।
सजे पक्खरों लक्खकी पूर पत्ती।
गडादार घेरैं सिरी कट्ट बटा।
गर्जें मेघ मानो बजें घोर घटा।

घटा श्याम सी दीह ता जिंघिमा पै।
परी पक्खरें झालरा झूल झाँपै।
सजे पक्खरो भक्खरो लक्कर घेरे।
मना भानु के रथी जोर जोरे।
चले चाह सौं चंचले चाल बाँका।
दरयोइ तुरक्की तजीले इराकी।
करै पौन सी पौन की पायदारा।
अरब्बी गरब्बी खुरीले खमारी।
नचे नाटकी से पटी पै चन्हारी।
कछी पीठ पूठों पले नीर राजी।
सजे सदली और समुदे सुरंगे।
कबूता बने फूलबारी सुअंगे।
मजे आंज सजाफ नीले हलीले।
मुसुक्की सजे पच कल्यान पीले।
बड़े डील के कान छोटे नवीने।
सुचौरी खुरी चाकरी जासु सीने।
बड़े चंचलें नैन पै, मुकर साँच।
खुरी पाल झूमै घनी दोष बाँचे।
मजे सात्तियों चारिहूँ ओर योधा।
सजे साज लोहा बँटो दृत्त क्रोधा।
पिलैं चारिहूँ ओर सूबे गरूरी।
जिन्हों वार कै शत्रु की फौज चूरी।
कहाँ लौं कहौं फौज में सूर राजे।
कितेको तली लै बहादुर गराजे।
सजे सूरवाँ वीर बाँके बनैते।
सजे साज ताजी चढ़े हांक दै ते।

कढे फौज सों डाँकि घोरें घपावे।
किते वृह कै के सु भाले फिरावें।
लख्यो दूसरी ओर गाढो अनी को।
चढो कोपि के पूत दिल्ली धनी को।
दुहूँ ओर ठाढी चमू बाहि रावे।
दुहूँ ओर की फौज ठाढी बिलौके।
मुफर्रुकसियर शाहि के जोर सूबे।
पिले चारिहूँ ओर साजे अजूबे।
बजी दीह धासानि आवाज अच्छी।
चहूँघा लखीजै बरच्छी बरच्छी।
छुटैं त्यो अरावे उठी धूरि भारी।
धुवाँ की उठी घुघुरारी अँध्यारी।
चढे रोशनी ऊपरों बान छूटे।
मनो आसमानी महा लूक टूटे।
पिन चोट को खोट न चारि फेरे।
पिले आपची तोपची यों घनेरे।
चहूँ फौज की वीरता की बड़ाई।
चमूँ शत्रु की चूर कै कै हटाई।
चलो उत्तरी फौज य गर्व ऐंठे।
महा मारचा भीडि के पेलि पैठे।
लख्यो एजुदों बार छूटो दुवारो।
परी भाग भाग्यो तकै कोह नारो।
सँभारे न घोरे रथी हेम हाथी।
सँभारे न कोऊ कछू संग साथी।
किहूँ छाँडि घोरैनि डारयो हथ्यारा।
किहूँ भाग सों आगेही पन्थ धारो।

करै कोऊ हाहा परै कोउ पैयाँ।
चले रामरे गाँव भैभा बनैयाँ।
घुसे बीहरो भागि केते निकामी।
किते को करे बन्दि नामी निनामी।
किते को गुमानी गरूरे निछाए।
बडे हौसिला कै तिया संग लाए।
तिन्हैं छोडि भागे छुटी चाल वाकी।
गये फूटि ताले फटी हाँस नाकी।
सु रोवै असीले फसीले सहेली।
पुकारे खुदा आय दै कौन मेली।
गरोडा वरी भाकि भाँकै सुरोसैं।
सबै मौजदी कों भरे नैन कोसै।
कहूँ वैदरा की वटी धूम धाई।
कहूँ बुच लुचानि लै आग लाई।
बरैं छावनी छाह डेरा सुभारी।
महाभीम फैलो धुवाँ की अँध्यारी।
कहूँ आँच के तेज स लाल फूटें।
कहूँ वैदरा बीर बाजार लूटैं।
कहूँ बाँस की गाँठ फूटैं पटक्कैं।
चटापट्ट पायान भारी पटक्कैं।
लुटैं केसरौ दाख दारयो छुहारो।
लुटे चारु कस्तूरिका घन्न सारा।
कहूँ होत मोती बरैं चूर चूना।
कहूँ लै लूटेरे करैं मोट दूना।
जरैं चार आचार चूरी चिरौंजी।
कहूँ कौलगट्टे कसेरू करौंजी।

जरे औ लुटैं चीर चीरा जरी के।
परे भेंट के मोट लूटैं परी के।
भये बेदरा जौहरी लूटि लूटै।
छिटे ज्वारि लौं मोट मुक्तानि छूटैं।
किती तौ जरै हाय हा रट्ट लागी।
किती कामिनी दामिनी रूप भागी।

हरिगीता छन्द

दुहुँ ओर फौजें साजि यों गल गाजि भट ठाढ़े भए।
बाजे नगारे 'फीलवारे धम्म धुनि ध्रुव कम्पए।
खुर थार भार दुधार सों छुटि छार सूरज झंपए।
तहबहलकी झुकि मेरु हहलत पहल सम भुव कंपए।
दुहुँ ओर फौजनि ओज सों रन मौज देखा देख भो।
हथ नाल तोपें बान जाल विशाल गरज अलेख भो।
घोर नाल घोर अँदोर दुहुँ दल रह कलास विशेष भो।
फर बजी बहकि बंदूख अगनित तित बनैतनि तेख भो।
कड़ कड़ाकड़ सों अरावे छुटत टपकनि टाप की।
चहुँ ओर घोर घटा मढ़ी घुवधार तोप तराव की।
घर बान नगरत, बीजुरी सन गोल ओला थाप की।
नहिं पहर एक पिछानि काहू रही पर की
छुटि गयो सो धुँधुकार त्यों मिनुसार सों दुहुँ
ललकार वीर अमीर सोवत चौंप सरकर

भट लालमुख मुख भरे पीरे रंग कायर हलहले।
जिमि देखि जाचक दानि सुखमुख सूम दुखमुख वे कले।
इत उत दुहूँ दल के जिते जे बीर बीर नीरी गिरे।
ते करन साके वलिक बाँधे हाँकि भट भट सों भिरे।
समसेर सरकि सिरोह वार सँभार साँवत सिर चिरे।
दोनों भमाभम भमकि भर भर भूमि भूमि किते गिरे।
तहँ दौरि अगवर ह्वै सिधारयो घनी मुशरफ मीर है।
तिन मीर बुजरुक मीर अशरफ तासु वीर सुवीर हैं।
तब जुल्फिकार गह्यो महाबल जुल्फिकार अमीर है।
भमकी दुधारनि सार सार दुधार धीर धीर है।
तहँ अलाअसगरखाँ महाबल महति पहुँचो आइ कै।
फिर जैनदीखाँ बीर पहुँचो तेग अग अँगाइ कै।
फत्तहअलीखा सफशिकिनखा भये शामिल आइ कै।
पहुँचा हुसेनअलीयखा धौंसे हिरौल बजाइ कै।
सरदार तितहिं हुसेनखीखाँ लै अमीरन संग है।
रन भिरयो जुल्फिकारखा हमराह गाडे अंग है।
फर मैं फकाफक हात तेग कटार कटकतु फग है।
तहँ तीर तरकस सौ खाली भये लाख निखग है।
सावँत सैद हुसेनखा खा जोर जैतक सत्य हैं।
तहँ हत्यहत्यनि मत्यमत्यनि लरति लत्थनि पत्थ हैं।
गहि जमर हत्थर करै तत्थर परे विरथ वितत्थ हैं।
उदि सत्थ वार समत्थ हे एक मत्यगे बिन मत्थ हैं।
तब सैद अशरफ अगहरौ भाई मुशर्रफ मीर को।
समसार तासु अँगावतौ अँग अग दो रन धीर को।
हेरा सुहूरनि हाथ प्यालो हरखियो हिय बीर को।
लीनों शहादति साहिबी मुरसीफ बुद्धि गभीर को।

पेल्यो मुशर्रफ मीर पीलनि पीलवान जुझाइ के।
तब अली असगरखा पिल्यो फर धार अग अगाइ कै।
सुबजैनदीखा गहि तुनव्वी कर कमान चढाइ के।
फत्तहअलीखा शफशिकिनखा भये अगहर आइ के।
इन सबनि जाइ अँगाइ धायनि लखि लगाई जूझियो।
गिरवान गहि गहि जात रहि रहि एक एक अरूझियो।
पैली फुलगै सार सारनि वजत परत न सूझियो।
फत्तहअलीखा शफशिकिनखा जैनदीखा जूझियो।
उत जुलफिकारहि खान के सँग के अमीर किते गिरे।
ठहराइ सकत न पाइ लखि दल आपु आइ किए धिरे।
हुस्सैनली खा भो उतारू पिले जगी मुँड चिरे।
उत भो उतारू जुलफिकार दुधार दोऊ भट भिरे।
दोऊ अमीरल उम्मराव मिरे दोऊ तेहा भरे।
हातिम दोऊ रुस्तम दोऊ कायम दोऊ रन करकरे।
शमशेर सरकि सिरोह की सांवत ये दोऊ ल्‍रे।
घन धाइ खाइ अँगाइ अगनि अग्ल है दोऊ अरे।
मुखत्यारखा जावाँजखा जानिसारखा आढोप कै।
सादिक सु लुतफुल्लाहखा आयो महाबल चोप के।
फिर दिल दिलेर अलीय खा उमराव केतक कोप कै।
जिहिं ओर आजमखा तहा पर लियो फौजनि छोप के।
तब मारु मारु सपारु हा हाँ हा दुहूँ दल है रह्यो।
राजा छबीलेराम आजमखा वली कर वर गह्यो।
मुलतौं कुलीखा सैदशेखर सुखियतखा दिस मरयो।
फिर नेक कदम फतेह कर श्रीधर सुकवि जग जस लह्यो।
तहँ पिले नखतर पोस रोस भरे महा धमकी मही।
गिरवान गहि गहि जात रहि रहि हहँ हहँरि है रही।

को गने तरप्फन तीर की नर बान बरसन भर सही।
तरवारि तैं तह वार त्यो अगवत चलावत हरसही।
तहँ कँपत कायर गात कदली पात बात मनो लगे।
जे सूम दान न देत है जिय देत भागे ठग ठगे।
जे दान निरखे दान में निय दान हू में (जगमगे।
मुख लाल रंग प्रसन्नता हियुँ लाल रंग मनो रंगे।
राजा छबीलेराम जो नगा महाबत जूझियो।
मैं मेत मुख रुख फिरत लखि नर चार मन मँह बूझियो।
तब आपु दै कल दै अँगूठा जार चरत असूझियो।
रनथभ पीलहि थाँमि पेलि लगाइ रारी लूझियो।
राजा छबीलेराम नू को खेत सजि फौजे भली।
रन मडयो रैयाराय राव गुलाब राय मही हली।
मुखत्यारखा बलवान की चतुरंग पृतना दलमली।
मुरत्यारखान समेनि हाथी साथ जूझ्यो तेहि थली।
तब राज श्रीगिरधर बहादुर सुत बहादुर श्री फबै।
फत्र कौल हूलि हला किया दौरे महादल के सबै।
दप कियो रैयाराय राव गुलाब राव जहा जबै।
सरदार सिगरे हाँक दै दौरे दिलेर तहा तबै।
भगवन्तराय दिवान कायथ बीरवर काकोरिया।
तसु नदराय सुवस गहि किरवान दर बर दोरिया।
दप कियो बेनीराम नागर नौनिहाल अगोरिया।
फिरि शुजा सैद इमाम सेख सुपीर महमद पीरिया।
नर सूर सर बानी वली अफगा वतन चिहि टौलिया।
किरवान अहमदखा गही, वा फौज फर नागे लिया।
फिरि सैद सुब शाकिर महम्मद मीर जिहिं रन लै लिया।
जसु वतन श्रीलमगोट रो सफजंग में जस रैलिया।

दौरयो गुलाब माहैयुदींखा बीर आजम खान को।
दौरयो वली सुलताकुलीखा जिनै जस किरवान को।
रन मड्यो शेरु रसूखियतखा जाहि सम बलवान को।
हरी कदम फत्तह नेक कदम जु देग तेगहु बान को।
नव्वाब आजम खा तहा फर भूमि हाकि हला कियो।
मुलताकुलीखा बागवीर रसूखियतखा हूलियो।
भनि सुकवि श्रीधर नेक कदम मु फौज गुर गाडो हियो।
तहँ जबर जानीखान पर झर झरनि कै वर बरखियो।
नव्वाब आजमखा महाबल जबर जानीखा भिरो।
रह सत्थ आजम खा वला अँग अग घन घावनि घिरो।
शमशेर सर सर तीर तर तर मुख न काहू का फिरो।
तहँ हसित साथो सरथ हाथी जुझि जानीखा गिरा।
इतके भये सरदार साथी सहित सेर मुधाइ कै।
उनके किते जूके अरूझे रहे लोह अघाइ कै।
नहिं लरत चलत न नर परे दोऊ अरे अरराइ कै।
वे लाख ये न हजार पूरे रहि रहे ठहराइ कै।
तब सैद कुतुबुलमुलुक बीर अमीर मनि रेला कियो।
बगश महम्मदखान शादीखान कर कर बर लियो।
रन काज राजा रतनचन्द महाबली हिय हरखियो।
जै कृष्णदास दिवान निज मुद्दी अलीखा को लियो।
पुनि सैद अनवरखा समुद्दर खा सभारी तेग है।
मजूर तैयब तरब अरबनि यादगारो वेग है।
सरदार बारहै बार रुस्तमदस्त सैद अनेग हैं।
ये सैद अबदुल्लाहखान रिकाब तेग फते गहै।
इत कियो हाकि हलाक दूनौ आनि उन आगो लियो।
बलवान कोकिलताशखा तसु बीर आजम खा कियो।

नौ शेरखान जुझार अतुल गमार हाक तहां ,दिया ॥
कल लेन देत न रहकले इथनाल घन धुरनाल है।
तूफान कहर तुफग की फहरान बान विशाल है।
तहँ तीर सलभ समूह सम सुरलोक तर सर जाल है।
असमान भानु विमान गा रुकि भयो धुधूकाल है।
तब बीर बीर निरी निरे मनु गहबरे भट भट भिरे।
बजि उठो मारू मारु मारु पुकार करि करि मुरु भिरे।
बानैत गव्वी है अरब्बी बीर गव्वी कर घिरे।
तहँ होत हृद फ्काफ्की फर मुरत न काहू पै फिरे।
तब गहे कुतुबुलमुलुक के बर उतरि काबिलताश खा।
बगश महम्मदखा इतै उत बीर आजमखान त्या।
इत सूर सादीखान उत नौशेरीखाँ उनकौकखा।
भट भिरे एकहिं एक ज बनिरो गिरे दुहूँ परवा।
उत सैद राजे खान अब्दुस्समद अली बाग लियो।
इहिं ओर राजा रतनचद गयद चढि रेला कियो।
सरदार इत उत के भिर रन लोथ पत्थनि पै बियो।
तरवारि तीर तुफग सागि कटार कै बर बरखियो।
जय कृष्णदास दिवान निजमुद्दीअली खा का बढो।
तब सैद अनवर खा समुदर खान अगहर ह्वै कढो।
मजूर तैयब तरर साहब राय रोस महा मढा।
लखि पिलनि कुतबुल मुलुक की सब पिलत रन रस रुचि चढो।
चहुँ ओर फौजनि फौज सों मन मौज मारु मढा परी।
हथियार भार दुधार भर मनु मघा मेघन की झरी।
फिरि फिलम कुडि छुरी छुरा क्रिरि गई बखतर की करी।
करि मार मार सभार यार सभारु सुनियत ललकरी।
घन-घटा घोर घमड सो सम घुमडि कर फौजैं रही।

धोसे धोकारत गाज गहि तरवीर चमकि छटा सही।
झर तीर गोलिन वार गोला परत ओला से तही।
महि मची मेदन गृद कीच कृपान सैयद जब गही।
मद भरे भ्रमत खरे अघाइ अघाइ करिवर थरि अरै।
सिर सरत श्रोनितधार मनहुँ पहार सो झरना झरै।
बढ़ि चली लोहुन की नदी लहरें लसैं कहि को तरै।
तेहि तीर दलदल मास को वलठान काहू को परै।

कवित्त

फौजबल भुजबल मन मन गूराबल,
श्रीधर हरीफन हरषि हहलावतो।
साहेब सर बुलंदखाँ नवाब करि करि,
परथ के से हत्थ महाभारथ मचावतो।
जहाँ शाह मौजदी रफीउलकदर कूटि,
जेवर जुलफिकार खाँनै बाँधि ल्यावतो।
होतो हम राह लाहानूर के संगर तो,
अजॉम सौं अजीम पातशाही कौन पावतो।

सनमुख शाह जू के साजि सेन चारों अंग,
सैद अबदुल्लहखाँ वीर आयो वल में।
बाजि उठ्यो मारू मारु मारु भो अँदोर जोर,
हाँके फील बाँके पेलि पैठे रेलि पल में।
श्रीधर भनत दोसतलीखाँ अँगाइ धाइ,
मुन कै चलाए भट वैसे चलाचल में।
वाह वाह कहैं पातशाह औ सिपाही सबै,
वाह वाह रह्यो है सचत दुहूँ दल में।

छप्पय

श्रीधर दलबल प्रबल लखि लोक पाल रह लज्जि।
महमद सालेह बीरजू चढत कटक बर सज्जि।
सज्जदल रनकज्ज जनप्प समज्जअयबर।
बग्गग्गहनि मतग्गग्गननि, उतुग्गगिरिबर।
रग्गगति सुक्कुरगाग्गवन तुरगग्गति गुर।
पच्छद्भर थिर कच्छक्कर सुलच्छम्भर पुर।
लच्छ भट्ट टट्टिय चढ्यो महमद सालेह ज्वान।
धुजा बान झलकै बजै उद्धद्धुनि धुर ध्यान।
उद्दद्धुनि धुर ध्यान द्धुकि सन युद्धज्जै भर।
लग्गब्भभटरख दक्खक्खुम सुरियक्खक्कै कर।
वार ब्बलिय उछारम्भरिक्खग्ग बाहब्बल किय।
बानब्बिकट कमानक्कठिन. कृपानड्डुर लिय।
कर लिय खग कोप्यो बली महमद साल ज्वान।
अरि पै चढि गढ मढनि पर कियेउ सुकोपि पयान।
कोपप्पकरि पयानप्पथि घन ब्बानद्दलकत।
लच्छच्छहरि बरच्छच्छबि बर रवच्छच्छलकत।
युद्धज्जुरत सकुद्धभ्भटरण उद्दद्धमकिय।
गाहक बलिय उछाहम्भरि खग बाहब्बल किय।
खग्गगाह बलकिय बली महमद सालेह बीर।
दुवन ठट्ट कट्टिय भखो श्रोनसद भरि नीर।
श्रोनसद भरि नीरम्भरित गभीरम्मलकत।
लुत्थत्थिरन उलत्थ जलजिय जत्थत्थलकत।
बीचच्चलन नगीचब्बलहर बीचच्चमकत।
मुड्म्मरि करि कुम्भभ्भरत मुअम्भभ्भमकत।
महमद सालेह बीर कोपि भारी रन मड्डेउ।

अरि की प्रतनै प्रचंड खड्ग खड्गन करि खड्डेउ।
गीध गूद बेताल मास इर मुंड-माल लिय।
रुहिरय रुहिर अपार पाइ भैरव गलगाजिय।
तकि शत्रु सूर को ग्रास कर श्रोन सिन्धु गजन कियो।
लखि परव कृपानी रावरी मनहुँ दान उत्तम दियो।

कवित्त

फौजनि की घटा की घमड घोर घेरु करि,
मौज दीन मघवा के मत में उछाह भो।
तोप गरजत तरवारि बीजु तरजत,
वरषत बाननि अचल चार्‌यो राह भो।
तब गिरिवर कर धरि गिरिवरधर,
श्रीधर भनत ब्रज-मण्डल की छाँह भो।
अब गिरिधरलाल बहादुर बीर,
समसेर गहि कर पातसाही को पनाह भो।
मार्‌यो जोर जंग रंग आजम अजीम जू सों,
गालिब गनीम आयो महमद गरूर है।
श्रीधर सरबुलन्दखां नवाब दौर के,
हिरौल ही हटायो कीनों चमू चकाचूर है।
मारि खानि खालि में विदारि राउ दलपति,
गंजेउ जुलफिकारखान को गरूर है।
वाह वाह करे पातसाह औ सिपाह रही,
सही समसेर तेरी शाहि के हजूर है।
जहाँदारशाह शमशेर जेरे, जेर करि,
जहाँ शाहि रफीसान की ही कौन सी तथा।
आजम के सगन से जग में हरायो त्यो,

जुलफिकारखाँ को फेर लावतो चढ़े पथा।
श्रीधर मरबुलन्दखान किरवान धनी,
रुस्तम के काम के बढावतो बड़ी कथा।
बार बार कहै पातशाह अफसोस करि,
हाय हमराह वो अजीमशाह के न था।
श्रीधर फरूकसाहि मौजदीं भिरे हैं दोऊ,
पूरो नेक कदम कों करम अलाह को।
कीनों खग वाह मोगलनि के दलनि भों,
हिरोल की पनाह जाके कोप की पनाह को।
गालिब गनीम गाज गंज मगरूरनि को,
गरव को दलिक गजब गुमराह को।
देखै पातशाह उत शाह पायो निज दले,
वाह वाह करत सिपाह पातशाह को।
भारी पातशाह दोऊ आगरे अगारी लरैं,
धौंसन की दुहूँ ओर श्रीधर धुकार है।
बाजे वीर वीर गोला बान तरवारि तीर,
बाजे सार सार होत सोर मार मार हैं।
शेख सैदल्लाह अलेल रन कीनो कैई दिनो,
जुगनि के भूखे मसहारिन अहार हैं।
घाय खा ये बेसुमार पैठि दल अरि के सु,
मार तें गिराये वीर बाके बेसुमार हैं।
बखतरपोस पखरैत फौलखारन को,
कारी घटा भारी ज्यों पयोद प्रलैकाल को।
श्रीधर भनत गोला बान सर भर भर,
बरखत थाँभे को करैरी तरवार को।
दिलाजाक झपटि हलीमखाँ बरग जाइ,

दल मिडि मारयो मौजदीन विकराल को।
श्रोनित सलिल-तट नाँचै प्रेत पहपट,
घट घट घूँटै कर खप्पर कपाल को।
इत गल गाजि चढ्यो फरुकसियर शाहि,
उत मौजदीन करि भारी भट भरती।
तोप की डकारनि सों वीर हहकारनि सों,
घौंसा की धोकारनि धमकि उठी धरती।
श्रीधर नवाब फरजदखाँ सु जग जुरे,
जोगिनी अघायो जुग जुगनि कों बरती।
हहर्‌यो हिरौल भीर गोल पै परी ही तू न,
करतो हिरौलों तौ हिरौले भोर परती।
मार्‌यो मौजदीनै फर विफरि पलक बीच,
कीनो मौजदीन को कटकु अड़ अड़ है।
मीडि गड़ आजम अजीम अजमति गड़,
कुच्यो जटवारे के सकल मढ़ी मट है।
श्रीधर भनत महाराज श्री छबीलेराम,
तेरे बैरी बाँची काहू सूर की न सड़ है।
जीत्यो च्यारो ओर मेरी फिकिर सों कीजे जोर,
ऐसे महाराजा सों गहति गाढ़ों गढ़ है।
फिर मएड्यो श्रीधर छबीलेराम राजा,
पानशाह कों हिरौल पातशाहत को पाहरू।
तोप को तरापैं तोरि गोला कों गुलेल गनि,
पेलि दल गार्‌यो मौजदीनै गहि गाहरू।
चके हरि-हर 'ब्रम देखि आतपत्त थंभ,
जैत रन खंभ वीर विक्रम उछाह रू।
सुरुखरू आप भयो आबरू दिलीस पायो,

माहरू रफाक भा मुस्त्याफिर सिपाह र।
भालनि सा भाला भिर्‌यो बरछा सा बरछानि,
खरे समसर समसेरनि सुरग में।
तीरन को कीनो तन तीरनि तुनीर तोर,
तोरादार जोरन न पावत तुरग में।
जग सुलतानी म कहानी ऐसो कीनो काम,
श्रीधर छबीलेराम राजा रन रग मैं।
साढे तीनि हाथ कद दस हथा हाथी चढ्यो,
दाइ हाथ होत हैं हजार हाथ जग मैं।
श्रीधर अगाई देखि फरुकसियर जू की,
आया मत्त मौजदीं अनेक अभिलाख कै।
घरिकु घमड घर मार्‍यो गइ मुर ताँगैं,
अडियो छबील राम राजा मन माख कैं।
मारि पर दल हरखाया जूप जोगिनी को,
करत अगाइ खिवासक्‍करहि साख कै।
ऐसे बीर कैया लाख एक क न आन्या मन,
एक ही गनत ऐया लाख कैयो लाख कैं।
मार्‍या जोर जग दुहूँ ओर पातशाहनि सौं
उत तें उमडि दल मौजदा को धायो है।
अगद सो अडो पातशाहनि पलटि हार्‌यो,
एवों एता आजमखाँ सजल बनैत मैं।
महा हुव भारथ को कमनैती पारथ की,
जैसे भीम भुजबल मार्‍यो कुरुखेत मैं।
श्रीधर कृपान गहि मुसलेहखान रन
कीनो घमसान यों मसान हहरात हैं।
झडनि झहूले प्रेत लोहू के प्रवाह परे,

लाती लरैं पौरैं पेलि पियत अन्हात हैं।
खोपरा लौं खोपरिन फौरैं गलकत गद,
पोरी लौं पलासी खाल ग्व च खैंचि ग्वात है।
पाखर से खापरनि चहुवा चुरैलनि कै,
चाइ भरे चर चर चपरि चबात हैं।

छप्पय

भट्ट ठट्ट डट भट्ट भट्ट हरि आमट्टे दरि।
उद्धत जुद्धत कुद्ध मुद्ध गजत जिमि केहरि।
बीर मुसल्लेह खाँ जलद्द उद्धद दल सज्जिय।
पख्खर पख्खर लख्ख स्याह सन्नाह समज्जिय।
बल तडित तेग तरपत कड्ढ़ि रस वर श्रीधर घर कुरेउ।
तहँ गोला पत्थर बित्थरिय सो अरि मत्थर यत्थरि थुरेउ।
मीर मुशर्रफ बीर कोपि भारी रन मण्डेउ।
अरि प्रतन प्रचड खड खडह करि खडेउ।
गीध गूद बेताल मासहर मुड्माल लिय।
रूहिर प रुहिर अपार पाइ भैरव गल गज्जिय।
तजि सत्तु सूर को ग्रास कर श्रोन सिन्धु मज्जन किएउ।
लखि परत कृपानी रावरी मनहुँ दान उत्तम दिएउ।

कवित्त

आयो मौजदीन उत इततें फरुकसाहि,
दुहूँ ओर सोर ललकारे बीर बीर की।
भरा भरी गोलनि की झरा झरी तेग की,
कटारिन की कराकरी तरातरी तीर की।
श्रीधर बिलायो दौरि बीरन की भीर रुड,
मडन को मेरु श्रोन सलिता गँभीर की।

वाह वाह करै पातशाह रु सिपाह सब,
देखो रे दिलेरी यारो मुशरफ मीर की।
कोऊ टूटो कोऊ वारो काहू में न गुन भारो,
कोऊ वारनारी वस मन में न आयो है।
सुन्दर सुजान सुजा सीलवतु ओजवान,
दान पूरो एकै तोहि विधि ने वनायो है।
श्रीधर भनत मानी जलालदीं अकवर,
फरुकसियर पातसाह वर पायो है।
वाल पातशाहति सोयंवर कर करति,
तोहि देखि रीझि जयमाल पहिरायो है।
मेढ़ी सो अरावो टारि मेड़ी सों विदारि दल,
खलदल मूंदि कीनो छीन एजदीन को।
धावा करि पूरब तें डावा डारि फौजनि को,
मीन सो पकरि लीनो शाहि मौजदीन को।
श्रीधर भनत पातशाहिन को पातशाह,
फरुंकसियर मो पनाह दुहूँ दीन को।
मुलुक मुलुक दौरि फरदै फतूहनि को,
काँप्यो डरि गबर हरस बाढ्यो दीन को।
साजि दल फरुकसियर पातशाह पति,
श्रीधर बढत जब सहज शिकार है।
धूमरु सुमासा में अराम इसपीं कित,
सुनि जलधर धुनि धौंसा की धुकार है।
हबसाने हहल खँधारिन के खलभल,
पलक पदक खान जान न पका रहै॥
तारा दे वेचारा दे केवारा देके वारा देहि,
पौरि पौरि लक्पुर परत पुकार है

दक्खिन दहेलि पेलि पच्छिम उदीची जीति,
पूरब अपूरब हठीलो हाथ लायो है।
श्रीधर शहनशाहि फरुकसियर नर,
सातों दीप सरहद हिन्द की मिलायो है।
दिन दिन बाढ़त है बाढ़िहइ दिन दिन,
दिन दिन दूनी पातशाहति बढ़ायो है।
और पातशाह पातशाही पायों जग पाए
तोसों पातशाह पातशाही जेब पायो है।
शादी शादियाने के उछाह आतपत्रनि के,
अङ्ग अङ्ग बाढ़े रङ्ग बाढ़े है रसत के।
तेरी पातशाही पातशाही पायो जेब फल,
ठाढ़े नभ सुमन प्रसून बरसत के।
श्रीधर भनत पातशाहन को पातशाह,
फरुक सियर नर जबर नखत के।
तिनके बखत जे वै लखत तखत तोहिं,
बैठत तखत बढ़े बखत तखत के।

सदानन्द मिश्र

भगवन्तराय रासा के रचयिता प० सदानन्द मिश्र के सम्बन्ध में कोई वृत्तान्त ज्ञात नहीं है। इनके आश्रयदाता भगवन्तराय खींची के दरबार में भूषण, मतिराम, गोपालनाथ, सारंग, भूधर, मल्ल आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय है। फतहपुर जिले में असनी नामक एक प्राचीन तथा प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ पर अनेक अच्छे कवि हुए थे। सम्भवत. यहीं पर सदानन्द भी हुए हों।

भगवन्तराय रासा में भगवन्तराय खींची के केवल एक अन्तिम युद्ध का वर्णन है। इस ग्रन्थ का समझने के लिये भगवन्तराय खीचा का सक्षिप्त वृत्तान्त जान लेना आवश्यक है।

स० १६०० वि० में देवराजसिंह चौहान मध्यभारत के खींची दरा (राघवगढ) से अन्तर्वेद आकर बस गये। उनका विवाह यमुनातट-निवासी ऐझी-राज्य के गौतम वशीय राजा की लडकी से हुआ। इनके वश में परशुरामसिंह हुए, जिनके पुत्र का नाम अरारू-सिंह था। ऐतिहासिक पुस्तकों में इनका नाम अजारू, अचारू तथा उदारू मिलता है। पैतृक सम्पत्ति में भाग न मिलने से ये दरिद्रावस्था में ही अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे।

एक बार खेत जातते समय इन्हें खेत में कुछ धन प्राप्त हो गया। इसी धन से इन्होंने असोथर, ऐझी, मुत्तौर तथा आयासाह नामक परगने खरीद लिये। अब तक इनके वशज असोथर के राजा कहलाते हैं। असोथर का प्राचीन नाम अश्वत्थामापुर कहा जाता है। इसी के पास अरारूसिंह ने १६ शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक दुर्ग बनवाया जिसका

एक भारी द्रह (टीला) अब तक वर्तमान है। सन् ॐ१५९१ ई० के लगभग गाजीपुर से एक मील उत्तर पैना ग्राम में भी इन्होंने एक दुर्ग बनवाया था। इन्हीं अरारूसिंह के पुत्र भगवन्तराय खींची थे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब मुगल साम्राज्य छिन्न भिन्न हो रहा था, भगवन्त राय की उत्पत्ति हुई। इन्होंने परिस्थिति से पूरा लाभ उठाया और एक स्वतन्त्र हिन्दू-राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। ये आजीवन मुगल-सेना से लड़ते झगड़ते ही रहे। मोहम्मद शाह के समय कोड़ा परगने का फौजदार प्रधान-मन्त्री कमरुद्दीन खां का *बहनोई जाननिसारखाँ था। इससे भगवन्तराय खींची से बराबर युद्ध हुआ करता था।

इसी समय इलाहाबाद सूबे के अध्यक्ष सरबुलन्दखाँ कोड़ में

ॐ दे० ना० प्र० पत्रिका भाग ४ अङ्क १ पृ० ११० ले० बाबू भगवतदास।

इस समय के देने में लेखक को कुछ भ्रम हुआ है। खेत जोतते हुए धन मिलने के समय इनकी अवस्था २५-३० वर्ष की अवश्य होगी। उसके पश्चात् जमींदारी खरीदने, गांवों पर प्रभाव जमाने तथा गढ़ी आदि बनवाने में २० वर्ष का समय अवश्य लगा होगा। इस प्रकार सं० १६४८ वि० (सन् १५९१) में इनकी अवस्था ५० अवश्य थी। औरंगजेब की मृत्यु के अनन्तर, जो सं० १७६४ में हुई, भगवन्तराय खींची का प्रभाव जमा। अरारूसिंह की ४० वर्ष की अवस्था में भी इनका जन्म मानें तो भी उनकी मृत्यु सं० १७९२ वि० में जो इतिहास से प्रमाणित है १५४ वर्ष की अवस्था में माननी पड़ेगी। भगवन्तराय का मृत्यु युद्ध में हुई थी। किसी भी पुरुष का १५४ वर्ष की अवस्था में रणक्षेत्र जाना सम्भव नहीं है। अतः प्रतीत होता है कि इस समय के लिखने में कमसे कम एक शताब्दी की भूल हुई है।

* फतहपुर के डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में इन्हें कमरुद्दीनखां का भाई कहा है। अन्य इतिहासों में भी बहनोई मिलने से यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

आये। तब जान-निसारखा ने खींची को नष्ट करने के लिये उनसे सहायता मांगी। सरबुलन्द ने अपनी सेना का व्यय मांगा जिसे जान-निसार ने स्वीकृत नहीं किया और सरबुलन्द इलाहाबाद लौट गये।

भगवन्तराय को इन सब बातों का ज्ञान था। वह अवसर का ताक रहा था। उसने समय पाकर जाननिसार खा पर एकाएक हमला कर दिया और उसे मारकर लूट लिया। इस समाचार को सुनते ही कमरुद्दीनखा ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर अपनी बड़ी सेना के साथ भगवन्तराय पर आक्रमण किया। किन्तु भगवन्तराय ने गाजीपुर दुर्ग में रहकर कमरुद्दीनखा के सब प्रयत्न निष्फल कर दिये। उसने जाते समय भगवन्तराय को दण्ड देने का भार फर्रुखाबाद के नवाब मुहम्मदखाँ बङ्गश को सौंपा। खींची ने कोट सूबे पर अपना अधिकार कर शाही इलाके लूटना आरम्भ किया। अवध का नवाब बुर्हानुल-मुल्क बादशाह से इस परगने का अधिकार प्राप्त करने पर शान्ति-स्थापना के लिये कोड़ा आया। भगवन्तराय तीन हजार सवार लेकर उसका सामना करने के लिये उपस्थित हुआ। नवाब के तोपखाने से थोड़ी सी हानि उठाकर खींची तुराबखा के अधीनस्थ हरावल पर टूट पड़ा और उसने खाँ को मार कर नवाब की शरीर-रक्षक सेना पर आक्रमण किया। मीर खुदायारखा ने छः हजार सेना साथ उसका मार्ग रोकने का असफल प्रयत्न किया। किन्तु शेख अब्दुल्ला गाजी पुरी, शेख रहुल अमीन बिलग्रामी, दुर्जनसिंह चौधरी, अस्मत खा तथा अन्य अनेक पठानों ने भगवन्तराय को घेर लिया। अन्त में भगवन्तराय दुर्जनसिंह के हाथ मारे गये।

आज भी इनके वंशज असोथर में एक छोटे से राज्य के स्वामी हैं। भगवन्तराय खींची वीर तथा साहसी होने के अतिरिक्त स्वयं अच्छा कवि भी था। खींचीकृत हनुमत बावनी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें हनुमान जी की प्रशंसा वीररस के अनुसार की गई है। भगवन्तराय के कतिपय फुटकर छन्द भी प्राप्त हैं।

सदानन्द के अतिरिक्त खींची की प्रशसा अन्य अनेक कवियों ने भी की है। मतिराम का एक पद्य मिलता है:—

दिल्ली के अमीर दिल्ली पतिमों कहत वीर दक्खिनकी फौज लैके सिहल दबाइहौं।
जहाती जयसेन को जेर कै सुमेरहू लौं सम्पत्ति कुबेरके खजाने ते कढ़ाइ हौं।
कहैं 'मतिराम' लंकपतिहू के धाम जाय जग जुर जमहू पै लोहसौं बनाइहौं
आगि में गिरैगे बूदि कूपमें परैंगे एक भूप भगवन्त की मुहीम पै न जाइहौं।
माधुरी ज्येष्ठ स० १९८१

अब भूषण का एक पद्य देखिये:—

शु ंडन समेत काटि बिहद मतगन कौ, रुधिर सौ रङ्ग रणमंडलमें भरिगौ।
भूषण भनत तहां भूप भगवंतराय, पारथ समान महाभारत सौ करिगौ।
मारे देखि मुगल तुरुकखान ताही समै, काहू भ्रम न जानौ मानौ नट
मो उचरिगो।
बाजीगर कैसो दगाबाजी करि बाजी चढ़ि, हाथी हायाहाथी तें सहादति
उतरिगौ।
भूषण विमर्श, पृष्ठ ११२

मल्ल कवि ने भी खींची की प्रशसा की है:—
नागर पराने सुनि समुद सकाने रण गब्बर डराने दिल जोर छोरि बानके।
छ्रुपति सकाने देखि दल के पयाने अरि भभरि भुलाने नर कौपै हबसाने के।
मल्लकवि हमजाने बीररस सरसाने खींची कुलभान कोटि हिम्मत बखानेके।
कंतनि पुकारैं सुकुमारैं सुनि शोर जब दुन्दुभी धुकारैं भगवन्त मरदानेके।
शि. स पृ २३१

अब भूधर का एक छन्द देखिये :—
श्वान हू कहत भूत अफरे अहार पाइ हारु पाइ हरपि महेश आइ नचिगे।
गाइ गाइ बरन बरांगना बरन ल... सकल श्वान चरबी के मचिगे।
भूधर भनत मारे मो... ...र भूप धीर केते पचिगे।

राह भगवन्तजू के सगमुख सेन थाइ, अपेने महादति ने खेम ओटि बचिगे। [1]
रासा के समान गोपाल कवि ने भी भगवन्त-विरुदावली की रचना है। इसमें भी उन्हीं अन्तिम युद्ध का वर्णन है।

'भगवन्तराय रासा' कवि की एक मात्र प्राप्त* रचना है। इसमें भगवन्तराय खीची के अन्तिम युद्ध का

रासा वर्णन है।

रासा की हस्तलिखित प्रति में इस युद्ध का समय इस प्रकार दिया गया है:--

> संवत सत्रह सौ सतानवे कातिक मंगलवार।
> सित नौमी संग्राम भो विदित सकल संसार।

किन्तु इतिहास से इसका विरोध होने के कारण तथा प्रथम पंक्ति में एक मात्रा अधिक होने से उल्लिखित समय ठीक प्रतीत नहीं होता। इम्पीरियल गजेटियर तथा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में यह समय सं० १८०३ वि० दिया गया है तथा अवध की तवारीखों के अनुसार यह समय सं० १७९२ वि० पड़ता है। १७६७ वि० में कार्तिक शुक्ल नवमी को शनिवार

*सन् १९२३ ई० में साहित्यरत्न पं० भगीरथ प्रसाद दीक्षित नागरी-प्रचारिणी सभा काशी की ओर से बहराइच जिले में अन्वेषण-कार्य कर रहे थे। वहा उन्हें एक जमींदार की प्राचीन पोथियों में रासा की हस्त-लिखित प्रति मिली। वह एक बंडल में बन्द तथा अत्यन्त जीर्ण दशा में थी। अनुवीक्षण-यन्त्र से उसकी प्रतिलिपि की गई और नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भाग ५ अङ्क १ में वह प्रकाशित हुई। हस्तलिखित प्रति में लेखन-काल इस प्रकार दिया गया है:—'लि० मिति सावन बदी अष्टमी सन् १२४७ बारहसय छप्पन ८ लिखा'। ध्यान रहे कि यह सन् ईस्वी न होकर हिजरी सन् है।

पड़ता है और १७९२ वि० को मंगलवार। अतः 'सत्रह सौ बानवे' यही पाठ होना चाहिये।

सारांश

इसमें कुल मिलाकर १०४ छन्द हैं। कवि ने आरम्भ में मंगलाचरण भी नहीं किया है। रासो के आरम्भ में ही बादशाह मोहम्मद शाह ने सहादतखाँ, नवाब अवध को कड़ा का हाकिम बनाने का वर्णन है। नवाब ने खींची को पत्र लिखा कि वह मन्सूर* को अधिकार देकर उसके पास चला आये। खींची ने गाजीपुर से रसूलाबाद आकर कड़ा के मार्ग में सीमापर मोर्चा लगाया। नवाब ने नूर मोहम्मद को तहसील वसूल करने के लिये भेजा। उसे खींची ने लूट लिया। इसपर सहादतखाँ ने क्रोधित होकर खींची पर आक्रमण कर दिया। जब वह गंगा के पास आ पहुँचा तो कोड़ा का चौधरी, दुर्जनसिंह भी उससे जाकर मिला। फिर नवाब जाजमऊ के घाट से उतर कर नरवर (कानपुर) होता हुआ खजुहा पहुँचा। इस समय दोनों की सेना में केवल तीन कोस का अन्तर था।

भगवन्तराय ने अपने मन्त्रियों से सलाह कर युद्ध करना ही निश्चित किया। खींची ने युद्ध को प्रस्थान करते समय हाथी, घोड़े, रत्न आदि ये खूब दान किये और बिना मुहूर्त देखे ही कूच का डंका बजा दिया। इसके अनन्तर भयंकर युद्ध का वर्णन है। इसी युद्ध में मीर मुहम्मद तथा दुर्जनसिंह का भतीजा ये दोनों मारे गये। अन्त में भगवन्तराय युद्ध करते हुए दुर्जनसिंह के हाथ मारे गये।

आलोचना

यह 'रासा' अत्यन्त छोटा होने पर भी प्रभाव-शाली है। इसमें ओज पर्याप्त मात्रा में है :—

उठि भात चमू चतुरंग चली। सब लोक ससंकित भूमि हली॥
ताको दल व्योम न नेकु थिरे। अहिराज न वैसेहु धीर धरे।१३

*यह सहादत खां का दामाद था।

अति घोर विसाल सुमेरु हले। थल को तजि दिग्गज भागि चले।
धर रेनु उडी नभ जाइ छई। तम सूर छिप्यौ जनु रैनि भई।२४।

कवि ने न कहीं सूची गिनाने का प्रयत्न किया है और न कहीं व्यर्थ में बढाकर भरती के शब्दों का उपयोग किया है। इस छोटे से रासा मे कवि ने सत्रह प्रकार के छन्द प्रयुक्त किये हैं, किन्तु कोई छन्द ऐसा नहीं है, जो वीररस के परिपाक मे सहायता न देता हो। एक उदाहरण लीजिये :—

बीर कहैं भगवन्त सुनौ, रन-भूमि में पाऊँ कबौं नहि टारैं।
छोंडि गयद तुरंगनि के पति भूलि कबौं पद ने नहि मारैं।
मुड अनेक गिरैं धरमें, भरमैं नहि पग्ग द्वऊ कर झारैं।
ज्वानन कै हुलसै बिरवै रन सादतिखान को आनत फारैं।४६।

प्रतिनायक का वर्णन कवि ने अत्यन्त उत्कर्ष से किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसी की प्रशंसा मे ग्रन्थ लिखा जा रहा है। किन्तु नायक का वर्णन उससे भी बढकर है। खींची की मृत्यु का वर्णन कवि ने नहीं किया। अप्सराओं ने आकर उसे विमान में बैठाया तथा 'स्वर्ग लेगई' इतना कहकर सकेत मात्र कर दिया है। वास्तविक बात यह है कि कवि मृत्यु का वर्णन कर वीररसमें व्यवधान नहीं डालना चाहता था।

कहीं कहीं आलंकारिक वर्णन भी मिलता है।

तबही सर छाडि मराल गये। चकई चकवा बहु सोक लये।
अति हर्ष उलूकन नेत्र खुले। मकुवे जनतात कुमुद फुले।१५।

भाषा

रासा का शब्द-विन्यास तथा भाषा ओजस्विनी है। कवि ने इसमे डिंगल-भाषा का भी प्रयोग किया है।

मज्जे सुवीर वज्जे निसान। लज्जे सुरेस, भज्जे गुमान।
फुट्टो सुमेरु, दुट्टे अराति। फुट्टो कितेक लिद्देन साति। २।

रासा में इसके अतिरिक्त डिंगल का एक ही उदाहरण और है।

इन्होंने कहीं कहीं फारसी-मिश्रित हिन्दी का भी प्रयोग किया है:—

"बिगो इद्दराबी कुजा दुष्ट सोहै। मिदानं नई अस्त कुइ बीच सोहै।
तुदानी सबै भेन क्यों मंत्र कीजै। मिदानं बले बात ही दुष्ट छीजै। २०।

'जिन्हके पहँ आवत काल डरै' इसमें "जिन्हके पहँ" यह व्याकरण शुद्ध नहीं है। इस स्थान पर "जिन पहँ" होना चाहिये।

वास्तव में रासा के समान ही खण्डकाव्य वीररस के विकास में सहायक हो सकते हैं तथा समाज के लिये कल्याणप्रद भी मा. जा सकते हैं।

भगवन्तराय-रासा

दोहा

यैक दिवस भगवत जू, अति आनँद सों लीन।
कोइ जहानाबाद को, हुकुम कूच को लीन।१।

छंद पद्धरी

सज्जे सुबीर, बज्जे निसान। लज्जे सुरेस, भज्जे गुमान।
फुट्टो सुमेरु, टुट्टे अराति। कुट्टो क्तिेक लिद्दन नाति।२।

दोहा

आइ जहानाबाद में, करत मुलुक की गौर।
सोधत बास अवास सब, लखि कै ठौर अठौर।३।
साह मुहम्मद छत्रपति, दान कृपान जहान।
सूबा कीनो अवध को, विदित सहादत खान।४।
करे जे रक्षित बाहुबल, दीन्हें नृपति निकारि।
राखे जे धरमग्य अति, सकल विचारि विचारि।५।
शाह मुहम्मद को हुकुम, देखत खत इत आव।
छोड़ि उतै मनसूर को, नेकु विलंब न लाव।६।
पठ्यो पत्र बाहर कढ्यो, ह्वै बारन असवार।
सहित कटक चौहान को, लगी न आवत बार।७।
निसा रह्यौ तेहि ठौर ही, प्रात चल्यौ तेहि आद।
सहित चमू पहुँच्यौ तबै, नगर रसूलाबाद।८।
नूर मुहम्मद को करयौ, तुम न करो कछु ढील।
कह्यो हमारे लीन्ह हम, जाइ करो तहसील।९।

कै सलाम तिन कूच किय, सुरसरि उतरि तुरत।
नाम सुनत आया तुरक, लूट लियो भगवत ।१०।
दूत सद्दादत खान सों, बोल्यो बचन प्रमान।
लूटि लियो भगवत ने, नर मुहम्मदखान ।११।

मत्तगयद छंद

लूटननायन को सुनि कै मलिकै कर दाँतन जीभ गह्यौ है।
सांस डुलाइ डुलाइ तऊ फिरि बोलत नाजिम मूक रह्यौ है।
कांति विचारि विचारि करै पुनि रोस के ज्वालन अंग दह्यौ है।
खात न पान न पानि पियै तजि गानन पानन नींद लह्यौ है ।१२।

छंद त्रोटक

उठि प्रात चमू चतुरंग चली।
सब लोक ससंकित भूमि हिली।
तारौं दल व्योम न नेकु थिरै।
अहिराज न कैसेहु धीर धरै ।१३।
अति रोर विसाल सुमेरु हलै।
थल को तजि दिग्गज भागि चलै।
धर रेनु उडी नभ जाइ छई।
तम पूर छिप्यौ जनु रैनि भई ।१४।
तब ही सर छाँडि मराल गये।
चकई चकवा बहु सोक लये।
अति हर्ष उलूकन नेत्र खुले।
सकुचे जलजात, कुमुद फुले ।१५।

रथ खच्चर वेशर ऊँट घने।
दल अगिनित हैं तेहि कौन गने।१६।

दोहा

यहि विधि जाइ नवाब जू, सदानद कवि धीर।
सहित चमू यलगार ही, पहुँचे सुरसरि तीर।१७।
आइ चौधरी कोइ को, मिल्यौ वेगि येहि वार।
दुर्जन नाम प्रसिद्ध तेहि, विदित सकल संसार।१८।

छंद भुजंग प्रयात

कह्यो दूत ने दुर्ज्जनसिंह आयो।
तबै हर्ष हुव पास ताको बुलायो।
मिल्यो आइकै ते तबै भेंट दीन्ही।
तहीं पानि छुइकै तिसै माफ कीन्ही।१६।
बिगो इद्दुरावी कुजा दुष्ट सोहै।
मिदानं न ईं अस्त कुइ बीच सो है।
तु दानी सबै भेद क्यों मंत्र कीजै।
मिदानं बले बात ही दुष्ट छीजै।२०।
दिगर अर्ज मेरी न काहू डरोंगो।
कि तौ सीस देहौं कि जीता परोंगो।
चिरा मीदहद सीत ऐसा न कीजै।
सोई बात कीजै जथा दुष्ट छीजै।२१।
हमीं कर्द साहब अमा पान पावैं।
न हस्त है चिरा रद अबी बाँधि लावैं।
बिगीरो सिरोपाव औ पान लीजै।
करोंगो तुरा सब यों बात कीजै।२२।

तहाँ देइ बीरा निसा ताहि कीन्हीं।
भले राफर्योंने सरजाम लीन्ही ।२३।

दोहा

बाँधि लियो पुल ख्याल हीं, नेकु न लागी बार।
सहित फौज मन मौज सों, उतरे सुरसरि पार ।२४।

कवित्त

सुरसरि जू मे बाँध बाँधि लीन्हीं ख्याल हीते,
ऐसी सुध उन्हे दीन्ही दूत वेगि जाइकै।
पार भई फौजें अरु चल्यौ है प्रबल दल,
सेस कलमल्यौ रज रही ब्यौम छाइकै।
धमक निसान ते गरूर उडि जात भई,
मन पछितान्यौ सुध गई है भुलाइकै।
सुनि भगवत, भगवत को सुमिरि कहै,
तुरुक की मुरक मिटैगी इत आइकै ।२५।

दोहा

इत नवाब जू कूच कै, जाजमऊ चलि जाइ।
नरवर दूजे दिन रहे, पहुँचे घजुहा आइ।२६।
तब डेरहु दाखिल भये, कीन्ह विविध विधि खोज।
खबर आइ इतहू दई, तीनि कोस पर फौज।२७।

भुजगप्रयात छंद

सुन्यो फौज को नाम यों रोस छायो।
चल्यो पेसवा खानजादे बोलायो।

हमीं के तु बदे कृपानेग है जू।
छुटे तोपखाना परी राति है जू।२८।
छुट्यौ तोपखाना मर्यो रोर दूनौ।
कहाँ लौं कहा जों मनो भार भूनौ।
यहाँ भांति बीती निसा भो सवारा।
तवै कूच फौजानि बाजे नगारा।२९।
चलै बीर बानैत जो धावलक्कै।
गरे बीच मे सेत बानै भलक्कै।
लये हाय सागी करी बेधि मालै।
जिरह खूद सोई गरे बीच दालै।३०।
चली सैन ऐसे मुरेसौ टेरानो।
उठी रेनु वे बीच सूरो छिपानौ।
भजे दिग्गजे चिक्कुरे चारु मारे।
भई रात मानौ बिना चंद तारे।३१।

दोहा

पहुँचे जाइ नवाब जू, जहँ नृप का थी फौज।
देखन ही आगे चले, परे ताहि के खोज।३२।

मत्तगयंद छंद

प्रात चले चतुरंग चमू धर रेनु उड़ी तम भानु छिपानो।
कपत कच्छ रबै अवनी कहि 'नंद' कवी मन इंद्र डेराना।
हालत है नग पन्नग सत्रु क सीस पटो उर साह सकानो।
रोर परो सब अंतरवेद जु कीन्ह सदादतिखान पयानो।३३।

छप्पै छंद

रिपु सुभट्ट भजि जात चलत चामुंड इंद्रगिरि।
विटप टूटि रज मिलत कूर्म नहि धरत नेकु थिरि।

भार भूमि भरि रहत फनिक फुँकरत सक करि ।
हहरि हलत ध्रुवलोक रेनु नभ रहत पथ भरि ।
जब चढयौ सहादति खान जग लोक लोक व्याकुल भयो ।
कहि 'सदानद' भगवंत जू हठि जुद्ध तासु संमुख ठयो ।३४।

दोहा

कीन्हो कूच नवाब जू, आयो तेहि पुर पास ।
सुनत सवन चकृत भयो, कीन्हा बचन प्रकास ।३५।

छंद भुजंग प्रयात

बड़े बीर मत्री जू गोत्री बोलायो ।
महाबीर बाँके तिन्हो सीस नायो ।
कहै राय जैसे कहा मंत्र कीजे ।
रहै धर्म जामें वही सिष्य दीजै ।३६।
उठो बोलि मंत्री दुश्रौ पानि जोरी ।
कहौं मत्र सोई जथा बुद्धि मोरी ।
सोई ग्यान जानौ चचेड़ी जु लीन्ही ।
करे छद केते नहीं फेरि दीन्ही ।३७।
करी जो पटयो ग्राम ही में लराई ।
लई भूमि जाकी नहीं फेरि पाई ।
बड़ो सिंह गौरा सोऊ बात जानो ।
कहौं मत्र सोई महाराज मानो ।३८।
निकासे किते भूप को को गनावै ।
लई भूमि जाकी नहीं फेरि पावै ।
महाराज ऐसे तुम्हौ जो सिधारौ ।
नहीं फेरि पावो जमीं देह धारौ ।३६।

दोहा

नायब लूट्यो नूर गा, जहाँ कूच यह कीन्ह।
ताके कर जनु ताहि को, मनो चुनौती दीन्ह ।४०।

छंद कुंडलिया

जानिसारखां तुम्ह हयौ, सोइ सुमिरि के रोस।
करी मामिले कोटि विधि, पुनि देइय तुव दोस।
पुनि देइय तुव दोस नैद कै ने सिर पड़ै।
करी कोटि उपचार बहुरि कबहूँ नहि छूटै।
छूटै बहुरि न तोहि जुद्ध सन्मुख अब ठानी।
और मन नहि भूलि बात निश्चै यह जानी ।४१।

दोहा

जब मन्त्री ऐसे कह्यो, लै कर मैं करवार।
रुंड मुंड कै ढेर महि, करत न लावौ बार ।४२।

छंद गीतिका

करि रुंड मुंड वितुंड भुंडनि समर हनि भारे खलौ।
भट भूरि तूरि गरूरि डारि मरोरि हौ जौनी दलौ।
असि हत्य गहि समरत्थ ज्यौं किय पत्थ पौरुष ना चलौ।
भगवत है विकराल सिंह अराति मृग सादति-दलौ ।४३।

दोहा

मोहि कह्यो सो वीरवर, तुरतहि वीर बुलाय।
कहा कहौं जानत यही, परो लाज अब आइ ।४४।

मत्तगयंद छंद

वीर कहैं भगवत सुनौ रनभूमि मैं पाउँ कवौं नहि टारैं।
छोड़ि गयंद तुरंगन के पति भूलि क्यौं पद ते नहि मारैं।

मुड अनेक गिरै धर मे भरमै नहि पग्ग द्वऊ कर भारैं ।
ज्वानन के हुलसै विरच रन सादतिखान को आनन फारैं ।४५।

दोहा

जोधन को सवाद सुनि, सोचि डुलाया सोस ।
करि बिचारि आनदजुत, करन लग्यो बकसीस ।४६।

लीलावती छद

तीछन निपटि कटक पर खडनि पच्छिन के जनु रोस भरे जू ।
चलत अवनि पग लगत नहि न थिर लखि गति मनहि समीर डरे जू ।
कसे जीन जगमगित जवाहिर मनसिज ज्यो बहु रूप धरे जू ।
"सदानद" भगवतसिह नृप ते बाजी बक्सीस करे जू ।४७।

मत्तगयद छद

मत्त चलै अति मत्त सदा मदपडन ते बहु नीर भरै जू ।
कज्जल से गिरि राजत भू पर ताहि लखे घन सक धरै जू ।
है जु सिगार निजै दल को अरि के दल को जिमि काल घिरै जू ।
"नद" सदा भगवतसिह नृप ते वारन बकसीस करै जू ।४८।

दोहा

अपर दान अगिनित दये, जथा जडन बेउहार ।
पुर अनन्द प्रति मदिरनि, होत सख धुनि द्वार ।४९।
पुर में पहुँची खबर जब, दीन्ही दूत जवाब ।
दक्षिण जोजन एक पर, आया प्रबल नवाब ॥ ५०
सुनत बचन भगवत नृप, तबहि रह्यो ह्वै मोन ।
कै विचार आनदमय, गयो आपने भौन ।५१।
पानि जोर रानी कहै, सुनहु महामति धीर ।
नहि विरोध इन्ह से करो, ये हैं बड़े अमीर ।५२।
भूमि छाँडि कै पार चलि, कछु दिन तहाँ गँवाय ।
जब दिल्ली का जाइगे, बहुरि बसैंगे आय ।५३।

मत्तगयंद छंद

भूमि हमारि स्वई यह है जिह मे मख-दान अनेक कियो है।
जाचक और अजाचक को मन हर्षि सदा गज बाजि दियो है।
केतिक सत्रु निपात किये तुम जानति हौ हम जीति लियो है।
नाम प्रसिद्ध अहै जग में मम भूमि तजै फल कौन जियो है।५४।

दोहा

ऐसो कहि बाहर कढ़्यो, करि विचार मन कोरि।
जीति लेउँगो निमिष में, कहै बहोरि बहोरि।५५।

चंद्रकला छंद

करि धीरज कों नृप बैठि रह्यो तब ही अस दूतन बात कही।
प्रभु दच्छिन आइ नवाब परयो कित है करि है तुव खेत जही।
सुनि कोपि कै हत्थ कृपान गह्यौ यह बूझत साइति है कबही।
यक विप्र कहै विधि दंडु विताइ कै आपु कहैं अबही अबही।५६।
यह बात सुनी जब ही नृप की अति आतुर ह्वै सब बीर सजै।
जिरहै अरु कौच दई सिर कूँडि लखे मन में छन धीर तजै।
कटि त्रोन कसे धनुबान लये अरि के कुल काल प्रतच्छ रजै।
रन जुद्ध विरुद्ध महा बिजई कढ़ि बाहर ह्वै जिमि सिंह गजै।५७।

दोहा

बूझयो नृपति 'नवाब जू, करत कहा हैं काम।'
'अब डेरन दाखिल भयो, करन लग्यो आराम'।५८।
तब मुसुकाइ महीप कहि, सुनिये बचन प्रमान।
तुरुक-हीन छवनी करौं, कहा सहादति खान।५९।
दूतन कह्यो नवाब ते, समाचार सिर नाव।
अति गरूर अरि की सुनी, तुरत उठ्यो बिलखाव।६०।

छंद गीतिका

बिलखाय माँगि गयद को तब पग्ग लै उतही चढ्यो।
अति बाजि दुंदुभि सक लक नवाब जू तब ही कढ्यो।
चढि कै तुरगन बीर धीर प्रचड आतर से चले।
तनु-त्रान राजत चारु ते तनु जानु सहित बादले।६१।
चलि फौज सादति खान की गढ छोड़िकै गरभी भगे।
भजि जात दिग्गज डोल परबत सार सी अहि यों जगे।
तब जाइ कैं तहँ हो जुरे जहँ खेत बैरिन को रचै।
उततैं चल्यो भगवन्त जू रन आजु तो हम सों सचै।६२।

(छन्द त्रोटक)

सब बीर भयानक रूप ठये।
बिच भालन्ह चन्दन खौरि दये।
सिर ढालन कूंदि बिराजत है।
जिन्ह को लखि कै घन लाजत है।६३।
जिनहै तनत्रान न बीर कटे।
जिन्ह देखत ही अनुराग बटे॥
सकती पुनि हाथ न दड धरे।
जिन्ह के पहँ आवत काल डरै।६४।
करि जोरहि फौज दबाइ लई।
दल दुन्द जुरे अति दुद भई।
हुलसे भट जुद्द लखे बिरचै।
असि काढि अराति करै किरचै।६५।

(दोहा)

तब सम्मुख ऐसे चल्यौ, जानौ बड़ौ गरीब।
पग पग नापत अवनि को, मानौ करत जरीब।६६।

ससिवदना छंद

बहुरि न बोलै । तहँ धर डोलै ।
अति भटभारै । अवनि पछारै । ७३ ।
उदर बिदारै । भुजा उचारै ।
अरु सिर कट्टे । महि अति पट्टे । ७४ ।
पुनि भट क्रुद्धे । निपटि बिरुद्धे ।
अति रन-माते । कहि जै बातें । ७५ ।

मंदनारी छन्द

लखे जुद्ध जाके । महावीर बाँके ।
करैं साँग गाहैं । निते खेत चाहैं । ७६ ।
करैं जुद्ध लागे । चले मत्त आगे ।
कृपानैं बजावैं । बड़ो मुख्ख पावैं । ।७७।

रूपघना छंद

नृप भगवत जब लीन्हीं है कृपान कर,
निपट अडोल बीर तेऊ उठै डौलि डौलि ।
कीन्हीं है धरा में अतिभारत धवल महा,
ढाहे बाट बारो सिर जथा धरे तौलि तौलि ।
भारे भट मारे घाय घूमे मतवारे चले,
सोनित पनारे ज्यों अटा के दये खोलि खोलि ।
जोगिनी मुचित्त भरि खप्पर बचत नहि,
गानन रचत बहु मुड उठत बोलि बोलि । ७८ ।

सर्वकल्यान दंडक

चमकै छटा सी ज्यों घटा सो दल फारि देत,

त्रिभंगी, छन्द

छुटि हथनालैं और सुतनालैं चली जँजालैं दाबि लिया।
पुन दुन्दुभि बाजै मुनि घन लाजै बहुभट साजै रोसपिया।
रहट्ट बहु छुट्टे बहु सिर टुट्टे जोधन कुट्टे मारि दिया।
मे मोगल दिवाने गिल बिललाने श्राजु खुदा ने कहर किया।६७
फौजैं जब देषी घन सम लेषी भूली सेषी डर्यौ हिया।
धीरज मन त्यागे चले न भागे प्रभु सों मागा चहै जिया।
यहि विधि भट जेते संकित ते ते धीरज चेते कहै बिया।
मे मोगलदिवाने गिल बिललाने श्राजु खुदा ने कहर किया।६८

दोहा

तब भूपति बीरन सहित, सारद को सिर नाइ।
दौरि परे दल बीच में, कूदे संख बजाइ।७१।

परे दौरि कै ते तबै पग्गभारैं।
फटै ज्यौं घटा बीर चौंधा निहारैं।
परी मारु ऐसी खरी बाढ़वारी।
करैं टूकड़े द्वै महासानवारी।७०।
किती नागिनी सी चली है सिरोही।
भगे देखिकै बीर लागे डरोही।
प्रलै काल सो भाजहीं बान छूटे।
चली रामचंगी किते सीस टूटे।७१।
छुट्यो तोपखाना कहाँ कौन चाले।
भर्यो रोर उत्पात सों भूमि हाले॥
चलै जो जुनब्बी चमक्कै छटा ज्यौं।
फटै बारनैन्नुरथ फाटै घटा ज्यौं।७२।

भूप भगवत का कृपान ज्यों करत खेद,
लदै खल साम भुज समर चुनाइ कै।
जोति सी जगी है अनुराग सों रँगी है,
वज्र ज्वाल सी पगी है गति अद्भुत पाइकै।
आरत कौं छाडते विचारि तन मानी मूड,
मोगल सँघारत तुरारखान खाइकै ॥७६॥

दोहा

सुनिये मोगल तुरार सों, या नवाब के संग।
सो चरित्र जैसो भयो, तैसो कहौं प्रसंग ॥८०॥
भूप चल्यौ जब समर को, बूझयो दूत बुलाइ।
केहि सरूप सादति अहै, मोहिं कहौ समुझाइ ॥८१॥
पानि जोरि के दूत कह, सुनो बचन नृप गूढ़।
अति उदंड भुजदंड है, बरस साठि को बूढ़ ॥८२॥
यहै बात नृप-चित चढ़ी, कान्हो समर पयान।
यह चरित्र जैसो भया, तैसो कहौं प्रमान ॥८३॥
सादति गर्यों कुंभी चढ्यौ, मुटा हौदा सोइ।
दूजे आरन एलची, पीछे कुंजर दोइ ॥८४॥
करी चारि की गोल तहँ, आगे बान निशान।
पुनि पचास पदतीत हीं, नेजा बीस प्रमान ॥८५॥
और चमू पीछे कछू, तौन न होत लखाइ।
उत्तर दिसा तुरार जिमि, तैसो कहौं बुझाइ ॥८६॥
अवारी गज पै कसी, तापर चढ्यौ तुरार।
अंतर बीसहि दंड को, ठाढो जितै नवाब ॥८७॥
साथ चमू चतुरंग चय, जानहु सादति सोइ।
एक रूप दोऊ हते, जानै विरला कोइ ॥८८॥

त्रोटक छंद

नृप जानि सहादति माह बढ्यौ।
हय जानि करी पर नाजि चढ्यौ।
मुगलै भ्रम भीत न साँस लई।
नृप साँगि हनी उहि पार गई।८९।
दिय पग्ग बहोरि सही सिर है।
कटि जात भई सिगरी जिरहै।
हुलसे अँग अंग अनंद भई।
तनत्रान तनी सब टूटि गई।९०।
विहँस्यौ नृप मोद बढ्यौ मन मे।
जनु राजत चारु ससी घन मे।।
तब सादति मूक भया न बुले।
भ्रम बात लगे जनु पात डुलै।९१।

दोहा

कित नवाब जूझन लग्यो, वीर समर रस मत।
बोल्यौ अवहि तुराबखाँ, कर्यौ वार भगवत।९२।

छंद त्रोटक

उतपात महाकवि कौन कहे,
नहि धीरज हू कर धीर रहै।
चमु भागि समूह चली सिगरी,
धुनि सीस नवाब कहै बिगरी।९३।
उत खान महम्मद कोप करै,
दलसिंह भले एहि ओर भिरै।
उत दीन महम्मद पग्ग धरै,

उत खान अली सँग वीर भले।
इत कोपि भवानि प्रसाद दले।
उत मीर मुहम्मद धीर रजौ।
इत मर्दनसिंह महा गरज्यौ।९५।
उत सेरअली चनु मडत है।
जैसिंह इतै रन खडत है।
यहि भांति दुओ दल वीर भिरे।
अरि मारत हैं रनभूमि घिरे।९६।

सर्व कल्याण दंडक

मारे मीर महम्मद औ छारे रिपु भारे भारे,
पाटे मुड काटे किते छोनी मेह सत हैं।
लुथन पै लुत्थ परि प्रबल समर्थन की,
कुडन रुधिर लखि क्रूर दहसत हैं।
बोले विकराल काल जंबुक कराल हाल,
भूत दैत ताल कर भैरो विहँसत हैं।
आलिन समेति मनगारी सी फिरति रन,
जै जै नृप जू की कहि काली रहसति हैं।९७।

दोहा

तुरयौ दुर्जनसिंह रन, भिरत प्रचारि प्रचारि।
महाबीर भगवत के, नेकु न मानत हारि।९८।
तासु बधुता कौ तनै, तेजसिंह तेहि नाम।
लै कृपान कर क्रुद्ध ह्वै, कीन्ह विषम संग्राम।९९।
तज्यौ प्रान हठि समर सौं, रुड मुड करि खेत।
प्रलै काल सम रुद्र लखि, कातर होत अचेत।१००।

छप्पे छंद

अति उदंड बरिबंड वीर जित खडहि खडै।
जे समत्थ तेहि सत्थ हत्थ गहि जुत्थन्ह दंडै।
क्रुद्ध मुद्ध अविरुद्ध सद्धरन रोत दबावे।
गज अमत्त अरु मत्त मारि दिसि चारि भगावै।
विकराल रूप भगवत को लखि नवाब डर सौं त्रस्यौ।
उतपात घात बहुघात जनु काल वेगि चाहत ग्रस्यौ।१०२।
कँप्यौ लोक अवलोकि सोक भय जहँ तह बज्र्यौ।
लखि चरित्र विधि-हरि हर हिय अनुराग उपज्यौ।
प्रेरित गन चलि वेगि समर अवनी महँ आयौ।
कहि प्रसंग कर जोरि अमियमय बचन सुनायौ।
अपछरि सुचारु चहुँ दिसि चमर चारु ढरत आनँद भयो।
राजाधिराज भगवतजू चढि विमान सुरपुर गयो।१०३।

दोहा

संवत सत्रह सौ सत्तवे, कातिक मंगलवार।
सित नौमी संग्राम भो, विदित सकल संसार १०४।

इति श्री कवि सदानद विरचिते भगवतसिंह खीची और नवाब सहादति खान-जुद्ध चरनतो नाम सुभ सुभमस्तु सुभ भूयात्। लि० मिति सावन बदी ८ अष्टमी सन् १२२७ बारह सय सतावन मा लिखा।

सूदन

सूदन का कोई विशेष परिचय अवगत नहीं है। इन्होंने अपने जीवन-चरित्र सम्बन्ध में केवल इतना ही लिखा है —

मथुरापुर सुभधाम माथुर कुल उत्पत्ति वर।
पिता बसन्त सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि।

जं० १, अ० १ छं, १०

इससे ज्ञात होता है कि ये मथुरा निवासी तथा माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम बसन्त था। ये भरतपुर नरेश सुजानसिंह के आश्रित थे। इस समय इनके वंश में दो विधवाएं तथा दो लड़के हैं। इन्हें भरतपुर राज्य से २५ रु० मासिक मिलता है। सूदन का एकमात्र ग्रन्थ 'सुजान चरित' प्राप्त है। 'सुजान-चरित' में सं० १८०२ वि० से १८१० वि० तक की घटनाओं का वर्णन है। अन्त में ग्रन्थ की धारा एकाएक टूट गई है। सं० १८११ वि० के आरम्भ में हुए युद्ध का वर्णन कवि ने नहीं किया है। इससे दो ही अनुमान लगाये जा सकते हैं। (१) सं० १८१० वि० में कवि की मृत्यु हुई हो अथवा ऐसी कोई घटना हुई जिसके कारण कवि को आगे लिखना असम्भव हो गया हो। (२) भरतपुर-राज्य से कवि का सम्बन्ध टूट गया हो।

किन्तु दूसरा अनुमान इसलिये ठीक नहीं कहा जा सकता कि इनके वंशजों को भरतपुर-राज्य से अब तक २५) मासिक मिलता है। यदि इनका भरतपुर राज्य से सम्बन्ध टूट गया होता तो यह मासिक मिलना सम्भव नहीं था।

इन्होंने ग्रन्थ के आरम्भ में लगभग १७५ कवियों की सूची दी है

उस पर विचार करने पर भी इनका समय सं० १८१० वि० के विशेष आगे नहीं जाता है। मिश्रबन्धुओं का दिया हुआ इनका समय (१८११ से १८२० वि०) ठीक प्रतीत नहीं होता है।

भरतपुर के राजवंश का वर्णन

सर्वप्रथम जाटों का उल्लेख शाहजहां के समय में मिलता है। मुर्शिदकुली तुर्कमान की मृत्यु इन जाटों की वस्ती पर आक्रमण करने से ही हुई। इसी समय से जाटों ने लूटमार करना तथा भूमि पर अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। ये लोग लडने में बड़े वीर थे। औरंगजेब के समय ये किसी एक पक्ष से रुपया लेकर दूसरे पक्ष से लडा करते थे। इसी समय गोकुल जाट ने मथुरा तथा सैदाबाद लूटकर नष्ट कर दिया। वहां का फौजदार अब्दुल नबी मारा गया। औरंगजेब ने हसनअली के साथ एक बड़ी सेना भेजकर गोकुल जाट को पकड़वाया और उसे प्राणदण्ड दिया। किन्तु इससे जाटों का उपद्रव कम न होकर बढता ही गया। बादशाह के दक्षिण जाते समय सिनसिन के भज्जार (भावसिंह) ने खूब लूटमार की। सं० १७४५ वि० में भज्जा के तीसरे पुत्र राजाराम के मारे जाने से जाट कुछ दब गये। कुछ दिन पश्चात् भज्जा मर गया। किन्तु उसके ज्येष्ठ पुत्र चूडामणि ने पुन: उपद्रव करना आरम्भ किया। दिनोंदिन ये लोग जोर पकडते ही गये।

सं० १७६४ वि० में औरंगजेब की मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारियों में राज्य के लिये युद्ध आरम्भ हुआ। चूडामणि ने इससे अच्छा लाभ उठाया। जहां युद्ध होता, वह अपनी सेना के साथ कुछ दूर पर उपस्थित रहता था और जो हारता था उसका सब कुछ लूट लेता था। जाटों के उपद्रवों से घबडाकर बहादुर शाह ने चूडामणि को अपना मन्सबदार बना लिया। कुछ समय के अनन्तर मोहम्मद

शाह तथा सैयदों के परस्पर झगड़े में इसने शाही सेना पर आक्रमण कर यमुना-तट का बहुत सा प्रान्त अपने अधिकार में कर लिया और शाही सेना का बहुत सा सामान लूट लिया। बादशाह ने क्रुद्ध हो कर सवाई जयसिंह को उसे दबाने के लिये भेजा। इसपर चूडामणि ने बारूदखाने में आग लगाकर आत्मघात कर लिया*।

मोहकम सिंह ने अधिकार में आते ही बदनसिंह (सुजान सिंह के पिता) को कैद कर लिया। किन्तु जाटों के कहने से उसे छोड़ दिया। तब बदनसिंह ने जयसिंह को चढ़ाई करने को उकसाया। इसको सूदन ने भी स्वीकार किया है कि जयसिंह की कृपा से ही जाटों का राज्य बदनसिंह को मिला।

ज्यों जयसाहि नरेस करत कृपा नृव देस पर।
त्यों ब्रजेस बदनेस करत रहौ हम पर कृपा॥
जं० २, अ० ३, छं० १५

बदनसिंह ने अधिकार पाते ही भरतपुर† के दुर्ग को अत्यन्त सुदृढ़ तथा सुसज्जित कर अजेय कर दिया। इसके कुछ समय पश्चात् बदनसिंह की आँखें खराब होगईं। उसने अपने पुत्र सूरजमल (सुजान सिंह) को राज्य-भार सौंप दिया।

---

* दे० मआसिर-उल-उमरा पृ० ५४०

किन्तु इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार सं० १७७९ वि० में अपने पुत्र से झगड़ा होने के कारण चूडामणि ने हीरा खाकर आत्महत्या की।

† भरतपुर के जाट पंजाब, सिंध, राजपूताना तथा युक्तप्रान्त में बड़ी संख्या में फैले हुए हैं। भिन्न भिन्न प्रान्तों में इनके नामों में भी विभिन्नता है। भरतपुर और धौलपुर दोनों ही जाटों की रियासतें हैं। टाडराजस्थान में इन्हें क्षत्रिय कहा गया है। कहीं कहीं राजपूत तथा जाटों में विवाह भी होते हैं

सुजानचरित्र में भरतपुर नरेश सूरजमल की सं० १८०२ वि० से १८१० वि० तक की सात लड़ाइयों का वर्णन है। इन सात युद्धों को कविने 'जग' नाम से कहा है प्रत्येक जग में तीन से लेकर सात तक अक है। प्रत्येक अक के अन्त में यह छन्द दिया गया है जिसकी केवल अन्तिम पक्ति विषयानुसार बदलती रहती है :—

ग्रन्थ परिचय

भूपाल पालक भूमिपति बदनेस नन्द-सुजान हैं।
जानैं दिलीदल दक्खिनी कीने महा कलि कान हैं।
ताकी चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छन्द बनाइकै।
यहि द्व ध्यान बत्तीस नृपकुल प्रथम अक सुनाइकै।

सूदन ने जाटवश का वर्णन विस्तार मे दिया है। इन्हें यादव कहा है। जदु कुल तथा जदु-कुल समान ही प्रतीत होते हैं। किन्तु आज कल जाटो को यादवों से पृथक् माना जाता है। जाट वश का प्रारम्भ भूरे नामक राजा से माना गया है :—

जग उदित उद्धत जदु कुलन में भयौ भूरे भूप।
ताकौ भयौ सुत शौरिया मो शौरि ही के रूप।
ज० १ अ० १ छ०१३

इस वंश का वर्णन बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह तक किया है। सुजान सिंह के दोनों पुत्र जवाहरमल व नाहरसिंह का भी उल्लेख है।

इस ग्रन्थ का सम्पादन नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा हुआ है। सम्पादन में ब्रजभाषा सम्बन्धी कुछ त्रुटिया रह गई हैं :—

(१) हुते नगर दुरहुत कैं सूबा सफदरजग। २ जं० छ१ घ०३॥
(२) तहँ फरजंद बजरि कै मिलना ठहराया। ६जंग अ१छ १७॥

इस प्रकार के अनेक उदाहरण इसमें पाये जाते हैं।

न० १ किसी अंश में ठीक माना जा सकता है। वास्तव में 'कैं' के स्थान पर "मैं" चाहिये। न० २ में "कैं" के स्थान "कौं" चाहिये।

'असद खान कौ जीति निदारिय" इसमें ब्रज—भाषा के अनुसार कर्म कारक का चिह्न 'कौ' चाहिये। 'कौ' ब्रज भाषा में सम्बन्ध का चिह्न है।

सारांश

आरम्भ में देवताओं की प्रार्थना कर संस्कृत के प्रसिद्ध कवि तथा हिन्दी के १७५ कवियों प्रणाम करते हुए कवि सर्व प्रथम जाट वंश का वर्णन करता है। इसके पश्चात् कथा प्रारम्भ हो जाती है।

स० १८०२ वि० में नवाब फतह अलीने सूरजमल के पास सहायता के लिये दूत भेजा। सूरजमल ने नवाब के स्वयं मिलने पर सहायता देना स्वीकार किया। दोनों अलीगढ में मिले तथा दोनों की सन्धि हो गई। इसी समय असद खाँ ने शाही सेना लेकर आक्रमण किया तथा दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। असदखान की मृत्यु हुई। इस युद्ध में सूरजमल का पराक्रम देखकर फतह अली ने उसका सम्मान किया तथा उसे पुरस्कृत किया। यहीं पर प्रथम जंग समाप्त होता है।

द्वितीय जंग — स० १८०४ वि० में सुजानसिंह (सूरजमल) ने जैपुर नरेश ईश्वरी सिंह के एक पत्र पर माधोसिंह के विरुद्ध सहायता दी। माधोसिंह की सहायता मराठा सरदार मल्हारराव ने की थी। युद्ध में मराठे हार गये तथा माधोसिंह का राज्य ईश्वरीसिंह को मिला। माधोसिंह को केवल दो परगने देकर उसके ननिहाल भेज दिया।*

*हिन्दी कवि और काव्य के लेखक ने पृष्ठ ४८६ पर दूसरे जंग का सारांश लिखते हुए कहा है कि सुजानसिंह ने जयपुर नरेश माधोसिंह की सहायता की किन्तु यह ठीक नहीं है। सुजानसिंह ने ईश्वरी सिंह की तथा मराठों ने माधोसिंह की सहायता की।

मल्हारराव ने बीच में पड़ने से पठान राज्य के तीन टुकड़े हुए और व बादशाह, मल्हारराव तथा पठान में बाटे गये।

पचम—सफदरजंग तथा सुजानसिंह दोनों ने आपस में विचार कर घासहरे के बडगूजर सरदार, राव बहादुरसिंह को अपने अधीन बनाने के लिये एक युद्ध का ढाचा तैयार किया। जवाहरमल ने साथ सुजानसिंह तथा शाही सेना रवाना हुई। उस समय राव निम्बोरे के किले में था। जवाहरमल ने उसे घेरकर दरवाजा तोड डाला। बडगूजर ने जवाहरमल से सन्धि करली तथा कुछ दण्ड भी दिया। किन्तु सुजानसिंह ने सन्धि करना स्वीकार न किया। अन्त में बडगूजर मारा गया।

षष्ठ—इसमें प्रथम दिल्ली का इतिहास दिया गया है। पाण्डवों से लेकर जनमेजय तक, पृथ्वीराज तथा गोरी का युद्ध, तुर्कों का प्राबल्य, अलाउद्दीन खिलजी का प्रभाव, मुगलों का राज्य (बाबर हुमाऊँ, अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब, बहादुर शाह, जहांदार शाह, फर्रुखसियर तथा और दो बादशाह) आदि का वर्णन है। वजीर मन्सूर तथा गाजीउद्दीन में झगडा हुआऔर उसमें मन्सूर को भागना पडा। उसने सुजान सिंहसे सहायता मागी। सुजानसिंह ने दिल्ली पर आक्रमण किया तथा गाजीउद्दीन को हराकर लाल दरवाजे से दिल्ली में घुसा। और दिल्ली खूब लूटी। इसके अनन्तर कोटरा में युद्धहुआ। शाही सेना की हार हुई। दिल्ली से कुछ दूर एक युद्ध और हुआ किन्तु उसमें गाजीउद्दीन की ही हार हुई। उसने मरहटों की सहायता लेकर पुनः युद्ध किया किन्तु फिर भी उसकी हार हुई। अन्त में आमेर नरेश माधोसिंह ने सन्धि करा दी।

सप्तम—स०१८१० वि० में गाजीउद्दीन ने दिल्ली में मराठों के आगमन की बातें सुनीं। खण्डेराव तथा महमूद में कुछ सलाह होकर खण्डेराव ने मेवात पर आक्रमण किया और महमूद होडिल की ओर चल

तृतीय* :—इसमें स० १८०५ वि० में सलाबतखा ने भरतपुर पर आक्रमण करने पर उसके प्रतिकार हुए युद्ध का वर्णन है। सलाबतखा, अलीकुलीखा, रुस्तमखा, हकीमखा, कुवडा, फतहअली, आदि मीरों के साथ ३०००० सवार असख्य पैदल तथा हाथी आदि लेकर भरतपुर पर चढ आया। सुजानसिंह अपनी ६००० सवारों की सेना लेकर मेवात में नौगाव स्थान पर रास्ता रोक कर डट गया। इसके पश्चात् उसने सलाबतखा के पास दूत भेजकर पूछा कि मैंने सदैव बादशाह का हित किया है। मुझे कष्ट क्यों दिया जा रहा है। सलाबतखा ने कहा कि असदखा को मारने के अपराध मे यह दण्ड दिया जा रहा है।

भयकर युद्ध हुआ। अलीकुलीखा, फतहअली, तथा कुवडा मैदान से भाग निकले। रुस्तमखा तथा हकीमखा बुरी तरह हारकर मारे गये। अन्त में सलाबतखा ने सन्धि कर ली। उसने सुजान के पुत्र जवाहरमल को मन्सब देकर हरावल मे ले लिया। इसी जग मे यह भी बतलाया गया है कि जन्म मरण तथा विवाह मथुरा में होने से जन्म सफल होता है। सुजानसिंह ने प्रथम दो बातें परवश जानकर अपना विवाह मथुरा में ही किया।

चतुर्थ.—स १८०६ वि० मे सुजान सिंह ने वजीर मन्सूर की सहायता कर पठानों का नाश किया। नवलराय को मारने के कारण मन्सूर पठानों पर क्रुद्ध होकर बादशाह अहमद शाह से कहने लगा कि कायमखा ने शासन नष्ट किया है। अत. उसे दण्ड मिलना चाहिये। मन्सूर ने १०००० सवारों के साथ प्रयाण किया। उसने कुछ हिन्दू राजा तथा सुजानसिंह से सहायता मागी। ये अपनी सेना लेकर पहुँचे। मन्सूर (सफदरजग) के साथ सुजानसिंह आदि ने प्रस्थान कर दिया। ४०००० सैनिक साथ थे। अहमदखा पठान से भयकर युद्ध हुआ।

* यही जग इस सग्रह मे लिया गया है।

मल्हारराव के बीच में पड़ने से पठान-राज्य के तीन टुकड़े हुए और वे बादशाह, मल्हारराव तथा पठान में बांटे गये।

पंचमः—सफदरजंग तथा सुजानसिंह दोनों ने आपस में विचार कर घासहरे के बड़गूजर सरदार, राव बहादुरसिंह को अपने अधीन बनाने के लिये एक युद्ध का ढांचा तैयार किया। जवाहरमल के साथ सुजानसिंह तथा शाही सेना रवाना हुई। उस समय राव विम्बोरे के किले में था। जवाहरमल ने उसे घेरकर दरवाजा तोड़ डाला। बड़गूजर ने जवाहरमल से सन्धि करली तथा कुछ दण्ड भी दिया। किन्तु सुजानसिंह ने सन्धि करना स्वीकार न किया। अन्त में बड़गूजर मारा गया।

षष्ठः—इसमें प्रथम दिल्ली का इतिहास दिया गया है। पाटवों से लेकर जनमेजय तक, पृथ्वीराज तथा गोरी का युद्ध, तुर्कों का प्राबल्य, अल्लाउद्दीन खिलजी का प्रभाव, मुगलों का राज्य (बाबर हुमाऊँ, अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब, बहादुर शाह, जहांदार शाह, फर्रुकसियर तथा और दो बादशाह) आदि का वर्णन है। वजीर मन्सूर तथा गाजीउद्दीन में झगड़ा हुआऔर उसमें मन्सूर को भागना पड़ा। उसने सुजान सिंहसे सहायता मांगी। सुजानसिंह ने दिल्ली पर आक्रमण किया तथा गाजीउद्दीन को हराकर लाल दरवाजे से दिल्ली में घुसा। और दिल्ली खूब लूटी। इसके अनन्तर कोटरा में युद्धहुआ। शाही सेना को हार हुई। दिल्ली से कुछ दूर एक युद्ध और हुआ किन्तु उसमें गाजीउद्दीन की ही हार हुई। उसने मरहटों की सहायता लेकर पुनः युद्ध किया किन्तु फिर भी उसकी हार हुई। अन्त में आमेर-नरेश माधोसिंह ने सन्धि करा दी।

सप्तमः—सं० १८१० वि० में गाजीउद्दीन ने दिल्ली में मराठों के आक्रमण की बातें सुनीं। खण्डेराव तथा महमूद में कुछ सलाह होकर खण्डेराव ने मेवात पर आक्रमण किया और महमूद होडिल की ओर चल

दिया। इसके अन्तर मुचकुन्द की कथा कही गयी है और ग्रन्थ समाप्त हुआ है।

आलोचना

सूदन ने सूची गिनाने की सीमा तोड़ दी है। इनकी सूची अत्यन्त विस्तृत होती है। कहीं ये घोड़ा की जातियों का वर्णन करते हैं तो कहीं क्षत्रियों के प्रकार गिनाते हैं। इनकी सूचिया पास पास होने से अधिक नीरसता उत्पन्न करती हैं।

इन्होंने युद्ध की तैयारी का वर्णन अच्छा किया है तथा युद्ध का चित्रण भी अच्छा है। किन्तु उसमें भीतरी उमग की अपेक्षा बाहरी तडक भडक की मात्रा अधिक है। डिंगल के अनुकरण पर कवि ने शब्दनाद को अधिक महत्व दिया है। भावगम्भीरता तथा साहित्यिक सौन्दर्य अपेक्षाकृत कम है। द्वित्व तथा सयुक्ताक्षरों का प्राबल्य अधिक है:— ,

इक भय्यौ बिना धाइ हत्थौ करै। बाज धक्का धुकें धक्कन भूमा परै।
इक कठो गहे रत्त रत्तौ बहे। तेह तत्ते तनो तेह कत्ते कहे॥

ज०१ अ०४ छं०४

शब्द नाद का उदाहरण —

भ नँ नँ नँ नँ नँ नँ छुट्टिय सर जुट्टिय नहि हुट्टिय।
फ नँ नँ नँ न नँ नँ तव फुट्टिय सुर टुट्टिय धुब लुट्टिय।
व नँ नँ नँ नँ नँ नँ घुट्टिय लगि बान सौ असि मुट्टिय।
ध नँ नँ नँ नँ नँ नँ जुट्टिय भट मुट्टिय गर घुट्टिय। ज० १ अ० ४ छंद

ऐसे छन्द वीर रस के साधक न होकर बाधक ही होते हैं।

कवि ने छन्दों के विभिन्न रूप लिखने में सफलता पाई है। इससे नीरसता भी कुछ कम हो गई है। अमृत ध्वनि, कवित्त, छप्पय,

त्रिभगी, नाराच, तोमर, पद्धरी तथा अरिल्ल छन्दों में जो रचना हुई है, वह अत्यन्त प्रभावशाली तथा ओजपूर्ण है। इसके अतिरिक्त सनुता, पवगा, लक्ष्मीधर, हरिगीतिका, दुपई चौबोला, भुजगी, रोला, कद, मदनहरा, समानिका नीसानी, नूपा और मालिनी आदि छन्दों में वीर रस वर्णन में कवि सफल नहीं हुआ है। इससे यह कहना ठीक ही प्रतीत होता है कि विशिष्ट रस के उत्कर्ष में विशिष्ट छन्द ही उपयुक्त होते हैं।

भाषा

भाषा के सम्बन्ध में कवि ने पूर्ण स्वतन्त्रता का उपयोग किया। ये तथा इनके आश्रयदाता* दोनों व्रज निवासी होने के कारण इनकी भाषा पर व्रज का प्रभुत्व अधिक होना स्वाभाविक है। फिर भी कवि ने मारवाडी, खडी बोली, पजाबी, डिंगल आदि भाषाओं का प्रयोग स्वतन्त्रता से किया है। इनमें से अधिकाश भाषाएँ व्रजभाषा के अन्तर्गत आ सकती हैं। इसके कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

पजाबी और खडी बोली मिश्रित —

> इसी गल्ल धरि ध्यान में वकसी मुसक्याना।
> हमनूँ बूझत हौ तुसी क्यों किया पयाना।
>
> १ ज० २ अ० ७ छद

पजाबी —

> (क) पोता मालिक निजाम दा सुनि एहि गल्ला।
> हुकुम मँगिया साहि सें हुण अग्गे चल्ला।
>
> १ ज० ४ अ० २० छ०

(ख) स्वा लई श्वास तजी जिया की। याही प्रिया की न किसूमिया की।

*भरतपुर-नरेश सजाधिपति भी कहे जाते हैं।

, "ब" में अधिकांश ब्रज भाषा ही की है; किन्तु "किसुमिया" 'जटवारे' में बोला जाता है जो कि पंजाबी से प्रभावित है।

उर्दू:—

> रब की रजा है हमें सहना बजा है वक्त।
> हिन्दू का गंगा है आया है और तुरकानी था।

पूरबी:—

> बबुआ न आवा मोर भेयन न पावा याके।
> तुपक की न लावा गांठि डीबू आन घावा है।
> चाकरी को लकरी की फकरी बिहानी कीन्ह।
> मनई न कनई दिहौंन या बनावा है।

मारवाड़ी तथा ढुंढारी:—

> कोठे रह्या ठाकराँ कि ठाकरा पधार्या बीरा।
> चाकराँ लारैं रहै उभोर पग धोवाँ छाँ।

इस ग्रन्थ में ब्रजभाषा के साहित्यिक-रूपों के अतिरिक्त प्रचलित-रूप के भी उदाहरण कतिपय मिल जाते हैं। भाषा की दृष्टि से इसे हम उच्चकोटि का ग्रन्थ कह सकते हैं।

इनके श्रेणी-निर्णय के विवाद में न पड़कर हम इतना ही कह सकते हैं कि इनकी गणना वीररस वर्णन करनेवाले अच्छे कवियों में की जा सकती है। किन्तु कतिपय महान् त्रुटियों के कारण ये वीररस वर्णन में सफल नहीं हो सके।

सुजान-सलाबतखाँ युद्ध-वर्णन

तृतीय-जंग

कवित्त

बाप बिष चाखै भैया खटमुख राखै देखि,
असन मैं राखै बसवास जाकौ अचलै।
भूतनु के छैया आस पास के रखैया,
और काली के नथैया हू के ध्यानहू ते न चलै।
बैल बाघ बाहन बसन कौं गयंद-खाल,
भाँग कौं धतूरे कौं पसार देतु अचलै।
घर को हवालु यहै संकर की बाल कहै,
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै।

दोहा

ठारै सौ रु पचोतरा, पूस मास सित पच्छ।
श्री सुजान विक्रम कियौ, ताहि सुनौ नर दच्छ।

छन्द अरिल्ल

बहुत दिना बीते निज देसहिं। तबहीं दूत कह्यौ संदेसहि।
दिल्लीपति बकसी इहि देसहिं। आवत तुम सौं करन कलेसहिं।
सहस तीस असवार संग गनि। पैदल पील पील बहुतै भनि।
जोरैं तुरक सहस दस बीसहि। आवत तुम सौं करि मन रीसहि।
अलीकुली, रुस्तमखाँ संगहि। हकीमखाँ कुबरा हित जगहि।

फतेअली औरो बद्द मीरन। राजा राउ लयें संग धीरन।
इन्द्रनगर दच्छिन दिस कढ़िइय। निपट गरूर पूर हिय चढ़िइय।
कछू दिननु आवै मेवातहिं। करिहैं तहाँ अधिक उतपातहिं।
यातें वेगि करौ कछु घातहि। जातें याकौ होइ निपातहि।
अब जौ नीक होइ सो कीजहि। याहि मारि जग में जस लीजहि।
यों कहि दूत नाइ निज सीसहि। सूरज आइ कह्यो व्रज-ईसहिं।
तुरक सहस जोरें दस बीसहि। दिल्ली ते निकस्यौ धरि रीसहि।
हम सौं जुद्ध करन मन राखतु। महाराज मैं हूँ अभिलाषतु।
आइसु ईस तुम्हारौ पाइय। तौ याकौं कछु हाथ लगाइय।
तब व्रजेश सुनि कै यह भाषिय। तात मतौ मो मन यह राखिय।

सोरठा

दिल्ली ते कढ़ि दूरि, जब आवै मैदान भुव।
एक झपट करि सूर, याकौ दूरि गरूर करि।

दोहा

मतौ मानि बदनेस कौ, सूरज उदित प्रतापु।
आइसु लै असवार ह्वै, करि हरदेव सुजापु।

छन्द पद्धरी

जब चढ़्यौ सिंह सूरज अमान। बज्जे निसान घन के समान।
फरै निसान सोभित दिसान। अरि गहन दहन मानहुँ कृसान।
सुंडाल चलत सुंडनि उठाइ। जिनकैं जँजीर झनझनत पाइ।
घनघनत घंट अरु घुघुर-माल। मनमनत भँवर मद पर रसाल।
छनछनत तुरगंम तरह दार। फनफनत वदन उच्छलत बार।
सनसनत सिमिटि जब करत दौर। गुनगिनत सु तिनके कविनु-मौर।
सोहैं अनेक गजगाह वंत। चमकंत चारु कलगी अनंत।

झलकत जिरह बखतर नवीन। तमकत वीररस भट प्रवीन।
टमकत तबल टामक बिहद्द। ठमकत टाप बिनु तुव गरद्द।
ढमकत ढोल ढक्का अगार। धमकत धरनि धौंसा धुंकार।
रमकत वीर करि करि सुचोप। लमकत तुरंगम पाइ पोष।
हमकत चले पाइक अनेक। इक नग रग जानत बिबेक।
कादह चड कर कटि निषग। इक चड भुसुडी लै तुफग।
इक सेल साँग समसेर चम। रनभूमि भेद जानत सुपर्म।
सब चढे बढे उच्छाह पूरि। छवि गयो गगन रवि उडिय धूरि।
चतुरंग चमू सत रग रूप। सजि चढ्यौ सूर सूरज अनूप।

दोहा

कूच कियौ डेरा दियौ, नौगाएँ मेवात।
तरन तनेने तेह सों, जुद्ध हेत ललचात।

हरगीत छन्द

भूपाल-पालक भूमिपति बदनेस नन्द सुजान हैं।
जानें दिलीदल दक्खिनी कीने महाकलिकान हैं।
ताकौ चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइ कै।
सजि सैन सूरज चढ्ढियौ कहि प्रथम अंक सुनाइकै।

इति प्रथम अंक

छन्द पवगा

सूरज चारि उपाय प्रवीन सुचित्तई।
साम दाम अरु भेद दंड धार नित्तई।
खल के मन की लैन बात करि सील की।
बिदा करी समुझाइ प्रवीन वकील की।

देस-काल बल-ज्ञान लोभ करि हीन है।
स्वामि काम मं लीन सुसील कुलीन है।
बहु विधि बरनै आनि हिये नहि भय रहै।
पर-उर करै उदेग दूत तासौं लहै।
खान सलावत पास वकील सुजाइके।
करी सलाम कवाद अदाब बजाइकै।
नैननु लई सलाम सलावतखान ने।
कह्यो कहा कहि वेग मुतोहि सुजान ने।

दोहा

कुँवर बहादुर ने प्रथम, तुमको कह्यौ सलाम।
फेरि कही कि नवाब इत, आये हैं किहि काम।
करत चाकरी साह की, हम पायो यह देस।
ताहि उजारत आप क्यों, तुमकौं कह्यौ सँदेस।
जो कछु तुम्हैं दिलीस नै, कह्यौ ताहि कहि देउ।
ता माफिक हम सौं अरै, आप चाकरी लेउ।

छंद निसानी

इसी गल्ल धरि कन्न मैं बकसी मुसक्याना।
हमनूँ बूझत हौ तुसी क्या किया पयाना।
असी आवने भेद नु अब लौ नहि जाना।
साह अहम्मद ने मुझे अपना करि माना।
तखत आगरा ग्वालियर हिंडौन बयाना।
होडिल पलवल अलवरौ मेवात सध्याना।
वार पार मथुरा तलक हूवा फरमाना।
बकसी की जागीर दै बकसी म ठाना।

इनमें ते जे तुभ तरे तहँ करि मो थाना।
दो स्रोर दै साहि नू सँग होहि सयाना।
होर कहा है साहि ने सो भी सुन जाना।
असदखान सरकार दा चाकर क्यों माना।
तैं अपने मन में गना बूडा तुरकाना।
जे एक गल्ल कबूल करिकै हो मरदाना।
जब यों कह्यो नबाब ने सुन दूत अमाना।
मामल तिनहि न होइगी दिल अदर जाना।
तिसी घडी नब्बाब सैं कर जोरि बखाना।
जेहा जिसनू लोडिये तेहा फुरमाना।
बह बदा है साहि दा दरदुस्त पुराना।
दनों तरसता दे दियों तद ही उदराना।
जिसका नाउ सुजान है देसी नहि आना।
जमी न अँगुल छोडसा यह उस दा बाना।
मन रुखसद दीजिये नाहक बतराना।
हुए बदा दुहूँ ओर दा बदगी सुनाना।
ये गुमार नब्बाब सुनि दिल माहि रिसाना।
तब वकील सं यों कहा घरि जाहि पयाना।
उसा बख्त सिर नाइकैं सो हुआ रवाना।
आगे सिंह सुजान को भेजा परवाना।
अदल आपनी बदगी बक्सी खतराना।
जसी कहीं तेई लिखी नहि नेकु भुलाना।
हार लिख्या इस तुरक नूँ नेहा अँबकाना।
जग अखाडे में हमें रीझे मनमाना।

सोरठा

श्रीव्रजेस कौ नद, कागद बाँचि वकील कौ।
अग अग आनन्द हरसि, हिये हरदेव कहि।
सूरज कियौ विचार, सब डेरा ह्वाँई रहें।
चचल हय असवार, पाइक चलो चलाक से।

छद तोटक

रथ ऊँट गयद मुकाम किय। तिन सग पदातिनि राखि दिय।
छ हजार सवार तयार लिय। तिहिं सग सुजान हरष्षि हिय।
रवि ऊगत वार पयान किय। हय के असवार न और बिय।
करलै किरवान निसान दिय। जिहिं के समसूर न और बियं।
तिहिं वार तुरगम साजि घन। असवार भयौ बदनेस तनं।
रन जीतन कौं मन राखि पन। करि दुदुभि दीह अवाज घन।
जब कूच कियौ रस बीर सन। तब पीत पताकन सोभ बन।
जनु चँचल दामिनि सोभघन। हय दापन सौं कहुँ होत उन।
वह सेनु दरेरनु देति चली। मनु सावन की सरिता उमली।
अहि सैल मनौ मुख काढि रहे। अरु ढालनु कच्छप रूप गहे।
जल जोरि तुरगम देखि रहे। जनु मीन जहाँ धुन देह लहे।
द्रुम ज्यों द्रुम दाहति आवत है। इम सैन नदी सु कहावत है।
दस कोस सुभूमहिं पीठि दिय। तिहि थान मुकाम सुजान लिय।
निस एक बसे परभात भयौ। तब आइसु विह सुजान दियौ।

सोरठा

है नवाब दस कोस, कास पाँच औरौ चलैं।
दिखा दिखी कै जोस, रोस भरे लरिहैं भले।

यौं कहि सिंह सुजान, पाँच कोस कौ कूच करि।
चौकी करी अमान, सहस सहस असवार की।

छंद पद्धरी

सरदार सुगोकुलराम गौर। जिहिं संग सहस हय करत दौर।
तसु अनुज सुरतिराम संग। सत चार तुरीवर लेत जंग।
सत पाँच तुरी कूरम प्रताप। सँग लिये जुद्ध पर-दल उथाप।
अरु एक सहस बलिराम बीर। हय हकि हँकारत समर धीर।
सत चारि बाजि स्यौंसिंह धीर। इक सध्य हथ्थ बल करि गँभीर।
एक सहस बाजि कीने सनाह। वह धीर वीर महमद पनाह।
सत वेद किफ्यानतु सहित जोर। रन भूमि सिंह राना कठोर।
सत एक हयदनु लै उदग्ग। हरिनारायन जिहिं प्रबल खग्ग।
इहि भाँति और बलवान जोध। सब सत्रु हेत हिय धरत क्रोध।
इनपे सुगोल किय चारि चंड। खल ग्डन तिनकौ बल अखंड।
इन तैं सु अरध निजु राखि सध्य। जे हथ्थिनिहूँ सौं करत हथ्थ।
इहि भाँति पाँच चौकी बनाइ। यह कह्यौ बचन तिनसौं सुनाइ।
तुम जाहु चहूँ दिसि तें मरद्द परदलहि घेरि दीजै दरद्द।
जहँ खान पान पावै न जान। अरु जुद्ध बार सब सन्निधान।

दोहा

ऐसें बचन सुजान के, सबै सुभट उरधारि।
बकसी की तकसी करन, चले सेल पटतारि।

छन्द भुजगप्रयात

चहूँ ओर धाए धरा धूमधारें। धमकें धरें पाइ दै दै हमारें।
सबै ओर तें धाइ के धूम पारी। सुनैं सैद की फौज ने मौत धारी

हुते फौज ते बाहरे ते डराने । कुल-स्त्री लगीं ज्यों पराए पिया
किहूँ धाइकै धाइकै पील लीने । किहूँ फील पाठे पटकि हाथ की
किहूँ छैल ने बैल ले गेल चाही । किहूँ लै तुरी कौं घनी सैन गा
कहूँ फील फैले मनो हैं घटाए । भुसुंडन सों मारि काहू हटा
भए मैंद के लोग सब्बे इकट्ठे । मनो सिंह की सक सों रीझ प
तहा सोर बादयो कहे जहँ आए । करौ सावधानी रहौ ठौर ठा
सबै मैंदकी फौज यौं खलभलानी । लग आगिकै ज्यौं उठे औ ट पा
कही दौरि काहू सुनीं आप बख्सी । लगी एक ही बारही में धमक
घरा एक मे चेत ह्वै बीर बोल्यौ । घरी चार लौं आपनो सीस डोल्य
करौ वे त्वरा बेगही सावधानी । बुलाओ नकीबो नहीं तान मा

दोहा

तब नकीब सो या कियौ, हुकुम सलाबतखान ।
तीर बान अरु रहकला, चौकस करौ दवान ।
कटक बीच मे राखिकै, इनसे यह कहि देउ ।
आप आपने मोरचा, सब चौकस करि लेउ ।
न्नावदार रक्खा किये. सबै अरावौ एहु ।
ज्यों हरीफ आवै नजरि, तबै वडाधव देहु ।
तबही मुरज के सुभट, निकट मचायो दुन्द ।
निकसि सके नहि एकहू करयौ कटक मसमुन्द ।

हरगीत छुन्द

भूपाल-पालक भूमिपति, बदनेस नन्द सुजान हैं ।
जाने दिलीदल दक्खिना, कीने महाकलिकान हैं ।
ताको चरित्र कछूक सूदन, कह्यौ छुन्द बनाइ कै ।
यकसीहि बेढन सुभट मूरज, दुतिय अङ्कहि धाइ कै ।

चँवर चलत चहुओर चारु सिप्पर चमकावत।
चलत चमू चतुरंग मनहु पावस घन धावत।
ढुक्कौ तबल्ल इकगल्ल रव मल्ल भल्ल फेरत भले।
सूरज-प्रताप पावक निरपि मनु पतंग आवत चले।

पावकुलक छंद

जबहीं कटक निकट ते कढ़ढ़े। पाँचौ चंचल गयदनि चढ़ढ़े।
तबहि अग्र उतपात सुबढ्ढे। गिद्ध आइ सनमुख रव रढ्ढे।
लरत बिलाउ सामुहे आए। ग्रामसिंह श्रवननि फटकाए।
सिवा शृगाल सामुहें रोए। रजकु वस्त्र लाया बिनु धोए।
अगिन धुँधात मनुज कर लाए। मुकुलित केस जटिल दरसाए।
आनि उलूक धुजा पर बैठे। पलचर परत चमू में पैठे।
चलत गयद अचानक धुक्कैं। अकसमात चाल कौं चुक्कैं।
आँकुस गिरयौ महावत करतें। गद गद कंठ भए रन डर तें।
नैनन नीर बह्यो तिहि केरें। उठे रोम मानौ जम घेरें।
भए इते उतपात महा ए। बस परि काल नहीं मन लाए।
माना जमपुर जात पलाए। पाँचौ चढ़े गयदनि आए।
सहस दोइ दौर्इ हय सार्जे। पैदल पील बहुत गल गार्जे।
भए आनि रनभूमि इकट्ठे। निकट सिंह के ज्यौं मृगपट्ठे।
कोर बाँधि पाँचौ भए ठाढ़े। आगे धरे जँजालनु गाढे।
हथनाल रु हयनाल उदंडी। तोप रहकला और भुसुंडी।
अपनौ कटक घेरिकै ठाढे। कोस दोइ डेढक भुव गाढे।

दोहा

तबही सिंह सुजान सौं, कहा दूत ने धाइ।
आजु तुरक बाहर कढ़े, सजे सैन बहु भाइ।

दसमर्त्ता सुद्कीमर्ती, कुबरा अरु नलधारि।
फतेअली नु अलीकुली, निकसे जग निचारि।

सोरठा

सुनि तहँ सिह सुजान, चारयौ चौकी दृढ करी।
सहस दोइ लै ज्वान, आपु चल्यो पुठवार कौ।

छन्द अनुगीत

दुहुँ ओर धुधिय धूरि रुधिय चमक चुधिय रूद्र।
घनघटह नजिय गज गरजिय भीति भजिय क्रुद्ध।
हथनाल हक्किय तोप टक्किय धुनि धमकिय चट।
हयनाल छुट्टिय तरु भुमुट्टिय धरनि सटिय खड।
दुदुंभि धमकिय भेरि भकिय तूर नक्किय कूर।
अति घोर सोर भयान नडढ्ढिय मारु रडढ्ढिय सूर।
लखि दूर नद्दमि कद निहद्दहि बदन नद्दहिं टेरि।
कुद्दक्क्त नान चलाइ चट्टिय देत गोल नसेरि।
धरधरत देत धवान का खरखरत खखनर अग।
तरतरत तेद्दनु सौं भरे टर ट्टरत ढाल निषग।
करकरत धनुधन कौं खरे भर भरत तीर सुतीर।
धरधरत धद्द डिढ़ाव सौं नहि टरत एक हूँ वीर।
दुहुँ देरि दपटत हयन भपटत जाट लपटन धाइ।
फिरि फेरि अहुटन चलत चुट्टत टुट्टँ पुट्टत आइ।
नहि जमनि ठट्ट अहट्ट खाइय रट्टिय पाइ दबाइ।
ब्रज वीरहू रनधीर दम्पिय जैति हेन लुम्याइ।

छप्पय

या विधि जुद्दहि करत निरन रातन तब लग्गिय।
तुपक तोर जजाल चोट टनटे की दग्गिय।

यह सुनि सूरज कहिय आज ए आन न पावे।
करिहैं श्री हरिदेव सोर करनौ कह तामैं।
यों वचन मानि सबही 'सुभट सनमुख धाइय रोस धरि।
इकबार सिमटि चहुँ ओर ते कहत देव हरिदेव हरि।

भुजंगी छन्द

छुटे एकही वार सो जुद्ध काजैं। जुटे जाइकै धाइकै छोह साजैं।
खुटे खग्ग हथ्थौं अरब्बीनु चट्टे। हटै नाहिं कोऊ सरै साथ रट्टे।
चहूँ ओर सौं सोर यों घोर छायौ। मनौ सिंधु सद्दे हवा कौं हलायौ।
किहूँ सेल सम्भारि कै हाँक कीनी। जिये तेग सौं काट कै डारि दीनी।
किहूँ बाढ वे सेर समसेर वाही। किहूँ लै भुसुंडीनु सौं देह दाही।
तहाँ चंड कोदंड लै हथ्थ केते। धए सत्रु के सामुहें पग्ग देते।
कहूँ लेहु रे लेहु रे लेहु सद्दें। कहूँ देहु रे देहु रे वीर बद्दैं।
अहट्टै भयो सद्दता भूमि माही। तहाँ आपनी आपनी चोट नाहीं।
कहूँ सेल सन्नाह कौं फोरि वैठे। मनौ भानुजा मे फनी जाल पैठे।
कहूँ साँग दुहुँ आँग कौं भेदि अच्छी। किधौं थौन पानी चली भाजि मच्छी।
लगे तीर तीखे कछू भाल दीसैं। मनौ तीन नैना धरे ईसरी से।
कहूँ तेग तेगौ झरै झार उट्ठी। मनो जोर ज्वाला मुखी जग फुट्टी।
किते भाल भालेनु सौं लाल कीने। मनौ फाग के ख्याल के रंग भीने।
भरे जत्थ सौं बथ्थकै लत्थपत्थैं। मुखौं मारुही मारु कौं वीर कथ्थैं।
पलक एक ऐसे भई मारु भारी। लरैं दूरिही तें हँसै रैनचारी।
घए सूर ये सूर दै पाइ अग्गें। टराने तहीं खान के लोग भग्गें।
जिन्हें स्वामि के काम की लाज भारी। पड़े खेत खूनी नदी सक धारी।

दोहा

अलीकुली मुफ्तेअला, कुमरा गए पलाइ।
रुस्तमखाँ ग हकीमखाँ, ए पग रहे गडाइ।

हरिगीत छन्द

भूपाल-पालक भूमिपति, बदनेस-नन्द सुजान हैं।
जाने दिलीदल दक्खिनी, कीने महाकलिकान हैं।
ताको चरित्र कछूक सूदन, कह्यौ छंद बनाइ कै।
अति दुद जुद्ध विरुद्ध उद्धत, तृतिय अंक सुनाइ कै।

इति तृतीय अंक

दोहा

दुहूँ गयदन पै चढ़े, धनुष बान गहि हथ्थ।
जम किंकर जिमि कोह कै, नरनु करत लथपथ्थ।

छप्पय

तिनके जुद्धहि देखि बहुत चरचीचर आइय।
जुग्गिनि जोरि जमाति जहाँ जाहर जमुहाइय।
काली करत कलोल खलखलै तहँ खवीस गन।
भैरव भभरयौ फिरत पिता के हार हेत रन।
जहँ ईस दूत जगदीस के गीरवान गनिका उमगि।
तहँ रुस्तमखाँ रूहल्लीमखाँ स्वामिकाम हित रहिय पगि।

सजुता छन्द

रन तें न पाइ चलाइयैं। धनुबान लै समुहाइयैं।
बलु आपनौ सब संग लै। बिफरे सुबीर उमग लै।
तिहि देखि जट्ट भपट्टिए। पल एक माहिं दपट्टिए।
तहँ गौर गोकुलराम ने। बहु रंग जंग मचायने।
करि क्रुद्ध जुद्धहि पिल्लियौ। गहि सेल साँगनु मिल्लियौ।
तिहि भ्रात सूरतिराम हैं। बहु सूरता कौ धाम हैं।

बलिराम　विक्रम - आगरौ । गहि तेग जुट्टि उजागरौ ।
हरताप　कूरम　केहरी । बरसाइ बानतु की झरी ।
सिवसिंह　सार　सम्हारिकै । मिलि गयौ फौजहि फारिकै ।
अरु　मीर　बीर　निहडनौ । बहु रीति जुद्धहि मडनौ ।
लहि तेग तीरन जुट्टियौ । पर भूमि तैं नहि छुट्टियौ ।
सर स्यामसिंह सम्हारिकै । अरि मारियै ललकारि कै ।
व्रजसिंह　बीर　महाबली । जिनि लै अनी अरि की दली ।
पखरैत　पाखरमल्ल　हैं । करि धयो पारख हल्ल हैं ।
अरु किसनसिंह दरेर दे । गहि दई साँग करेर दे ।
बलवड सिंभू कौ तनै । जिहिं नाम हरिनाराइनै ।
अरु औरहु बहु सूर हैं । पर प्रान पीवन पूर हैं ।
इतमें इते बलवान है । उत सेख मुगल पठान हैं ।
तिन में मच्यो घमसान है । सर सेल साँग कृपान हैं ।
दुहुं दट्टि दट्टि दपट्टहा । अरि नाम लै लै रट्टहीं ।
इक देत घाइ झटक्किकै । हय तें सुदेस पटक्किकै ।
इक देत हूल हटक्किकै । इक एक परत लटक्किकै ।
सुहकीमखाँ　भुजदड तैं । अरु रुस्तमाँ, बलवड तैं ।
ज्यौं कुपित सेही अग तें । त्यौ छूटत बान निषग तैं ।
तिहि देखि सिंभू को बली । रिसज्वाल अन्तर उच्छली ।
फटकार सेलहि हथ्थ मैं । हय हंकियौ अरि गथ्थ मैं ।
सुहकीमखाँ लखि आवतो । जो हुतो चाप नचावनो ।
तिहि कान लौं कसि बान कौं । तकि दियौ ताकि भुजान कौं ।
सर सो लग्यो उर आइ कै । छत करयौ श्रोन बहाइ कै ।
वह वीर तीरहि कड्ढि कै । रस रुद्र रगहि बड्ढि कै ।
हय हक्कियौ गजदत पै । मनु राखि कै अरि अत पै ।
ज्यौं सिंह गज मदमत पै । हय लस्यौं यौं करि-दत पै ।

फटक्कारि सेलहिं उद कौं। तकि आपुनो अरि मुद कौं।
वह सेल गजमद मेल मेद कै। सुहकीम खाँ तनु छेद कै।
तवहीं सुतीरन वुट्टियौ। सुहकीमखाँ रन कट्टियौ।
इक दयौ सरकटि तकि कै। वह लग्यौ हिरनहि धकि कै।
तब ही सुसिभू पूत ने। गहि तेग बल मजवूत ने।
गज कुंभ दइव काकि कै। मनु परिव विज्जु तरकि कै।
फिरि धाइ गज गही दलौ। कसना विदारिय सुजरलौ।
सु हकीमखाँ भुव पारियौ। गज पिट्ठि तें गहि डारियौ।
इमि गिरत लोग निहारियौ। मनु कन्द कस पछारियौ।
तवही सु सेल रु साँग की। वरषा भई चहुँ आँग की।
तवहीं सु धोरन दौरि कै। लिए रुस्तमा झकझोरि कै।
करि एक एकहि चोट सों। राख्यौ हकीमहिं जोट सों।
तवही सु तिनके साथ के। करि एक एकहिं हाथ के।
सरदार जूझत रोत मे। भजि गोय वहुत अचेत मैं।
तजि कैं हथ्यारनु पिट्ठि दै। भग गए लसकर निट्ठि दै।
ब्रजवीरहू तिन सगहीं। चलि गए कटक उमंगहीं।

दोहा

तब ही वक्सी के कटक, खल भल परी अपार।
आए आए सब कहैं, सूरज सुभट उदार।
घरी चारि डेरा लुटे, लुटे तुरक वेहाल।
जट्ट जट्ट कहते फिरैं, सब ने जान्यो काल।
फेरि वगद ब्रजवीर सौं, आए ताही रोत।
जहाँ परे रुस्तमखाँ, अरु हकीमखाँ रेत।

कवित्त

हुव्व पै हकीमखा सुधक्कपक्क छोडि धायौ,
पग न डिगायौ भरि श्रायौ मन रीस नें।
निपट भयान छिन मान रन थान करयो,
सान धरै जानतु चलाइ दस बीस नें।
रेत खेत भयौ तऊ सेत जस लेत रह्यौ,
नेन नेत गायौ कोटि तीन श्रौर तीस नें।
जोगिनी रक्त पायौ तन ताकी प्रेतपूत,
सीस पायौ ईस नें असीस व्रज-ईस नें।
तोम तम छाए सुलतान-दल आए सौ तौ,
श्रमर भजाए उन्हें छाडे है अचक्सी।
काल कैसी रसना कराल करवाल तेरी,
व्याल भाल कटि नैं करन लागी तक्सी।
सूदन सुजान मरदान हरिनाराइन,
देव हरिदेव जग जैति तोहि बक्सी।
जूझत हकीमखाँ अमीरनु कँधक सी,
श्री बक्सी के जिय में परी है धक्पक सी।
चौकतु चकत्ता जाके कत्ता की कराकनि सौं,
सेन की सरारनि न कोऊ जुरे जग है।
बैयक अमीर मीर धीर तें फकीर करैं,

सवैया

जुद्ध जुरै न मुरै ब्रजबीर बुँदेलन सों धकपेल मचाए।
जुग्गिन खप्पर पूरि नची परे के सिर बीर हरे पहराए।
फेर फिरे तन श्रौन भरे मनु भोर के भान सुरेस पै आए।
देखत सिंह सुजान अमान सुजान भरे उठि अंक लगाए।

त्रिभंगी छन्द

ते ने मर्द्दाने सुजस पुराने सूर पुराने गुन गाने।
चरूमी दल भाने मगल साने यौं सुर साने हरखाने,
आए अनुराने बाँचि गाने जे मरदाने समुहाने।
ते कंठ लगाने दै बहु माने सूरज माने जग माने।

छन्द हरगीत

भूपाल पालक भूमिपति, बदनेस-नन्द सुजान हैं।
जाने दिलीदल दक्खिना, कीने महाकलिकान हैं।
ताकौं चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइ कै।
सु हकीम रुस्तम निर्त्तियौ रन अंक चौथा गाइकै।

इति चतुर्थ अङ्क

तोमर छन्द

तबही सलाबत खान। मनमैं भयो कलिकान
हत जानि दोऊ बीर। अब को धरै रन धीर।
जबही सु साम उपाइ। अपने हियैं ठहराइ।
तबही वकील बुलाइ। कहियौ बहुत समुझाइ।
तू जा सुजानहि पास। हमसौं करै इखलास।
सब मुलक उसको देहुँ। अरु आपने सँग लेहुँ।

ज्यों बने त्यौं तू लाउ। करिहौ बडो उमराउ।
जब यौं कही नव्वाब। सु वकील दीन जुवाब।
त्यौं कहत आपु नवाब। त्यौं कहौं जाइ शिताब।
वह है सुजान अमान। जो मानिहै बलवान।
कहि यौं उठै सिर नाइ। तिहि बार आयौ धाइ।
जहँ हो व्रजेस कुँवार। रनभूमि कौं जितवार।
तिहि निकट पहुँच्यौ जाइ। करि राम राम बनाइ।
तिहि देखि सिंह सुजान। कछु लग्यो मृदु मुसिक्यान।

दोहा

कहि भेज्यौ सु नवाब ने, सो सब सुनी सुजान।
कही कि कह्यौ नवाब कौं, हम कों सबै प्रमान।
सब सूरज ने यौं कह्यौ, मंद मंद मुसिकाइ।
मेरो जाय सलाम तू, कहियौ सीस नवाइ।
बेअदबी हमतें बनी, ताहि न राखैं चित्त।
ज्यों चाकर हम साहि के, त्यौं नवाब के नित्त।
बिनती एक नवाब सौं, मेरी रुखसद देहि।
लालासिंह जवाहरै, अपनो हरवल लेहि।
जैसी कही नवाब की, मानी सिंह सुजान।
त्योंहीं सूरज की कही, करी सलावतिखान।
लालासिंह जवाहरै, लीनो बेगि बुलाइ।
सब सेना ताकौं दई, बकसी दियौ मिलाइ।
श्रीसुजान के पूत कौ, हरवलु लियौ नवाबु।
कूँच डुढाहर कौं कियौ, दोउन गाँठ्यौ दावु।
मुस्तकीम लखि तनय कौ, हिय हरिदेव मनाय।
धायो आयौ ब्याह कौ, रैन दिना इक भाय।

तीन कर्म में एकहू, ज्यों मथुरा में होइ।
फेरि न आवै जगत मैं, यह विचार चित टोइ।
दोइ कर्म परबस निरखि, एक जान निज हाथ।
कर्यौ ब्याह मथुरा पुरिहि, कृपा पाइ यदुनाथ।

इति तृतीय अंग

जोधराज

जीवन

इनका जीवन-विषयक कोई प्रामाणिक वृत्तान्त ज्ञात नहीं है। इन्होंने "हमीर रासो" मे केवल इतना लिखा है:—

पृथिराज राज जग भौ प्रसिद्ध । भृगुवंश मध्य प्रगटे सुसिद्ध ।
नृप चन्द्रभानु तिहि वंश मध्य । किरवान दान दोऊ प्रसिद्ध ।
पिच निंबराण जग ग्राम नाम । जुत वर्णाश्रम निज धर्म धाम ।
जस कीरति भुवमंडल उदार । कर तेज प्रतापी बल अपार ।
सब कहैं राठ को पातिशाह । जस श्रवन सुनन की सदा चाह ।
द्विजराज गौड़-कुल जग प्रसिद्ध । विद्या निर्मित हरि धर्म वृद्ध ।
नव दया दान उदार वीर । गुणसागर नागर परम धीर ।
कुल पंच वृक्ष के मूल जान । द्विज आदि गौड़ जानत जहान ।
सौ चौदह सै चालीस ग्यार । जन मासन सागर अति उदार ।
अब सब को किंकर मोहि जानि । ऋषि अत्रि गोत्र में जन्म मानि ।
द्विजवरिया राव कवि विरद ताहि । शुभ राठदेश में उदित आहि ।
तिहि नाम ग्राम भल बीजवार । सब प्रजा सुखी जुत वरण चार ।
जहँ बालकृष्ण-सुत जोधराज । गुन जोतिष पंडित कवि समाज ।
नृप करी कृपा तिहि पर अपार । धन भरा धाम गृह बसन सार ।
वाहन अनेक सिंगार भूरि । सब भाँति अजाची कियो सूरि ।
नृप एक समय दरबार माहि । रासो हमीर कहीं सुन्यों नाहि ।

इससे केवल हमें इतना ही ज्ञात होता है कि 'पृथ्वीराज के वंश 'राठ पातिसाह' उपाधिधारी चन्द्रभानु नामक राजा निम्बराण

(नीमराणा) गाव का जमींदार था। जोधराज इसी के दरबारी कवि थे। ये अत्रि-गोत्रीय गौड़वंशीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था तथा ये काव्य करने में निपुण होने के अतिरिक्त ज्योतिष-शास्त्र भी जानते थे। एक समय चन्द्रभानु ने इन्हें हमीर-काव्य वर्णन करने की आज्ञा दी। किन्तु इससे इनके जीवन-मरण-तिथि पर कोई प्रकाश नहीं पडता।

इनका एकमात्र ग्रन्थ "हमीररासो" है। इसमे ९६९ छंद हैं। इसका संक्षिप्त साराश नीचे दिया जाता है:—

सारांश

प्रारम्भ में गणेश तथा सरस्वती की वन्दना की गई है। पृथ्वीराज के कुल में उत्पन्न हुए चन्द्रभानु का वर्णन करते हुए कवि ने अपना परिचय दिया है। सृष्टि-रचना के पश्चात् चन्द्र-सूर्य-वंश का वर्णन कर क्षत्रियों की उत्पत्ति आबू पर्वत से कही गई है।

बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे जैतराव चौहान नामक एक राजा हुआ। एक दिन वह शिकार खेलते समय एक वाराह के पीछे घोड़ा दौड़ाकर जंगल में अपने साथियों से बिछुड़ गया। वाराह का पीछा करते हुए वह पद्म ऋषि के आश्रम पर पहुँचा। ऋषि की आज्ञा से राजा ने भयकर तपस्या कर शिव को प्रसन्न कर लिया और वैशाख शुद्ध तृतीया शनिवार को रणथभौर के किले की नींव डाली।

पद्म ऋषि उसी दुर्ग में रहकर उग्र तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से भयभीत हो इन्द्र ने मकरध्वज को षड्ऋतु तथा अप्सराओं के सहयोग से उनकी तपस्या भग करने केलियेभेजा। वसन्त-ऋतु मे पद्म ऋषि की तपस्या भंग हो गई और वे अप्सराओं के साथ विलास करने लगे। कुछ समय के पश्चात् जब अप्सराएँ चली गईं, पद्म ऋषि को अपनी

अवस्था का ज्ञान हुआ और उन्होंने अपने पाच खड कर यश कुड में हवन कर दिया। इन्हीं पाच खण्डों से अलाउद्दीन, हम्मीर महिमा शाह, मीरगभरू तथा उरवसी (बेगम) की उत्पत्ति हुई।

हमीर का जन्म स० ११४१ वि० कार्तिक शुक्ल द्वादशी रविवार को हुआ और इसीदिन गजनी में मोहम्मद गोरी के यहां अलाउद्दीन का जन्म हुआ।

एक समय अलाउद्दीन अपने परिवार के साथ जगल में शिकार खेलने गया। बादशाह शिकार के पीछे कुछ दूर चला गया और सब बेगमें एक तालाब में, जल-क्रीड़ा करने लगीं। इसी समय एक बड़ी जोर की आधी आई और बेगम रूपविचित्रा भटककर जगल में चली गई। महिमाशाह वहाँ अचानक पहुँच गया। बेगम ने उससे अपनी वासना पूर्ण करने का प्रस्ताव किया। पहले तो महिमाशाह ने कुछ आनाकानी की किन्तु रानी के धमकी देने पर वह तैयार हो गया। उनके प्रेम-प्रसग में वहा एक शेर आया जिसे महिमाशाह ने केवल एक बाण से मार डाला यथासमय बेगम डेरे पर पहुचा दी गई।

एक दिन अलाउद्दीन उसी रूपविचित्रा से महल में वार्तालाप कर रहा था कि वहीं से एक चूहा निकल पड़ा। पहले तो बादशाह बहुत घबड़ाया किन्तु पश्चात् एक बाण से उस चूहे को समाप्त कर दिया। रूपविचित्रा को महिमाशाह की वीरता स्मृत हुई और वह हस पड़ी। बादशाह के अत्यन्त आग्रह करने पर उसने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर बादशाह अत्यन्त क्रोधित हुआ और महिमा को अपने राज्य से निकाल दिया।

अपने साथियों के साथ आश्रय के लिये इधर उधर भटकते हुए महिमा को हमीर ने शरण दी। इस समाचार से बादशाह अत्यन्त क्रोधित हुआ। उसने हमीर को महिमा को भे

देने की आज्ञा दी। हमीर ने महिमा को भेजना अस्वीकृत कर उसे पांच लाख की जागीर दी। वह सुखपूर्वक रणथंभोर के किले में रहने लगा।

बादशाह ने एक बार फिर दूत भेजकर महिमा को भेजने के लिये कहा किन्तु हमीर ने पुनः अस्वीकृत कर दिया। इसपर बादशाह ने अपने सरदारों को बुलाकर उनका मत पूछा। सिवा एक वृद्ध सरदार के सबों ने बादशाह की हां में हां मिलाई और आक्रमण करने की सलाह दी।

शीघ्र ही सेना तैयार होकर रणथंभोर के पास पहुँच गई। शाही सेनामें ४५ लाख पैदल, ५० हजार हाथी तथा ५ लाख घोड़े थे। मार्ग में इस सेना ने प्रजा को बहुत कष्ट दिया।

आक्रमण की सूचना पाकर हमीर ने अभयसिंह प्रमार, भूरसिंह राठौर आदि पांच सरदारों के साथ २० हजार सेना भेजी। इस सेना ने शत्रु का ऐसा सामना किया कि अमीर उमराव इधर उधर भागने लगे। इस युद्ध में ३० हजार शाही सेना काम आई।

इसके अनन्तर संपूर्ण सेना ने किले को घेर लिया और पुनः महिमा को मांगा। हमीर ने उनकी मांग अस्वीकृत करते हुए कहा कि मेरे पूर्वजों ने मुसलमानों का सदैव पराभव किया है। मैं अपनी प्रतिज्ञा से कभी हट नहीं सकता।

हमीर ने शिवजी की प्रार्थना की तथा बारह वर्ष लड़ने का आशीर्वाद प्राप्त किया। हमीर ने प्रसन्न होकर सरदारों को सन्नद्ध होने की आज्ञा दी। इसी समय छाड़गढ के स्वामी तथा हमीर के चाचा रणधीर ने हमीर से कहा कि शत्रुओं से पहले मैं ही युद्ध कर लूं।

*रणधीर ने शाही सेना पर गढ से खूब गोले तथा बाणों की

---

*इस संग्रह में यहीं से पद्यांश लिया गया है।

वर्षा को और स्वयं रणक्षेत्र में उपस्थित हुआ। शाही सेनापति मोहम्मद अली ने भी किले पर खूब गोले बरसाए। रणधीर तथा माहम्मद अलीका ज्यों ही सामना हुआ त्यों ही रणधीर ने पहले ही बार में उसके दो टुकड़े कर दिये। इसके अनन्तर मतखाँ सामने आया किन्तु वह भी न बचा। इन दोनों सरदारों के मरने से जब सेना में भगदड़ मचगई तब अलाउद्दीन ने बाहितखाँ को सेनापति बनाया। उसने अत्यन्त दृढता-पूर्वक युद्ध किया किन्तु अन्त में वह भी मारा गया।

बाहितखा के मरने से अलाउद्दीन भी घबड़ा गया। वजीर मुहम्मदखा ने उससे कहा कि राजपूतों से इस प्रकार जीतना असम्भव है। छाड़गढ़ पर रणधीर का परिवार रहता है। यदि यहां कुछ सेना छोड़ कर छाड़गढ़ पर अक्रमण किया जाय तो सम्भवतः रणधीर अपने परिवार पर आपत्ति देख शरण में आजाय। किन्तु ऐसा करने पर भी हाथ कुछ न आया। पाच वर्ष छाड़ का किला हाथ न आया। शाही सेना को इसमें एक नई आपत्ति का सामना करना पड़ा। दिन भर हमीर की सेना से युद्ध करने के अनन्तर थकी हुई सेना को रणधीर का आक्रमण व्याकुल कर देता था। अनेक शाही सरदारों का बलिदान हुआ किन्तु हमीर को कुछ भी हानि न हुई। अब अलाउद्दीन बहुत घबड़ा गया और हमीर को परास्त करने के अन्य उपाय सोचने लगा।

इसी समय रणधीर के कहने से हमीर ने अपने दोनों राजकुमारों को युद्ध का समाचार भेजकर चित्तौड़ से बुलाया। दोनों राजकुमार तीस हजार राठौर, आठ हजार चौहान, पाच हजार प्रमार सेना साथ रणथम्भौर आए। हमीर राजकुमारों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। कुमारों ने रानी आसुमती के चरण छूकर युद्ध में सम्मिलित होने की आज्ञा मांगी। कुमारों के युद्ध में सम्मिलित होने की सूचना अलाउद्दीन को मिल गई और उसने उनका सामना करने के लिये जमालखाँ

भेजा। जमालखां की प्रशंसा करते हुए बादशाह ने कहा—तुम महान् वीर हो। तुम्हीं ने पृथ्वीराज* को पकड़ा था।

दोनों कुमारों ने अत्यन्त वीरता से जमाल खाँ को मारा। इसके अनन्तर वालनखा ने आक्रमण किया। सायंकाल तक युद्ध हो रहा था। दोनों कुमार अपनी समस्त सेना के साथ वीर-गति को प्राप्त हुए। इस युद्ध में शाही सेना के सत्तर हज़ार सैनिक तथा अनेक उमराव काम आये।

इसके अनन्तर राव रणधीर ने तीस हज़ार सेना पर आक्रमण किया। भयकर युद्ध होने के उपरान्त बीस हज़ार राजपूतों के साथ रणधीर परलोक सिधारे। एक हजार स्त्रियां सती हो गईं। एक लाख मुगल सेना तथा दो सेनापति नष्ट हुए। किन्तु छाड़गढ़ अलाउद्दीन के हाथ आया।

इसके पश्चात् शाही सेना ने रणथंभौर घेर लिया। शाही सेना से मीरगमरू ने दुर्ग में नाचती हुई चन्द्रकला नामक 'पातुर' को एक तीर मार कर गिराया। इसके उत्तर में महिमा शाह ने एक ही बान से बादशाह का छत्र भंग कर दिया। वह भागने ही वाला था कि सुरजन नामक एक भंडारी उससे जा मिला। उसने हमीर को दुर्ग में अन्न की कमी बतलाकर खुलकर लड़ने के लिये बाध्य किया। शाही सेनापर भयंकर आक्रमण हुआ तथा उसका नाश कर दिया गया। महिमा शाह तथा मीरगमरू आपस में लड़कर मर गये। हमीर ने भी बड़ी वीरता दिखाई। महिमाशाह के मरने पर बादशाह ने युद्ध बन्द करने का प्रस्ताव किया किन्तु हमीर ने लड़कर मरना ही श्रेयस्कर

* ध्यान रहे कि पृथ्वीराज तथा अल्लउद्दीन के समय में डेढ सौ वर्ष का अन्तर है।

† संग्रह में यहाँ तक अंश लिया गया है।

समझा। अन्तमें शाही सेना का अपरिमित नुकसान हुआ और वह हार गई। अलाउद्दीन पकडा जाकर हमीर के सामने लाया गया। उसने उसे मुक्त कर दिया।

हमीर प्रसन्नता से लौट रहा था। भूल से उसका झंडा नीचे झुक गया और अलाउद्दीन के जीते हुए झंडे आगे हो गये। इस पर रानियों ने तथा सरदारों की स्त्रियों ने समझा कि हमीर मारा गया और यह शत्रु की सेना आ रही है। सबों ने जौहर कर अपना अग्निसमर्पण कर दिया। हमीर इस दुर्घटना को देखकर अपना शिर काटकर शिवजी को चढाने के लिये उद्यत हुआ। अलाउद्दीन यह सुनकर उसके पास गया और उससे अपने लिये आज्ञा मांगी तब हमीर उसे रामेश्वर जाकर समुद्र में डूब मरने के लिये कहा। बादशाह शाहजादे को राज्य देकर रामेश्वर गया और वहा समुद्र में प्राण-त्याग किया। हमीर ने भी शिव को अपना शिर अर्पण कर दिया। स्वर्ग में जाकर सब मिल गये। यही रासो समाप्त होता है।

ऐतिहासिकता

'हम्मीर-रासो' एक ऐतिहासिक काव्य होने पर भी उसमें इतिहास विरुद्ध अनेक घटनाएं तथा तिथियां मिलती हैं।

ससि वेद रुद्र संवत गिनो, अग्ग साक्र विल साक।
दच्छिन अयन सु-सरद ऋतु, उपजे गए न नाक।१७२।

गजनी गौरी शाहसुत, मय अलावद्दी साय।
—ताहि दिन रणथंभगढ, जन्म हमीर सुआय।१७३।

शशि रुद्र वेद संवत सुजान। षट सहसद्वक साकौ प्रमान।
रवि जाम अयन दच्छिन सुगोल। ऋतु शरद शुभ्र सुन्दर अमोल।१७४।

ग्यारा सौ दस आगरो संवत माधव मास।
शुक्ल तेज शनिवार के, चन्द्रास अन्यारा ८६।

प्रथम दो छंदों में हमीर तथा अलाउद्दीन का जन्म काल स० ११४१ बतलाया गया है और उसी का तीसरे छन्द में दुहरा दिया गया है। तीसरे छन्द के "शशि रुद्र वेद के' स्थान पर 'शशिवेद रुद्र" पाठ ही ठीक है जिसके अनुसार स० ११४१ वि० होता है। किन्तु इतिहासज्ञों को यह विदित है कि स० ११४१ में न तो हमीर का जन्म हुआ था और न अलाउद्दीन का। अलाउद्दीन का राज्य-काल १२९५ ई० से १३१५ ई० तक (स० १३५२ वि० से १३७२ वि०) माना जाता है।

चतुर्थ छंद में जैतराव ने रणथम्भौर की नींव डालने का समय वर्णित है। वह ११९० वि० बतलाया गया है। ये जैतराव हमीर के पिता थे। इतिहास के अनुसार हमीर का समय १३५७ वि० के आस पास होने के कारण ७५० वर्ष पूर्व उनके पिता का होना सम्भव नहीं।

इस ग्रन्थ में केवल ग्रन्थ रचना का संवत् ठीक दिया गया है —

चन्द्र नाग वसु पंच गिनि, संवत माधवमास।
शुक्ल सु त्रितियाजीवजुत, तादिन ग्रन्थ प्रकास।६६८।

इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की समाप्ति स० १८८५ वि० वैशाख शुक्ल तृतिया को हुई।

हमीर को ही चरित-नायक बनाकर जैन ग्रन्थ-कार नयनचन्द्र सूरि ने 'हमीर-महाकाव्य' नामक ग्रन्थ लिखा है। इसके संवत रासो की अपेक्षाकृत ठीक हैं।

रणथम्मनाथ सुत इक सूर। चंड तेज मनूँ ऊगत सूर।
रतनेस नाम जग है विख्यात। चितौड़ दुग्ग पाले सुतात।३५२।

इससे ज्ञात होता है कि चित्तौड़ में हमीर का पुत्र रतनेस (रतनसेन) है जिसे अलाउद्दीन ने पद्मिनी के लिये कैद कर लिया था। यह रतन-सेन शिशोदिया वंश का था, जिसे चित्तौड़ का राज्य परम्परा से प्राप्त हुआ था। जोधराज ने इसको हमीर का पुत्र बताकर शिशोदिया तथा चौहान वंश को मिश्रित कर दिया है। इस प्रकार जोधराज ने अनेक भ्रम फैलाये है। इसका कारण एक ही है। इतिहास में दो हमीर हुए हैं। एक चौहान वंश का तथा दूसरा शिशोदिया वंश का। दोनों के पिता का नाम जैतराव ही था। दोनों का समय भी लगभग एक ही था। जोधराज ने भ्रमवश दोनों को मिला दिया है।

महाग्र आवनों तजि सुभाहि। थापि सुदेव हिन्दवान जाहि।
बहु बोलि विप्रपूजा कराहिं। करि धूप दीप आरति बनाहिं।
पद परसे दरसे सकल देव। नैवेद्य पुष्प नाना सु भेव।
कर जोरि साहि वन्दन मुकीन। यह भाँति गवन डेरा सुलीन।

इसमें अलाउद्दीन द्वारा हिन्दू देवताओं की स्तुति कराई गईहै। यह एक इतिहास विरुद्ध बात है।

आलोचना

भारतीय इतिहास में हमीर की गणना महान राजाओं में की जाती है। शरणागत की रक्षा करना यह भारतीय प्रकृति ही है किन्तु हमीर ने महिमाशाह की रक्षा कर जिस आदर्श की स्थापना की वह अतुलनीय है। जोधराज को रासो की रचना में जो थोड़ी बहुत सफलता मिली है इसका कारण हमीर को आलम्बन बनाना ही है।

जोति सिसिर बित्तिय तबै, फिरि आयव ऋतुराज।
मिले उर्वसी पदम ऋपि, सरे शक्र के काज।१६०।

यह दोहा वसन्त-विषयक इकतीस दोहों को लिखने के बाद लिखा गया है। इसको प्रथम पंक्ति प्रारम्भ में होनी चाहिये थी। शास्त्रीय-दृष्टि से इसमें क्रमभंग दोष है।

मैं घरनो पतिसाह की रूप विचित्रा नाय।२१८।

इसमें 'नाम' के अर्थ में 'नाय' शब्द उचित नहीं है। यद्यपि ब्रज में नाम के लिये नाय का प्रयोग मिलता है किन्तु जोधराज के लिये हुए रूप में नहीं।

अलाउद्दीन का चूहे से डरना शत्रु-पक्ष की तुच्छता दिखाने के लिये कहा गया है। किन्तु इसका परिणाम उलटा ही हुआ। तुच्छ शत्रु पर विजय पाने में कोई महत्व नहीं है। यह साहित्यिक-दृष्टि से भी अनुचित है।

कविने हमीर का चित्रण अच्छा किया है। उसके पूर्वजों की वीरता का वर्णन कर उसकी दृढ़ता व्यक्त को है। हमीर के पूर्वपुरुष बीसलदेव ने सोनागढ़ के मुकाम पर मुसलमानों की ८० हजार सेना मारी। इसी युद्ध के कारण अजमेर मुसलमानों का तीर्थ बन गया।

४२० छन्द से लेकर ४२६ तक की गई शिव-स्तुति गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचन्द्र की स्तुति से प्रभावित है। शिवजी के संहारक देवता होने से युद्ध में उनकी स्तुति क्षत्रियत्व के उत्कर्ष का कारण होती है।

घाटी घाटी साह के, माटी मिलत अमीर।
राव जंग दिन मैं करैं, राति लड़ै रनधीर।४७७।

गण नाथ शम्भु दिनकर अवर क्षेत्रपाल मन रज्जिए।
रणथम्भ न्वेत दुहुं ओर सों, बीर पीर दुव सज्जिए।४७१।

इसमें दोनों ओर के देवताओं को एकत्रित कर उनसे युद्ध भी कराया

या है। ऐसे वर्णन से वीर-रस की उत्पत्ति नहीं होती किन्तु अद्भुत
-समें इससे सहायता मिलती है।

छाडगढ युद्ध-विषयक एक कहावत प्रसिद्ध है।

"जो कनवज काके करी, करी छाँडि रणधीर।८८॥

'पृथ्वीराज के चाचा ने जो वीरता कनौज मे दिखलाई वही वीरत
हमीर के चाचा रणधीर ने छाड में दिखाई'।

छन्द ६३६, ३७, ३८ में मीरगभरू द्वारा वेश्या के शरीर पर ती
लगने मे हमीर का घबड़ाना, तथा महिमाशाह के तीर से अलाउद्दीन
का छत्र टूटना, इन्हें महत्ता प्रदर्शित करने के लिये दिखाया गय
-। इसमें कुछ अत्युक्ति सी प्रतीत होती है। और फिर इतने महान वी
को निराशायुक्त दिखलाना उचित नहीं था।

हमीर की सहायता में भील सेना के युद्ध का अच्छा वर्णन कि
गया है।

यद्यपि एक स्थान पर इन्होंने घोड़ों सूची गिनाई है फिर भी मान
की तरह इनकी सूचियां अरोचक नहीं हैं। यदि जोधराज वीर-रस पर
ग्रन्थ न लिखकर शृङ्गार पर लिखते तो अधिक सफल होते। इन्होंने
प्रकृति तथा ऋतुवर्णन अपने काल के कवियों की अपेक्षा अच्छा
किया है। इन्हें अलकारों से वहीं तक प्रेम था जहां तक वे इनके घटना-
चक्र में सहायक होते थे।

भाषा

इनकी भाषा मिश्रित व्रज-भाषा है। इन्होंने प्राचीन कवियों के
समान 'हि' विभक्ति के स्थान पर 'ह' का प्रयोग किया है। 'वज्जत,'
करन्न, पच्छय आदि संयुक्ताक्षरों का भी प्रयोग है।

जोधराज की रचना में अनेक दोष होते हुए भी इसमें कोई सन्देह
नहीं कि हमीर का चरित्र जिस भाषा तथा जिस रूप में अकित होना चाहिये
था, उसे उसी रूपमे अंकित करने में जोधराज अशतः अवश्य सफल हुए हैं।

हम्मीर-रासो

रणधीर-यवन-सेना-युद्ध-वर्णन

दोहरा छन्द

मैं पहलै पतिसाह सों, करी बात अब टेक।
सो अर चौरे साहि सों, करो जंग अब एक।

त्रोटक छन्द

चढ़िए करि कोप हमीर मनं।
करि दिद्द सगद्द सम्हारि पनं।
बहु तोप सुसिद्ध सँवारि धरी।
बुर्जै बुर्जै धर धूम परी।
बहु कंगुर कंगुर वीर अरे।
सब द्वारन द्वारन धीर परे।
सब ठौरन ठौरन राखि भरं।
चढ़िए गजपै चहुवान नरं।
बहु वीर हमीर सु संग चढे।
गजराजन उप्पर द्वंद बढ़े।
करि डंबर अंबर सीस लगे।
मनु सोवत धीर सबीर जगे।
बहु चंचल बाजि करत्त खुरीं।
तिन उप्पर पाप्पर सोज परी।
नर जान जवान लसैं दल मैं।
रन मैं उनमत्त लसैं बन मैं।

बहु दुंदुभि बज्जत घोर घन।
निकसे तब राव करन्न रन।
बहु वारन वारन वीर कढे।
गज बाजि सु सिंदन जान चढ़े।
लखि साह सनम्मुख कोप किय।
रणथभ चहूँ दिसि घेरि लिय।
मिलि राव हमीर सु साहि दल।
विफरे वर बीर करत हल।
सर छुट्टत फुट्टत पार गज।
सु मनो अहि पच्छय मध्य रज।
तरवार बहैं कर पानि बल।
धर मध्य धरैं धर इक्क खल।
मुख अग्ग बढै रणधीर लरैं।
तिनसों पतिसाह के वीर अरैं।
अजमंत महुम्मद इक्क अली।
तिन संग असीमु सहस्स चली।
तिहिं इद अमद बिलद कियो।
रणधीर महा रण झेलि लियो।
करि कोप तबै रणधीर मन।
वर चैन कहै पन धारि घनं।
महिमंद अली मुख आय जुरयो।
दुहुँ वीर तहाँ तब जुद्ध करयो।
अजमत कमान लई कर मैं।
रणधीर कै तीर कढ्यौ उर मैं।
रणधीर सुकोपि कैं साँगि लई।
अजमत कै फूटि के पार गई।

परियो अजमत सु खेत जबै।
महमद अली फिरि आय तबै।
रणधीर सु कोपि के बैन कहे।
कर देखि अबै मति भुल्लि रहे।
किरवान सु धीर के अग दई।
कटि टोप कछू सिर माँझ भई।
तब कोप कियो रणधीर मन।
किरवान दई महमद तन।
परियो महमद अमद बली।
तब साहि कि सैन सबै जु हली।
लुथि लुथ्थि परै बहु बीर अरै।
बहु खजर पजर पार करै।
धर सीस परै करि रीस मन।
कर पाव कटे बहु कोन पन।
यहि भाँति भिरे चहुवान बली,
मुरि साह की सेनि सु भग्गि चली।
बलखी जु परे जू हजार असी,
लखि कालिय अट्ठ सु हास हँसी।
चहुवान परे इक जो सहस,
सुरलोक सबै बर बीर बस।

दोहरा छन्द

असी सहस बलखा परे, महमद अजमत खान।
तहाँ राव रणधीर के, परे सहस इक ज्वान।
भजी फौज सब साह की, परे मीर दाइ बीर।
करे याद पतिसाह तब, गज्जनि गढ के पार।

चौपाई छन्द

भजिय फौज साह की जबहीं,
फिरो फिरो बानी कह सबही।
तहाँ साह करि कोप सु झुल्लिव,
समर भुम्मि अब छंडि सुचल्लिय।
सरबसु खाय भोग करि नाना,
अबै परम प्रिय लागत प्राना।
समर विमुख तैं जानब जाई,
हनूँ आप कर तजों न सोई।
सुने साह के कापि सु बैन,
फिरी सैन इम मत्र सु एन।
ज़खतर पक्खर टोप सु साजय,
जुरे जग बहु मीर सु गजिय।

दोहरा छंद

बाँदित खाँ पतिस्याह सों,
करी सलाम सु आय।
हजरत देखहु हाथ मम,
कैसी करूँ बनाय॥

पद्धरी छन्द

करि कोप बादितखाँ जुरे जग,
मनो प्रलै पावक उठे अग।
गुजत निशान फहरात धुज,
जुटि जिरह टोप तन नैन सज।

किए हुक्म साह तन मैं रिसाइ,
किन्हो सु जङ्ग फिर वीर आइ।
छूटत तोप मनु वज्रपात,
जल सुक्कि धरा छुटि गर्भजात।
बहु बान चलत दोउ ओर घोर,
अररात अमित मच्यो सु सोर।
मए अध धुंध सुज्झै न दृष्य,
वीर चहुवान तहँ करि अकथ्य।
रणधीर उतै वाघत्ति खान,
वजरंग अंग जुट्टे सु पान।
हजार वीस वादित्य साथ,
सब जुरे आय रणधीर हाथ।
वज्जंत सार गज्जत अभ्भ,
रणधीर सथ्थ आए स सभ्भ।
ोध जोध वाहत सार,
टूटत अग फूटंत पार।
ल सेल दोउ ओर वीर,
वाहत वीर किरवान धीर।
वीस वद्धत साह,
धर परे वीर करि अकथ गाह।
र मीर दोउ भिरे आइ,
वाभत्त गाहि तन रोस वाइ।
सुढाल मू टूटि ताम,
फिर दई सीस किरवान लाम।
सु सीस धर परयौ जाय।
दुई टुक्क होय भुमि अद्ध काय।

दोहरा छन्द

भयो सोच जिय साह कै, जीतिय जग हमीर।
वादित खाँ से रन परे, बीस हजार सुवीर।
महरम खाँ कर जोरि कै, करै अर्ज तिहिं बार
लै कर शेख हमीर अब, किमि मिल्यो यहिं बार।
गही नेग तुम सों अबै, हठ नहिं तजै हमीर।
सेख देय मिल्लै नहीं, पन सच्ची वर वीर॥

छप्पय छन्द

कर कुरान गहि साह सीस साहिब को नायो।
गढ़ दिस दल चहु ओर घोरि रज अम्बर छायो।
देखि अलावदि साह कहै दल बद्दल भारी।
अब हमीर की अदिल आय पहुँचीह सुसारी।
महरम्म खान इम उच्चरै अदिल हाथ साहिब तनै।
का होनहार हैहे अबै को जानै कैसी बनै।

दोहरा छन्द

हजरति अपने इष्ट पर, पावक जरत पतंग।
यह हमीर कबहुं न तजै, सेख टेक रणथंभ।
साह दसों दिसि जित्ति कै, अब आए रणथभ।
कहै राव रणधीर सों, जुरो सूर रण रग।
अप्पन धर्म्म न छडिए, कहै बात रणधीर।
निसि वासर अब साह सों, किज्जिय जंग हमीर।

छप्पय छन्द

को कायर को सूर द्यौस बिन दृष्टि न आवै।
बिन सूरज की साखि सार छत्री न समावै।

बीर गिद्ध अरु सभु सकल फलहारी जेते।
घर पर धर न पाँव रैन मैं दिनचर जेते।
इम कहै राव रणधीर सों मैं अधर्म नाहिन कहूँ।
अब अलावदी साह सों रैन सार कबहु न गहूँ।

छंद भुजगप्रयात

लरै नो सयद्द रणथ्थभ देवा।
करै क्रोध भारी मिलै हर्ष भेवा।
गरज्जत घोरत श्रातंक भारी।
घनै घोर बर्सन्त वर्षा करारी।
कभू हल्लवै भुम्मि गज्जत वीर।
कभू घोर अघार बर्सन्त पीर।
गणन्नाथ हथ्थ लिए तिच्छि फसा।
पिनाकी पिनाक किए आप दसा।
धरै मुद्गर हथ्थ भैरव अमानो।
इसे दैव जुद्द सु कट्टे अमानो।
इतैं पीर हजरत्त वे सथ्थ मिल्ले।
अबद्दल्ल एक हुसैन सुमिल्ले।
रहीम सयद्द सुलत्तान जक्का।
अहमद्द कानीर सूल सु मक्की।
इतै बीर जुट्टे सु कट्टे पुरान।
भयो जुद्द भारी सु भूले कुरान।
परे खेत नौ सैद दट्टे धरन्नी।
हँसे शकर भैरव की करन्नी।
परे पीर यू नौ रसूल सु अल्ली।
परयो पीर दूजो कुतब्ब सु चल्ली।

परयौ जो हुसैन करयौ जुज्झ भारी,
परे हेरि दिग्मत्ति अल्लो सुधारी।
सयद सुलत्तान आयो जु मक्का,
अदल्ली परे और तुकी सु बका।
परयौ दूसरो जो रसूल सु खेत,
तवै बादस्याहू भयो सो अचेत।
परे मीर नौ सैद जानत साह,
लरै अट्ठ बीर हटै नैन काह।
अजमत्त भारी हमीर सु जानी,
तरै कुच्च किन्नो दरै छाडि कानी।
उलट्टे परे जोय किन्नो दिवान,
जुरे खान जेते सु तेते अमान।
वजीर अमीर सबै खान बुल्ले,
सबै बात मन सु मत्री सु खुल्लै।

दोहरा छन्द

मरहम खाँ उज्जीर तब, अरज करी सब खोलि।
लख बलखी उमराव तो, सदकै भए हरोलि।
अरु रक्सी के वचन सुनि, साह कियो अति सोच।
निग्रही राव हमीर की, गिनो हमैं सब पोच।
महिमा साह हमीर गड, ये तीनो साबूत।
राजी रही हमीर की, मैं कायर जु कपूत।

छप्पय छद

मरहम खाँ कर जोरि साह कों ऐसैं भाख्यौ।
इक हिकमत तुम करो नीक जानो तो राख्यौ।

महल्ल छाडि करि फते बहुरि गढ सौं जुध किज्जिय।
तोरि छाड़ि रणधीर मारि कैं पकरि सु लिज्जिय।
आतंक संक गढ मैं परै मिलै राव हठ छंडि कै।
गहि सेख देय मिलि सुत्तयै करौं कुच जब उलटि कै।

चौपाई छंद

कहै साह महरम खाँ सुनियौ।
यह मत खूब किया तुम गुनियौ।
छाँड़ि दरा को प्रथम दिल्ली जे।
चन्द रोज महँ फतह जु कीजे।

दोहरा छंद

मरहम खाँ पतसाह कौं, हुक्म पाय तिहि वार।
सकल सेन तजवीज करि, घेरी छाडि हकारि।

छंद विथक्खरी

कोप पतिसाह गढ छाड़ि लग्गै।
सहस सब तीन नीसान वग्गै।
सहस दस सात आरब्ब छुट्टै।
गरज गिरि मेरु पाषाण फुट्टै।
उठ्ठत गुब्बार मढि तोप लग्गै।
गए बन छुडि मृग सिंह भग्गै।
लक्ख पच्चीस दल और फेरयौ।
यह भाँति पतिसाह गढ छाड़ि घेरयो।
कहै पतिसाह नहिं बिलम किज्जे।
चन्द दिन बीचि गढ छाडि लिज्जे।
कहै रणधीर मन धीर धरिए।

'' दोहरा छंद

वर्ष पन्च गढ़ छाड़ि को, नहि संश्वत पतिसाह।
द्वादस वरष रणथभ सों, निधरक लरि अब साह'।

छप्पय छन्द

धनि सु राव रणधीर साह मुख आप सराहै।
मुझ दिसि सम्मुख आय कोप करि सार समाहै।
साह बचन इम कहै मीर महरम खाँ सुनिजे।
जीति जंग रणधीर धन्य वह राव सुभनिजै।
पतसाह राडि सफर्जग की मनै करिय आपन सबै।
चहुँ ओर जोर उमराव सब किए मोरचा दढ़ अबै।

जबै राव रणधीर कहै हम्मीर सुनिज्जै।
सबै हिन्द को साथ बोलि रणथंभ सुलिज्जै।
लिखि फर्मानह राव वंश छत्तीस बुलाए।
जुरे जग चौगान उमंग दल बद्दल छाए।
कर जोरि सबै हाजिर भए राव बचन विधि या कहै।
मैं गही तेग पतिसाह सो धरि जाहु जौन जीवो चहै।

कह काको रणधीर राव सुन बचन हमारे।
अबै छाडि कित जाहिं खाय करि निमक तिहारे।
अलोदीन सो जुद्ध छाडि गढ़ चौरे मंडौ।
जितो साहि की सेन मारि खग खंड विहंडौ।
चाहूँ सुनीर या वंश को अकथ गथ्थ ऐसी करूँ।
रवि लोक भेदि भेटूँ सुभट अप्प सीस हर हिय धरूँ।

आय चहुँवान सज्जंग करिये।
निस्वान सों सद्द सुन्दर सुवज्जै।
राव रणधीर आयुद्ध सज्जै।
वीर रस राग सिघूर बज्जै।
सहस इकतीस दल सग लिज्जै।
सहस दस सूर कुल तेग खेलैं।
अप्प जिय रण्यिपरमाल पिल्लैं।
यही भाँति रणधीर चौगान आए।
उडि जमीं गर्द असमान छाए।
अबदल्ल करिम्म पतिसाह पेले।
मीर रणधीर चौगान खिल्ले।
बहे वान किरवान औ चक्क चल्लैं।
रणधीर कह सूर तुम होहु भल्लै।
साह सों सूर समुक्ख जुरिए।
हवस के मीर दस सहस परिए।
टुट्टि सिर मीर धड़ पहुमि लप्पै।
पच सत सूर उडि गिद्ध भप्पै।
राव रणधीर अप्पन सिधारे।
अबदुल्ल करम खाँ पहुमि पारे।
साहि रणधीर सज्जग जुरिए,
साह दल उकटि दो कोस परिए।
कहै रणधीर नहि विलम किज्जै,
वीति चन्द रोज गढ छाडि लिज्जै।
गढ काट हू भाँति नहि हथ्य आवै,
यु ही पतिसाह दल क्यों खिपावै।

दोहरा छन्द

वर्ष पन्च गढ छाडि का, नहिं सक्त पतिसाह।
द्वादस बरष रणथभ सों, निधरक लरि अब साह।

छप्पय छन्द

धनि सु राव रणधीर साह मुख आप सराहै।
सुभ दिसि सम्मुख आय कोप करि सार समाहै।
साह बचन इम कहै मीर महरम सों सुनिजे।
नौति जंग रणधीर धन्य वह राव सुभनिजै।
पतशाह राहि सप्तजग की मनै करिय आपन सबै।
चहुँ ओर जार उमराव सब किए मोरचा दृढ अबै।

जनै राव रणधीर कहै हम्मीर सुनिज्जै।
धनै हिन्द को साथ बोलि रणथम सुलिज्जै।
लिखि पर्मानह राव वश छत्तीस बुलाए।
जुरे जग चौगान उमग दल बद्दल छाए।
कर जोरि सबै हाजिर भए राव बचन विधि या कहै।
मैं गही तेग पतिसाह सों घरि जाहु जौन जीवो चहै।

यह काको रणधीर राव सुन बचन हमारे।
अनै छुडि चित जाहिं खाय करि निमक तिहारे।
अलोदीन सो जुद्ध छुडि गढ चौरे मडौ।
जितो शाहि की सेन मारि खग खड विहडौ।
चाहूँ सुनीर या वश को अकथ गथ्य ऐसी करूँ।
रबि लोक भेदि मेटूँ सुभट अप्प सीस हर हिय धरूँ।

दोहरा छन्द

कहै राय हम्मीर सों, मंत्र एक रणधीर।
जमीति गढ चित्तौर की, अजहुँ न आइय बीर।
लिखि फर्मान हमीर तब, पठए गढ चित्तौर।
बन्नि खान बल्हन कुँवर, हर्ष कीन नहिं थोर।

चौपाई छन्द

हर्षे उभय कुँवर चहुआन।
चतुरंग के तुरग सजि आन।
सोला सहस चमू सजि सारी।
सजे खान बल्हन सो भारी।
सहस तीन कमधज्ज सु जानों।
सहस अट्ठ चहुवान बखानों।
सहस पञ्च पम्मार अमानै।
सोला सहस सजे करिवानै।

मोतीदाम छंद

मिले तब आय कुमार सु दोय।
हमीर सुचाव कियो बहु जोय।
बढ्यौ हिय हर्ष दुहूँ उर सोय।
कहै तब बैन सु राव सु होय।
करैं हम जग लखो अब हथ्थ।
उठे दुहुं बीर कही यह गथ्थ।
चढे चतुरग कियो तन कोप।
मनो अरुनोदय भान सु आप।

बजे रणतूर सु भेरि सबद्द ।
भए पद गोमुख वीर सु सद्द ।
चढ़े कुँवरेस तबै चतुरंग ।
बढ्यौ हिय हर्ष करै रणरंग ।
कहै तब खान सु बाल्हन सीह ।
करै सफ़जंग अवैदल बीह ।
रतन्न कुमार रखो गढ़ ओर ।
नरव्वल ग्वालिर और चितोर ।
नठै तब अन्न करो सफजग ।
सजो मति टेक लरो अभंग ।
अन्नी सुनि बैन हमीर सुभाय ।
भरे जल नयन रहे मुरझाय ।
कही तब और नहीं थिर कोय ।
चले गिर मेरु नहीं थिर होय ।
मिले सुरलोक ससोक सकौन ।
सुनी यह राव रहे गहि मौन ।
गए रनबास जहाँ दोउ वीर ।
कियो परनाम जुहार सुधीर ।
सबै रनवास भरे जल नैन ।
कही तदि आसमती यह बैन ।
करो तुम उच्छह है यह बार ।
कहे तदि बैन हँसे सु कुमार ।
धरो तुम सीस हमारे सु मोर ।
लरैं सिर सेहर बाँधि सजोर ।
बँध्यौ तब मौर कुमारन सीस ।
दई बहु भाँतिन आसु असीस ।

किये बहु हर्ष कुमार अपार ।
गए हर मंदिर सो तिहि वार ।
गनेसुर शंकर पूजि सुभाय ।
करै बहु ध्यान गहे जय पाय ।
चढे बरबीर बढ्यौ हिय चाव ।
बजे बहु बाजि निसानन घाव ।
गजे असमान धरा बहु भाय ।
गजे घनघोर घटा मनु छाय ।
तुरग अनेक सुफेरत सूर ।
बनी तिन उप्पर पप्पर पूर ।
झलक्कत नूर चमक्कत सेल ।
चढे मुख ओप बढे मुख मेल ।
उड़ै रज अंबर सुज्झ न भान ।
हसे हर देखत छुट्टिय ध्यान ।
चली संग अच्छरि जुग्गनि ताम ।
मिली बहु पलनि गिद्धनि जाम ।
मिले बहु भूचर खेचर हूर ।
चले पल चारिय भूत सुभूर ।
करे सु जुहार हमीरहिं ध्याय ।
करी यह बात परस्सि सुपाय ।
मिले भव आनि सुनो चहुवान ।
करै कुल रीत तजै नहि बान ।
तजौ धनधाम रु लोभ सु मोह ।
धरौ मनु टेक सरन्न सुजोय ।
इती कहि सीस नवाय हमीर ।
किया रणथभहि वदन धीर ।

चले सनमुख उमें कुंमरेस।
सजे चतुरग तनय करि रेस।
तहाँ पतिसाह अलावदि और।
चली दर बरति बाँधि सुमौर।

दोहरा छंद

करि असवारी कुमर दोउ, उतरे पौलि सु छांन।
डेरा करे उछाह जुत, बजि नोवति नीसान।
सुनि नरपति वे नाद तब, बहु उछाह गढ जान।
तब अलावदी हसम दिसि, चाहत भयो निदान।
बोलि खान सुलतान तब, मसलति करी जु साहि।
गढ में बहा उछाह अति, कहा सबब यह आहि।
है वह राव हम्मीर के, लघु भय्या के पूत।
लरन काज इन सेहरो, सिर बांध्यो मजबूत।
भइय सब पतिसाह उर, कीनो बहुत विचार।
जो न सिंह के मुख चढै, सो मिल्लै इन बार।

चौपाई छंद

कहै वजीर साह सुनि बत्त।
मीर मरन्विय जानि सु वत्त।
मर्कट-वदन सूकर सम स्वान।
ठग मनाग दैम म्लछ जान।
तुम सों मत प्रथिराज सु ठानौं।
गढ गजन आद गहि सानौं।
तुमहि दिल्ली के [illegible]।
[illegible] के मद सहाय।

वे दोउ कुमर पकरि अब लावै।
सन्मुख होइ ता मार गिरावै।
सुनि वजीर के बचन सुहाए।
मीर जमालखान बुलवाए।
कहै साह सुनि मीर जमाल।
है यह काम तुम्हारे हाल।
आगै तुम गहियो प्रथिराज।
त्यों तुम गहो कुँवर दोउ आज।

छप्पय छंद

सुनि जमाल खाँ मीर हथ्थ धरि मुच्छ सँवारिय।
पाँव परसि कर जोरि कवन बड काज निहारिय।
जो आयुस अनुसरों सकल हिन्दू गहि लाऊँ।
सम्मुख गहै जु सार मारि तिहिं धूरि मिलाऊँ।
इम कहि सलाम कीनी तुरत सज्जि सथ्थ सब अप्पबल।
सजि कवच टोप कर खग्ग गहि उभै ओर किन्निय मुहल।

भुजंगप्रयात छंद

इतै कुमर चित्रंग के जंग जुट्टे।
उतै मीर आरब्ब के तीर छुट्टे।
दुहूँ ओर घोर निसान सु बज्ज।
मनो पावस मेघ घोर सु गज्ज।
दुहूँ ओर खड प्रचंड सुमारी।
छुटै नाल गोला बँदूक सुभारी।
भयो सोर घोर धुँवा घोर घोर।
गई सुद्धि सुज्झै नहीं नैन ओर।

करैं सेल खेल महाबीर बके।
फुटे अग अग करें दोय हके।
बहैं तेग अग करैं टूक दोई।
हँसी कालिका देखि कौतुक सोई।
बहैं जम्म दड करैं बाहु जोर।
कहैं अत अत कहूँ सीस तोर।
कहूँ हृथ्य मथ्थ परे बीर बके।
उठे रुड मुड करैं जोर हके।
उतैं मीर जामील ध्यायो हँकार।
इतैं खान धायो भिरयौ इक बार।
उतैं मीर तीर चलायो हँकारी।
लग्यो बाजि कै सो भयो बारि पारी।
परयो खाँन को बाजि फुट्टो सु अग।
चढ़े श्रौर बाजी करयौ फेरि जग।
दई खाँन जम्मील कै अग बर्च्छा।
परयौ भुम्मि कीरं सुतो आय मुर्च्छा।
दोऊ सैन देखैं भिरे बीर दोई।
भए लथ्थ वथ्थ कुमार सु सोई।
परयो जोर भारी कुमार सु जान्यौ।
तबै राव हम्मीर उप्पर सुठान्यौ।
लियो बोलि सहोदर सूर साऊ,
करो ऊपर जाय कुम्मार दोऊ।
महाबीर अज्जान बालग्गु सूर,
महायुद्ध जानैं इतो वै करूर।
चले सूर सहोदर खेत आए,
उतै आरबासेन द्वै लक्ख धाए।

उड़ै बान गोला गज बाजि फुट्टै,
वहै बान कम्मान ज्यों मेघ ढट्टै।
धरैं आयुध बीर मौं वीर वुल्लैं,
परैं सीस भू मैं किती सीस भल्लैं।
कहै खाँन कुम्मार बैन हॅकारी,
सुनो सर्व सथ्य करो जुद्ध भारी।
रहै नाम लोक महा मुक्ति मिल्लै,
रहैं नाहिं कोई सदा आय मिल्लै।
चलाए गज कोपि कुम्मार सोई,
उत आरबी मीर जम्माल होई।
तबै बीर बालन्नसी कोप किन्नों,
महा तेग जम्माल कै मध्य दिन्नों।
कटयौ टोप ओप लगी जाय मर्थ्थ,
तबै मीर बालन्न भय लुथ्थ बथ्थं।
कटारं कुमार चलायो सु भारी,
परयौ मीर जम्मील भू मै सु थारी।
सबै सथ्य जम्माल की कोपि धायो,
तहाँ बालन्न मारि धरनी गिरायो।
तबै खाँन कुम्मार धायो रिसाई,
घनी सेन आरब्य धरनी मिलाई।
तबै बीर सलोदरं जंग कीनो,
किते आरबी खेत पारयौ नवीनो।
किते सेल खेल करै वार पार,
भभक्कैं घटैं घाव छुट्टैं पनार।
बहैं तेग वेग परे सीस भारी,
उड़ैं घोर रुंड परैं मुंड कारी।

परे दोय कुम्मार किन्नों अकथ्थ,
वरी अच्छरी सूर लोक सु मध्थ।
परे मीर आरब्ब के पोन लक्ख,
तहाँ हिन्द की मीर सौरा मुभक्ख।
परे दो कुमार महावीर वके,
परे एक सखोदर कौन हके,
तहाँ आठ हजार चहुवान जान,
परे तीन हजार कमधज्ज मान।
पँमार परे पाँच हजार सोई,
परे वीर सोला सहस्र सुजोई।
परे स्वामि के कज्ज कुम्मार दोई,
सुनी राव हम्मीर जीते सु सोई।
भजे आरवी ज्यों वचे जग तेय,
कहै साह देखो सु हिन्दू अजेय।

पद्माकर

पद्माकर हिन्दी-काव्य-जगत् के लब्ध प्रतिष्ठ एवं विख्यात कवि हैं। आपकी गणना रीति-कालीन अन्तिम भाग के प्रतिनिधि कवियों में की जाती है। इनका स्व-जीवन-वृत्तान्त-विषयक निम्नलिखित कवित्त उपलब्ध है :—

जीवन-चरित्र

> भट्ट तिलंगाने कौ बुन्देलखंड बासी नृप,
>
> सुजस प्रकासी पद्मुमाकर सुनामा हौं।
>
> जोरत कवित्त छन्द छप्पय अनेक भाँति,
>
> ससंस्कृत प्राकृत पढ़ो जु गुन ग्रामा हौं।
>
> हय रथ पालकी गयन्द गृह ग्राम चार,
>
> आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।
>
> मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगत सिंह,
>
> तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं।

यह कवित्त कवि की फुटकर रचनाओं में प्राप्त होने के कारण इसे विश्वस्त प्रमाणों के अंतर्गत नहीं ले सकते, किन्तु इसमें वर्णित घटनाओं का पुष्टीकरण अन्य बहिरंग प्रमाणों से होता है, अतः इसे प्रमाणित मान सकते हैं।

इस पद्य से विदित होता है कि ये भट्टवंशीय तैलंग ब्राह्मण तथा बुन्देल-खण्ड के रहने वाले थे। इन्हें संस्कृत तथा प्राकृत का अच्छा ज्ञान था तथा ये अपनी कविता के प्रभाव से अनेक राजाओं से पुरस्कृत

होकर सुखमय जीवन व्यतीत करते थे। जयपुर नरेश जगतसिंह इनके आश्रयदाता थे।

सं० १६१५ वि० में इनके एक पूर्वज मधुकर भट्ट गढ़मंडला की रानी दुर्गावती के दरबार में आए। गढ़मंडला से इनके पूर्वजों की दो शाखाएँ हुईं। मथुरा में रहने वाली शाखा माथुर तथा गोकुल में रहने वाली गोकुलस्थ के नाम से विख्यात हुईं। माथुर-शाखा, मथुरा से बाँदा चली गईं। पद्माकर इसी माथुर-शाखा में उत्पन्न हुए थे।

पद्माकर का जन्म सं० १८१० वि० में बाँदा में हुआ था। इनका नाम प्यारेलाल था। 'पद्माकर' यह उपनाम अथवा कविता का नाम था। बचपन से ही उन्होंने अपनी प्रखर-प्रतिभा का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया था। सोलह वर्ष की अवस्था में लिखा हुआ इनका निम्न-लिखित छन्द अत्यन्त प्रसिद्ध है:—

संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के वितर बिचारै ना।
गंज गज बक्स महीप रघुनाथ राव,
याहि गज धोखे काहू को देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना।

यह प्रसिद्ध है कि इस छन्द पर प्रसन्न होकर सागर-नरेश* रघुनाथ राव अप्पासाहब ने इन्हें एक लक्ष मुद्रा पुरस्कार-स्वरूप दी थी।

* प० रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें नागपूर-नरेश लिखा है। हि० सा० इ० पृ० ३४१

पद्माकर के वंश मे यह छन्द 'लालिया' नाम से अब तक प्रसिद्ध है। सागर से ये बान्दा चले आए तथा अपना मन्त्र-दीक्षा देने का प्राचीन कार्य आरम्भ कर दिया। इन्होंने जैतपुर नरेश तथा सुगरा निवासी नोने अर्जुनसिंह को दीक्षा दी। नोने अर्जुनसिंह ने इनका अत्यन्त आदर तथा सम्मान किया और अपना कुलगुरू भी बनाया। अर्जुनसिंह की प्रशंसा में इनके कतिपय छन्द प्राप्त हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि पद्माकर ने 'अर्जुन रायसा' नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की थी। किन्तु वह अबतक प्राप्त नहीं हुआ।

सं० १८४६ वि० में पद्माकर रजधान के गुसाई अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुर के यहा गए और ये वहा सं० १८५६ वि० तक रहे। इन्हीं हिम्मतबहादुर की प्रशंसा में पद्माकर लिखित "हिम्मत-बहादुर बिरदावली" नामक ग्रन्थ मिलता है जिसका एक अंश इस संग्रह में उद्धृत है।

जयपुर नरेश जगतसिंह से इनकी भेंट होने के विषय में एक किंवदन्ती प्रचलित है।

जिस समय पद्माकर जयपुर पहुँचे, महाराज जगतसिंह अत्यन्त विलास प्रिय होने के कारण इनसे मिलते ही नहीं थे। एक समय महाराज तथा उनके काव्य गुरु दोनों ही एक समस्या की पूर्ति म सलग्न थे किन्तु किसी प्रकार पूर्ति नहीं हो रही थी। पद्माकर को किसी प्रकार समस्या ज्ञात हो गई और इन्होंने उसकी पूर्तिकर महाराज के पास भेज दी। उसे पढ़कर सब लोग चमत्कृत हो उठे और पद्माकर को राजदरबार मे स्थान मिल गया। जगतसिंह के आश्रय में ही इनके प्रसिद्ध नायक-नायिका-भेद सम्बन्धी ग्रन्थ 'जगद्विनोद' का निर्माण हुआ। 'पद्माभरण' की भी रचना यहीं पर हुई।

ग्वालियर-नरेश दौलतराव सेन्धिया के नाम पर इन्होंने 'आलीजाह

[प्र]काश' नामक ग्रन्थ की रचना की, जो कि वास्तव में 'जगद्विनोद, का [रू]पान्तर मात्र है। ग्वालियर में ही सरदार ऊदाजी के कहने से इन्होंने [']हितोपदेश' का भाषानुवाद किया। कुष्ठरोग से आक्रान्त होने पर इन्होंने [वा]ल्मीकी-रामायण का आधार लेकर रामस्तुति सम्बन्धी पदों की रचना [अ]टकर छन्दों में की थी, जो कि 'प्रबोधपचासा' नामसे प्रसिद्ध है। रोग की [अ]धिकता होने पर इन्होंने 'गंगा-लहरी' की रचना की। यह प्रसिद्ध है [कि] कवि इस रचना से अनन्तर रोग मुक्त भी हो गया था। 'रामरसायन' [ग्र]न्थ भी इन्हीं का लिखा हुआ कहा जाता है। इस प्रकार पद्माकर [र]चित अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

इनके उदयपुर तथा चरखारीनरेश के दरबार में रहने के भी कतिपय [प्र]माण उपलब्ध हैं। उदयपुर के गनगौर के मेले पर इनके कुछ पद्य [मि]लते हैं तथा यह प्रसिद्ध है कि चरखारी-नरेश के अपमान करने [पर] ही पद्माकर सं० १८८३ वि० में कानपुर आकर गंगातट पर [वा]स करने लगे थे। इन्हीं दिनों 'गंगालहरी' की रचना हुई। सं० [१]८९० वि० में इनका स्वर्गवास हुआ।

'पद्माकर पचामृत' की भूमिका पृ० २२ पर लेखक ने लिखा —"पद्माकर की सारी कविता इनके जीवन के अनुकूल ही चलती [रह]ी है। नवयौवन में इन्होंने वीररस को अपनाया, युवावस्था में [शृं]गाररस में डूबे और ढलती अवस्था में भक्ति की कविता की, किन्तु [यह] कथन युक्ति-युक्त नहीं। वास्तव में तान्त्रिक होने के कारण इनकी [कवि]ता में शृंगार की ही प्रधानता है। एक बात और है; द्रव्य-[लि]प्सता के कारण आश्रयदाता को सन्तुष्ट करने के लिये, ये सब प्रकार [की] कविता करते थे। शान्तरस की रचना कुष्ठरोग से आक्रान्त होने [पर] तन्निवृत्यर्थ परंपरागत विश्वास के कारण इन्होंने की। हिम्मत-[बह]ादुर विरदावली की रचना लगभग पैंतालिस वर्ष की अवस्था में [की]। इसके पूर्व वीर-रस की इनकी कोई रचना नहीं पाई जाती।

हम प्रारम्भ में ही कह आये हैं कि पद्माकर रीति कालीन कवियों के अन्तिम प्रतिनिधि कवि थे। इनकी रचना में शृंगार की अधिकता है किन्तु उस शृंगार मे अश्लीलता नहीं है।

कवि की विशेषता भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। इनकी रचना में शब्दालंकार की छटा दर्शनीय है।

वर्णमैत्री तथा अनुप्रास का चमत्कार जिस परिमाण में इनकी रचना में पाया जाता है वैसा अन्यत्र नहीं। कहीं तो अनुप्रास के कारण भाव स्पष्ट नहीं हो पाये है और कहीं उनका विकास ही नहीं हुआ है। रीति-कालीन अन्य कवियों के समान नाम वली गिनाकर रसोत्पादन करने की चेष्टा इन्होंने कई स्थानों पर की है किन्तु सर्वत्र असफल ही प्रतीत होते हैं।

प्रकृति से इन्हें कोई स्नेह नहीं। इन्होंने परपरापालन के लिये ऋतु-वर्णन तो अवश्य किया है किन्तु उसमें सेनापति के प्रकृति वर्णन के समान व्यावहारिकता तथा माधुर्य नहीं है। पद्माकर ने उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारों को प्रधान साधन बनाकर प्रकृति दिग्दर्शन करने की विफल चेष्टा की है। फिर भी इनकी रचना से मनो- विनोद होने के कारण, उसे नीरस नहीं कह सकते।

रघुनाथ राव के तलवार की प्रशसा करते हुए कवि ने एक स्थान पर कहा है:—

दाहन ते दूनी तेज तिगुनी त्रिशूलिनि तैं,
चिल्लिन तैं चौगुनी चलांक चक्रचाली त।
कहै पदमाकर महीप रघुनाथ राव,
ऐसी समसेर शेर शत्रुन पै घाली तें।
पाचगुनी पब्ब तें, पचीसगुनी पावक तैं,
प्रगट पचासगुनी प्रलय पनाली तैं।

साठगुनी सेस तें सहस्रगुणो आग तें,
लाख गुनी लूक तें करोड़गुनी काली तें ।

पद्माकर के समय मरहठों का प्रभाव समस्त उत्तरी भारत में पर्याप्त फैल गया था । स्वयं रघुनाथ राव ने कई युद्धों में विजय पाई थी । अतः उनकी तलवार की प्रशंसा करना उचित ही था ।

ग्वालियर-नरेश दौलत राव सेंधिया की प्रशंसा में भी इनका इसी प्रकार का एक पद्य उपलब्ध है.—

छीनि गढ़ बम्बई सुमन्द कर मन्दरास,
बन्दर कौ बन्दकर बन्दर बसावैगो।
कहै पद्माकर कटा कै कासमीरहू कौ,
पिंजर मौं घेरि कैं कलिंजर छोड़ावैगो।
बाँका नृप दौलत अलीजा महाराज कबौं,
साजि दल दपटि फिरंगिनि कौं बावैगो;
दिल्ली दपट्ट पटनाहू कौं झपट्ट कर,
कबहूँ कै लत्ता कलकत्ता के उड़ावैगो।

इस कवित्त पर प्रसन्न होकर सेंधिया ने इनको बहुत सा धन देकर पुरस्कृत किया था।

सेंधिया के सरदार उदाजी की प्रशंसा इन्होंने निम्नलिखित दोहों में की है:—

श्री ●डोजी रावकौ, सुतरानोजी राव।
ता सुत उदाजी उदित, जाको परम प्रभाव।१।
उदाजी ताया प्रबल, शुभमति गुण गंभीर।
नृपमणि दौलत राव को, मुख्य मुसाहिब वीर।२।

ऊदाजी के नेह सौं, पद्माकर सुख पाय ।
राजनीति की बचनिका, यों भ पत चित लाय ।३।

एक समय जयपुर-नरेश प्रतापसिंह ग्वालियर आए। वहाँ पद्माक की कविता पर मुग्ध होकर वे उन्हें अपने साथ राजकवि बना जयपुर ले गए। महाराज प्रतापसिंह स्वयं एक अच्छे कवि त रसिक थे। अतः पद्माकर की प्रतिभा तथा विद्वता का वहाँ अभि सम्मान होना स्वाभाविक ही था। महाराज की प्रशंसा करते हु पद्माकर कहते हैं:—

ज्वाला तें जहर तें फनिन्द फूतकारन तें,
बाडव की बाडहू तें विषम घनेरो है।
कहै पदमाकर प्रतापसिंह महाराज,
ऐसो कछु गालिब गुनाहिन पै हेरो है।
चक्रहू तें चिल्लिन ते अंगे की बिजुलिलिन तें,
जय जूथ जिल्लिन तें जमत उजेरो है।
काल तें कराल त्यों कहर कालहू तें अब,
गाज तें गजब्ब अजब्ब कोप तेरो है।

इस कवित्त में वीररस का चित्रण अच्छा हुआ है। किन्तु इन शब्दों की तोड़मरोड़ करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति इसमें भी स लक्षित हो रही है। निरर्थक शब्द तथा अनावश्यक अनुप्रास पा के मन पर कुछ आघात सा पहुँचाते हैं। वीर-रस की दृष्टि से इन रचना श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती। किन्तु शृंगार-रस की रच अवश्य ही प्रशंसनीय है और उसी के कारण हिन्दी-कवियों में इन स्थान इतना ऊँचा माना जाता है। शृंगार वर्णन में उक्त दोष अपेक्षाकृत कम हैं।

भावों का सजीव चित्रण इनकी कविता का एक प्रधान गुण है। कारण है कि हिन्दी-प्रान्तों में सभी सर्वसाधारण मनुष्य इनकी कविता का मनन तथा आस्वादन करते हैं।

हिम्मतबहादुर विरदावली

कवि की वीररस-पूर्ण यह एकमात्र रचना है। इसमें हिम्मतबहादुर की अनेक युद्धों का वर्णन है। इसी में मुंगरा-निवासी नोने अर्जुनसिंह के साथ बनगाव (बुन्देलखण्ड) में हुए युद्ध का भी वर्णन है। युद्ध का समय कवि ने इस प्रकार बताया है:—

रचना-काल

> संवत अठारह से सुनौ, उनचास अधिक हिये गुनौ।
> वैसाख बदि तिथि द्वादसी, बुधवार जुत यह यादसी।

इससे ज्ञात होता है कि इस युद्ध का आरम्भ वैशाख वदी द्वादशी बुधवार सं० १८४९ वि० में हुआ था। पद्माकर सं० १८४९ वि० से १८५६ वि० तक हिम्मतबहादुर के साथ थे। अतः यह अनुमान है कि इस ग्रंथ की रचना भी इसी बीच हुई होगी।

उक्त दोहे में "यादसी" शब्द भरती का प्रतीत होता है। इससे अनुमान है कि यह समय सम्भवतः स्मृति के आधार पर दिया गया है।

स्व० लाला भगवानदीन जी ने लिखा* है कि "बांदे में रहने के समय पद्माकर ने हिम्मतबहादुर विरदावली की रचना की थी।" पद्माकर सं० १८४९ वि० से सं० १८५६ वि० तक हिम्मतबहादुर के आश्रित रहे। अपने आश्रयदाता की प्रशंसा पर इस ग्रन्थ की रचना इसी बीच सम्भवतः रजधान में हुई होगी।

*भूमिका हि. ब. वि. पृ. ४.

'हिन्दी के कवि और काव्य' के लेखक महोदय 'हिम्मत बहादुर विरदावली' के सम्बन्ध में लिखते हैं:—

'इसमें ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा शुजाउद्दौला के बीच हुए बक्सर के युद्ध का वर्णन होने से इसका ऐतिहासिक महत्व भी है।' किन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ को ध्यान पूर्वक पढनेपर भी बक्सर के युद्ध का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। सम्भवत: लेखक द्वारा यह भूल इसलिये हुई कि नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी से प्रकाशित हिम्मतबहादुर-विरदावली की भूमिका में स्वर्गीय लाला भगवादीन जी ने 'बक्सर के युद्ध का' उल्लेख किया है जिसमें हिम्मतबहादुर ने भाग लेकर नवाब शुजाउद्दौला की प्राणरक्षा की थी।

इस संग्रह मे हिम्मतबहादुर विरदावली का ही एक अंश होने के कारण अर्जुनसिंह और हिम्मतबहादुर के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ लिखना अनावश्यक न होगा।

अर्जुनसिंह:—इनका असली नाम अर्जुनसिंह था और नोने यह इनकी उपाधि थी जो कि बाँदा-नरेश से इन्हें प्राप्त हुई थी। ये पँवार क्षत्रिय थे। इनके पिता जैतपुर राज्य के एक छोटे से जागीरदार थे। इनके कुछ वंशज चरखारी के बसिया नामक गांव में मिलते हैं। ये सर्व प्रथम चरखारी मे नौकर हुए। किन्तु चरखारी-नरेश खुमानसिंह से कुछ झगड़ा होने के कारण बांदा-नरेश गुमानसिंह के दरबार में पहुँचे। जब हिम्मतबहादुर ने करामत खां के साथ बुन्देलखंड पर चढाई की और 'तेंदवारी' के मैदान मे गुमानसिंह ने उनका सामना किया तो, अर्जुनसिंह ने बड़ी वीरता दिखलायी और शत्रु को हराकर यमुनापार भगा दिया। यहीं पद्माकर से इनका परिचय हुआ। उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर इन्होंने पद्माकर को अपना दीक्षा गुरु बनाया। इनके विजय की तीसरी लड़ाई, जिसे बुन्देलखंड का महाभारत कहना चाहिये, 'गदौरा'

में हुई जिसमें इन्हें पन्नाराज्य का बहुत सा हिस्सा मिला। इसके अनन्तर 'बनगांव' वाली लड़ाई हुई जिसमें अर्जुनसिंह मारे गये।

हिम्मतबहादुर:—ये कुलपहाड़ में रहने वाले ब्राह्मण के लड़के थे। जब ये बहुत छोटे से थे तभी इनके पिता का देहान्त हो गया था। इनके एक बड़े भाई भी थे। इनकी माता ने इनके पालन पोषण में असमर्थ होने के कारण इन्हें राजेन्द्र गिरि नामक एक गोसाई के हाथ सौंप दिया और उसने दोनों लड़कों को अपना शिष्य बना लिया। बड़े लड़के का नाम उमराव गिरि और छोटे का नाम अनूप गिरि रक्खा। राजेन्द्र गिरि ने इन्हे युद्ध क्रिया मे निपुण कर दिया।

जब ये बीस वर्ष के हुए, इनके गुरू का देहान्त हो गया। अनूप गिरि अपने भाई और दो चार चेलों के साथ लखनऊ के नवाब शुजाउद्दौला की सेना मे नौकर हुए। शुजाउद्दौला ने इन्हें "हिम्मत बहादुर" की पदवी दी। इनके वशज अभी तक रजधानिया गौसाई कहलाते हैं।

शुजाउद्दौला ने इन्हे करामतखा के साथ बुन्देलखंड जीतने के लिये भेजा। ये इस लड़ाई में बहुत बुरी तरह हारे। बादा नरेश के सेनापति अर्जुनसिंह की वीरता से इनके छक्के छूट गए। इसके कुछ ही दिन के अनन्तर गढ़ौरा की लड़ाई में अर्जुनसिंह को शक्ति-हीन हुआ देखकर इन्होंने मरहठों के सूबेदार अलीबहादुर को बुलाकर चालीस हजार सेना की सहायता से बड़ी कायरता पूर्वक अर्जुनसिंह का वध करवाया। इसीलड़ाई को अर्जुनसिंह के दीक्षा गुरू पद्माकर ने अपनी आखों हिम्मत बहादुर के साथ रह कर देखा था। इसी लड़ाई का वर्णन इस पुस्तक में विस्तार से किया गया है।

इस घटना के बाद हिम्मतबहादुर अधिक दिन तक जीवित न रह सके। अलीबहादुर ने अपने कथना-नुसार इनको विजित देश का कुछ अश दे दिया। पर यह बात अली बहादुर के लड़के समशेरबहादुर को

बुरी लगी और उसने जागीर लौटा लेनी चाही। हिम्मतबहादुर ने अपनी सहायता के लिये ईस्ट इंडिया कंपनी से प्रार्थना की और विजित देश का कुछ भाग देने का वचन दिया। अंग्रेजों ने इनकी सहायता तो की किन्तु बाद में हिम्मतबहादुर को भी देश-रक्षा के लिये अयोग्य बताकर राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया।

हिम्मतबहादुर की मृत्यु कालिंजर-दुर्ग के अवरोध के समय हुई। ऐसा कहा जाता है कि जीवन के अन्तिम दिनों में इनका चरित्र गिर गया था। दोनों भाइयों ने वेश्याएँ रख ली थीं और इनसे इन्हें लड़के भी हो गये थे।

विवरण

विरदावली में कुल २१२ पद्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पाँच सर्गों में विभाजित है। किन्तु इसके किसी भी संस्करण अथवा उद्धरण में यह सर्गविभाजन नहीं किया गया है। यदि ऐसा किया गया होता तो निस्सन्देह ग्रन्थ की सौन्दर्य वृद्धि होती। प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक हरिगीतिका छन्द है, जिसकी अन्तिम दो पंक्तियाँ सब में समान रूप से इस प्रकार हैः—

> पृथुरिति नित्त सुचित्त दै जग जिति कत्ति अनूप को।
> चर बरनिये बिरदावली हिम्मतबहादुर भूप की।

प्रथम सर्ग, मंगलाचरण के एक छप्पय तथा एक हरिगीतिका में ही समाप्त कर दिया गया है। इसमें भगवान् कृष्ण से अनूपगिरि को विजय देने की प्रार्थना की गई है। द्वितीय सर्ग के ४४ छन्दों में हिम्मतबहादुर की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की गई है :—

> सुख साहिबी अमरेस है, भुव-भारधर भुजँगेस है।
> मनु मौज दैन महेस है, गुरज्ञान ज्ञान गनेस है।

साथ ही में बुन्देलखण्ड की चढ़ाई का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार हिम्मतबहादुर ने दतिया तथा पन्ना राज्य के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था।

तीसरे सर्ग में केवल १६ छन्द हैं। इसमें सेना की सजावट तथा चरित्र नायक के आतंक का दिग्दर्शन कराया गया है। चतुर्थ सर्ग सब से बड़ा है। इसमें ११९ छन्द हैं। इसी में हिम्मतबहादुर की अर्जुनसिंह पर चढ़ाई तथा युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में हिम्मतबहादुर ने मानधाता तथा जुलफिकार नामक दो सरदारों के मारे जाने का उल्लेख है और हिम्मतबहादुर के कई भतीजों का भी अर्जुन सिंह से युद्ध करने का वर्णन है। उनका चित्रण महान वीरों के रूप में किया गया है। इसी में अन्य कई सरदारों से युद्ध का वर्णन किया गया है। पचम सर्ग में हिम्मतबहादुर तथा अर्जुनसिंह के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। इसी में हिम्मतबहादुर के हाथ अर्जुन सिंह के मारे जाने की कथा है। अन्त में हिम्मतबहादुर को आशीर्वाद देकर कथा समाप्त हुई है।

ऐतिहासिकता

अर्जुनसिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में पद्माकर का यह कथन कि वे हिम्मतबहादुर के हाथ मारे गए, इतिहास के अवलोकन से अशुद्ध जान पड़ता है। वास्तव में इनकी मृत्यु इन्हीं के वंशजों द्वारा हुई थी जो नवाब के यहां नौकर हो गए थे।

आलोचना

यह प्रसिद्ध है कि पद्माकर शृंगारी कवि थे। वीर-रस की रचना केवल लोभ के वशीभूत होकर उन्होंने की थी। अतः उसमें उनकी असफलता अनिवार्य था। किन्तु इस असफलता का कारण एक मात्र लोभही नहीं था। बात यह है कि मुक्तक काव्य की अपेक्षा प्रबन्ध काव्य की रचना में अधिक योग्यता अपेक्षित होती है। मुक्तक रचना में

सामग्री एकत्रित कर देना ही पर्याप्त होता है, किन्तु प्रबन्ध में रस-सामग्री के साथ प्रवाह का ध्यान अधिक रखना पड़ता है। यदि प्रबन्ध काव्य पाठक को कथा-प्रवाह में मग्न नहीं कर देता तो उसकी असफलता निश्चित् है। यद्यपि 'विरदावली' एक प्रबन्ध-काव्य है किन्तु उसमें प्रवाह के निर्वाह पर ध्यान नहीं दिया गया है। सूची गिनाने की प्रथा प्रबन्ध-काव्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है। इससे प्रवाह में बाधा पड़ती है। अर्जुनसिंह के सहायकों का वर्णन करना हुआ तो कविने क्षत्रियों के छत्तीस कुलोंकी सूची गिना दी।

प्रबन्ध में रस सचार के लिये उल्लिखित गुणों के अतिरिक्त रसानुकूल आलम्बन सर्वथा आवश्यक है। यदि किसी कापुरुष को वीररस का आलम्बन बनाया जाय, तथा उसके द्वारा रणक्षेत्र का सचालन कराकर तलवारों की झनझनाहट, तोपों की गड़गड़ाहट तथा खून की नदिया बहा दी जाय, तो भी वहा वीर रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अपितु वह एक उपहासास्पद घटना होगी। इसीलिये संस्कृत साहित्य के रीति-ग्रन्थों में प्रबन्ध-रचना के लिये प्रख्यात कथावस्तु तथा धीर, वीर और उदात्त नायक का विधान किया गया है। केशव की रामचन्द्रिका में भाषा तथा भावों की उत्कृष्टता न होने पर भी कहीं कहीं सहृदयों की वृत्ति रम जाती है। इसका एक मात्र कारण, उसके नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र हैं। यदि भूषण अपना रचना का आलम्बन शिवाजी ऐसे वीर को न बनाते तो उनकी रचना का सम्मान इतना कदापि न हुआ होता। लोक-मंगल करने वाले वीरों का यशोगान कवि की अखण्ड-कीर्ति का साधन होता है। किन्तु पद्माकर ने वीर-रस के लिये एक ऐसा नायक चुना जिसमें वीरत्व की भावना नाम की ही थी। उन्होंने हिम्मतबहादुर को नायक केवल अधिक धन-प्राप्ति की आशा से ही बनाया। उसमें किसी प्रकार का चारित्रिक आदर्श न था। वह पराया माल उड़ाने वाले एक गुसाईं का चेला

तथा स्वार्थी पुरुष था। यदि कवि उसके स्थान पर अर्जुनसिंह को नायक बनाता तो उसे निश्चय सफलता मिलती। क्योंकि अर्जुनसिंह सदाचारी तथा राष्ट्रीय वृत्तिका एक क्षत्रिय था।

पद्माकर का काव्यजीवन शृंगार-प्रधान होने से उनकी रचनाओं में—"केलिन में कूल मे कछारन में कुंजन में क्यारिन में कलित कलीन किलकन्तु है" इस सूत्र की प्रधानता मिलती है। बिरदावल में पद्माकर ने अर्जुनसिंह के सहायक क्षत्रियों के छत्तीस कुलों का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है। तलवार तथा बन्दूक के जितने नाम कवि को अवगत थे, सब गिना दिये हैं। इससे साहित्यिक सौन्दर्य तो नष्ट हो ही गया है वर्णन मे भी रोचकता कम हो गयी है। हृदय से निसृत तथा अनुभूति से व्यक्त हुई कविता ही सच्ची, आकर्षक तथा हृदयग्राहिणी हो सकती है। रीतिकाल के कवि आश्रयदाता के रुच्यनुकूल कविता करना अपना कर्तव्य समझते थे अतः उनमें अनु-भूति का अभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

बिरदावली की शैली अधिकतर वर्णनात्मक है। अत: इसमें साहित्य-सौन्दर्य का अभाव होना कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। इसमें अलंकार-सौन्दर्य भी अन्यग्रन्थों के अपेक्षा अल्प परिमाण में ही है :—

> दिसि दिसिन दादुर से उमँगि सुनकीव दुंदि मचावहीं।
> कलबीर कोकिल से तहाँ टाड़ी महाधुनि छावहीं।
> रन रंग तुंग तुरंग गण सवार उद्धत मयूर से।
> तहँ जगमगानी जामगी जुगनून हू के पूर से।

इसमें उपमालंकार है। किन्तु प्रकृत वीर-रसोत्कर्ष में यह सहायक नहीं है। मोर की गणना शीघ्रगति वाले पक्षियों में नहीं है।

उनके साथ समानता प्रगट करने में धार्मिक का ही महत्व कुछ कम हो जाता है।

भावों का संगठन समुचित रीति से कहीं प्रगट नहीं होता है। ग्रन्थ इतिवृत्तात्मक होने से सर्वत्र गम्भीरता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। अर्जुनसिंह का अपने अनुयायियों को विस्तृत उपदेश अत्यन्त नीरस प्रतीत होता है :—

पहिरे गरे गुटिका कवच रचि भागवत गीतान के।
× × ×
वह जन्त्र मन्त्र अनेक दुर्गा भागवत गीतान के।
गुटिका गरे बिच सोभही जे करत जय घमसान के।

इन छन्दों से प्रगट होता है कि ये वीरत्व के लिए उत्साह तथा शक्ति की अपेक्षा यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र गुटिका आदि की आवश्यकता का ही समर्थन करते थे। इनकी सहायता से विजय का पूर्ण विश्वास उन्हें हो जाता था। इन्होंने क्षत्रिय राजाओं को युद्ध तथा द्यूत के लिये सर्वदा सन्नद्ध रहने का आदेश दिया है —

जग जुआ जुद्धहु को कबहुँ सपनेहुँ नहिं नाहीं परै।

इनके इस उपदेश से इनके लोक कल्याण के ज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है।

इस ग्रन्थ में कुछ छन्द ऐसे मिलते हैं जो संस्कृत से अनुवादित प्रतीत होते हैं:—

आयू रक्षति मर्माणि आयुरन्नं प्रयच्छति।
अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्॥

"विरदावली" में इसका इस प्रकार वर्णन है:—

निज आयु रवा करन तनमों आयु समै बचाव हो।
निज आयु सिंह मपेट तें मुवचाइ घर को दयावहीं।
निज आयु अस्त्र अमोघ देत यहै विचारत गाजियै।
परिए न कबहूँ दान अरिहिं न कबहूँ रनते भाजियै।

नायक की वीरता का दिग्दर्शन प्रतिनायक के वीरता-वर्णन से अधिक सुन्दर होता है। इसे पद्माकर जानते थे। उन्होंने हिम्मत बहादुर के विस्तृत वर्णन के साथ ही साथ अर्जुनसिंह का भी वीरोचित वर्णन किया है।

हिम्मतबहादुर की वास्तविक दुर्बलता का चित्रण इन्होंने नहीं किया। जिस युद्ध में हिम्मतबहादुर अर्जुनसिंह से हार गए थे, उसका वर्णन इन्होंने किया ही नहीं है। अलीबहादुर का उल्लेख नहीं के बराबर है। यह वही सरदार है जिसकी सहायता से हिम्मतबहादुर को अर्जुनसिंह पर आक्रमण करने की हिम्मत हुई। वीर-काव्य की दृष्टि से यह उचित भी है। किन्तु इससे काव्य की ऐतिहासिकता नष्ट हो जाती है।

पद्माकर अपने अन्य ग्रन्थों के कारण परिष्कृत व्रज-भाषा के लिये प्रसिद्ध होने पर भी हिम्मत उसके दर्शन नहीं होते। सर्वत्र बनावटीपन ही लक्षित होता है:—

भाषा

पृथुरीति नित्त सुवित्त है जग जित्ति कित्ति अनूप की।

यह इनके प्रधान छन्दों में से एक है। इसका उपयोग सर्ग-विभाजन के लिये किया गया है। इसमें अनुप्रास तथा ओज लाने के

लिये "रिति" "निति" 'जिति", "किति" आदि शब्दों को कितना तोड़ामरोड़ा गया है। पद्माकर के विचार से वीर रस में ओज का प्रदर्शन करने के लिये संयुक्ताक्षरों की महान आवश्यकता है चाहे वहाँ वीर-रसोपयुक्त भावों का अभाव ही हो। उदाहरण के कुछ पद्य उपस्थित किये जाते हैं:—

> करि धक्काधक्की, हक्काहक्की, टक्काटक्की मुदित मची।
> तहँ ढुक्काढुक्की, मुक्कामुक्की, झुक्काझुक्की होन लगी।
> इन इक्काइक्की, भिक्काभिक्की, फिक्काफिक्की जोर जगी।
> ढालन के ढक्के लागत पक्के इत उत धक्के धरकत हैं।
> इक झुक्कन ढक्के बँधे भमक्के तनन तमक्के तरक्त हैं।

वास्तव में संयुक्ताक्षरों के शब्द जाल द्वारा ओज का प्रदर्शन तथा वीर-रसका उत्कर्ष नहीं हो सकता। उसके लिये व्यंगपूर्ण उक्तियाँ तथा उत्साहपूर्ण संवादों की नितान्त आवश्यकता है। 'विरदावली' में इसका सर्वथा अभाव है। जब भाव रसोत्पत्ति में सहायक नहीं हो सकते तभी इन बाह्याडम्बरों का आश्रय लेना चाहिए।

कहीं कहीं वीप्सा भाव व्यंजन की सहायक होती है, किन्तु उसका अतिरेक हानिकारक ही है:—

> तहँ हरपि हरहर हरपि हरहर हरपि हरहर करि मिलयी।
> वहँ कहनि हरहर घी सुधुनि सुनि जिगर सत्रुन को हिलयी।
> घम घमाघम झम झमाझम घम घमाघम व्है ठई।
> चम चम चमाचम तम तमातम धम धमाधम छिति छई।

इस प्रकार एक ही शब्द की अनेक बार आवृत्ति रसोद्रेक में सहायक तो होती ही नहीं कानों को अप्रिय भी प्रतीत होती है।

इनकी भाषा में संयुक्ताक्षरों को देखकर उसके प्राकृत-मिश्रित होने का कुछ लोगों को भ्रम हो गया था। किन्तु ब्रज भाषा के शब्दों को ही ओजस्वी बनाने के लिये उन्हें द्वित्त तथा संयुक्ताक्षरों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इनकी भाषा बुंदेली-मिश्रित होने पर भी ब्रज-भाषा ही माननी पड़ेगी। बुंदेली ब्रज की ही एक शाखा है, अतः दोनों का एक में ही समन्वय हो सकता है।

हिम्मतबहादुर-विरदावली

छप्पय

आन फिरत चहुँ चक्क धाक धक्कनि गढ़ धुक्कहिं।
लुक्कहि दुवन दिगंत जाय जहँ तहँ तन मुक्कहिं।
दुंदुभि धुनि सुनि धीर जलद मन-मद तजि लज्जहिं।
भज्जहिं खल-दल विकल सोक-सागर महँ मज्जहिं।
धनि राजइन्द्र गिरि नृप भुवन उथपन थप्पन जग जयउ।
वर नृप अनूपगिरि भूप जब सुभट सेन सज्जत भयउ।

हरि गीतिका

नृप धीर बीर बली चढ्यो, सजि सेन समर सुखेल को।
सुनि धव बीरन के बढ़ी, हिय हौस बर बगमेल की।
पृथु-रित्ति नित्त सुचित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
नर बरनिये बिरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

डिल्ला

समर प्रबल दल दिग्ध उमडिय,
दुंदुभि धुनि दिगमंडल मंडिय।
घर्घरात घन ते अति धुक्कनि,
भर्भरात अरि भजत लुलुक्कनि।
उनमद दुरद घटनि छबि छज्जिय,
जौन जलद पटलनि तकि तज्जिय।

उच्च निसान गगन महँ डुल्लहिं,
सुर बिमान झकझोरनि झुल्लहिं।
झलमलाति झूलनि छबि छानिय,
बिज्जुल मनहु मेघ लपटानिय।
अवत फेर ऐंड़ात उमंडत,
झूमत झुक्कत गजत धुनि मंडत।
उलद्दत मदनि समुद-मद गारत,
गिरिवर गरद मरद करि डारत।
सिन्दूरनि सिर सुभग उमंडिय,
उदयाचल-रवि छबि छिति खंडिय।
घनघनात गजघंट उमगनि,
सनसनात सुर-श्रुति सुभ अगनि।
घुमड़ि चलत घुम्मत घन घोरत,
सुंडनि नखत झुंट झकझोरत।
चलत मतगनि तक्कि तमंकिय,
पक्खरैत हय हुड़क्क हुमकिय।
सिर भारत न सहत मृग सोभनि,
कहुँ कहुँ चलत छुवत छिति छोभनि।
उड़त अमित गति करि करि ताछन,
जीतत जनु कुलटान कटाछन।
थिरकत थिरकि चलत अँग अगनि,
जीतत छुमकि पौन मग संगनि।
पच्छ-रहित जीतत उड़ि पच्छिय,
अंतरिच्छ गति जिन अवलच्छिय।
दिननि अमोल लोल गति चल्लहि,
विदित अमोल गोल दल मल्लहिं।

बाग लेत अति लेत फलगनि.
जिमि हनुमत किय समुद-उलघनि ।
जिन पर चढत सिन्धु-ढिग लग्गहिं,
मडल फिरि फिरि उठत उमग्गहिं ।
पवन प्रचड चड अति धावहिं,
तदपि न तिनहिं नैक छै पावहिं ।
तिन चढि भट छवि छटनि छलकिय,
रन उमग अँग अग झलक्किय ।
उमडि अग्रवर पैदर दिन्हउ,
जिन हठि प्रथम जुद्ध व्रत लिन्हउ ।
बन्दीजन विरदावलि बुल्लहिं,
सुनत सुभट दगकमल प्रफुल्लहि ।
मानव सुरनि अलापत रड्ढिय,
वीर उरनि रस बीर सु बड्ढिय ।
सार झलकि झलमल छवि उग्गिय,
मानहुँ अमित भानु भुव उग्गिय ।
उमडत दल छिति डग डग डुल्लत,
कल्लोलनि बाढ समुद उछुल्लत ।
गढ धुकहिं गढपति-उर कपहिं,
शत्रु सोक-सागर महँ झपहिं ।
धूरि धुध महित रवि मडल,
अकथकात अलकेस अखडल ।
थमि न सक्क भूमिधर दिक्करि,
टुट्टत रद्द फटत नभ चिक्करि ।

छप्पय

चिक्करि चिक्करि उठहिं दिक दिक्करि करनिन धुत।
खल दल भज्जत तजि तजि हय गय दारा सुत।
सकत लंक ग्रतक चक हंकनि हुहकारत।
डग डग डुल्लत गब्बि सब्ब चक्कवनि सिघारत।
तहँ 'पद्माकर' कवि बरन इमि नृप अनूपगिरि जब चढ़यउ।
तब अमित अरायो अखिलदल इक्क बार छुट्टत भयउ।

हरिगीतिका

छुट्टत भयउ इक बार जब, सब तोपखानौ सड़कि कै।
टुट्टत भयउ गढ़ वृन्द गढ़पति, भाजिगे सब सड़कि कै।
पृथु रित्ति नित्त सुचित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
बर बरनिये विरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

भुजंगप्रयात

तुपक्कैं तड़क्कैं धड़क्कै महा हैं,
झलै-चिल्लका-सी झड़क्कैं जहाँ हैं।
खड़क्कैं खरी वैरि छाती भड़क्कैं,
सड़क्कै गये सिन्धु गज्जै गड़क्कै।
चले गोल गोली अतोलौं सनक्कै,
मनौ मौंर भौंरैं उड़ातीं भनक्कैं।
चढ़ी आसमानैं छई वे प्रमानैं,
मनो मेघमाला गिलैं भासमानैं।
गिरैं ते मही मैं जहीं मर्मराकैं,
मनो स्याम ओरे परैं झर्मराकैं।

चलैं रामचंगी धरा मे धमकैं,
सुने तें अवाजैं बली वैरि सकैं।
तमचे तहाँ वीर-सचे छुड़ावैं,
कसे बक धानै निसानै उड़ावैं।
छुटी एक कालै विसालैं जँजालै,
जगी जामगी त्यों चलै ऊटनालैं।
गजैं गाज सी छूटतीं त्यो गनालैं,
सुनैं लजतीं गजती मेघमालैं।
चलीं गुग्गरी उच ह्वै आसमानैं,
मनो फेरि स्वर्गें चढ़े दिग्ग दानै।
परी एक बारै धमाधम धरा है,
मनो ये गिरी इन्द्र हू की गदा है।
किधौ ये विमानन्न की चक्र भुड़ैं,
परीं टूटि हैं कै विराजै भसुंडै।
छुटी है अचाका महाबानवाली,
उड़ी है मनो कोपि कै पन्नगाली।
खरी कुहकुहातीं जुड़ातीं नहीं हैं,
चलीं है अनंतैं दिगतैं दही हैं।
चली चद्दरें त्यो मचे हैं धड़ाके,
छुड़ाके फड़ाके सड़ाके खड़ाके।
छुटे सेर बच्चे भजे वीर कच्चे,
तजें बाल बच्चे फिरै खात दच्चे।
छुटे सब्ब छिप्पे करै दिग्घ टिप्पे,
सबै सत्रु छिप्पे कहूँ हैं न दिप्पे।
करावीन छुट्टैं करैं बीर जुट्टैं,
करी कंध टुट्टैं इते उच्च बुट्टैं।

चली तोप घाँ घाँ धँधाँ धाँई जग्गी,
घड़ाघड़ घड़ाघड़ घड़ा होन लग्गी।
झड़ाझड़ झड़ा बीर बाँके छुड़ावैं,
भड़ाभड़ भड़ाभड़ भड़ा त्यौं मचावैं।
दगे यों अराबो सबै एक बारे,
किधौं इन्द्र कोप्यौ महावज्र डारे।
किधौं सिन्धु सातौं सबै भर्भराने,
प्रलैकाल के मेघ कै घर्घराने।
सुनी जो अवाजैं मवै वैरि भाजैं,
न लाजैं गहे छोड़ि दीन्हो समाजैं।
तजैं पुत्र दारैं सम्हारे न देहैं,
गिरैं दौरि उट्ठैं भजैं फेरि जैहैं।
उलत्थैं पलत्थैं कलत्थैं कराहैं,
नपावैं कहूँ सोक-सिन्धून थाहैं।
तजैं सुन्दरी त्यों दरी में धसैं हैं,
तहा सिंह बग्घान ह्वै ने ग्रसे हैं।

छप्पय

छिति अति छजिय अत्र छत्र छादन छबि छकिय।
चहुँव चक्क धकपक्क अरिन्न अकबक्क धरक्किय।
इक्क दुवन तजि धरनि सरन हुव चरन सु तक्किय।
हय गय पयदल छोड़ि छोड़ि सुख-सागर नक्किय।
जगमग प्रताप जग्यव उमगि उथल-पथल जल-थल गयउ।
नृप मानि अनूपगिरि भूप जब निज-दल बल हंकत भयउ।

हरिगीतिका

हुक्त भयउ निज दल सकल, ह्वै करि भटन की विट्ठि पै।
हर हर्षि भाषत तहाँ रावत, डिट्ठि आरि की डिट्ठि पै।
पृथु रित्ति नित्त सुवित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
बर बरनिये बिरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

त्रिभंगी

तहँ दुहूँ दल उमड़े घन सम घुमड़े झुकि झुकि झुमड़े जोर भरे।
तकि तबल तमके हिम्मत हके बीर बमके रन उभरे।
बोलत रन करखा बाढ़त हरषा बाननि बरषा होन लगी।
उलछारत सेलैं अरिगन ठेलैं सीननि पेलैं रारि जगी।
बन्दीजन बुल्ले रोसन खुल्ले डग डग डुल्ले कादर हैं।
धोंसा धुनि गज्जे दुहुँ दिसि बज्जे सुनि धुनि लज्जे बादर हैं।
नीसान सु फहरैं इतउत छहरैं पावक लहरैं सी लगतीं।
छुवतीं नकि नाका मनहु सलाका धुजा पताका नभ जगतीं।
कढ़ि कोटन बारे बीर हँकारे न्यारे न्यारे अभिरि परे।
किरवाननि झारैं सुभट बिदारैं नेकु न हारैं रोष भरे।
कानन लौं तानैं गहि कम्मानैं अरिन निसानैं सिर घालैं।
सूबे अति पैठे मुच्छनि एँठे भुजनि उमैठे गहि ढालैं।
अत्रनि की मूकै घालि न चूकै दै दै कूकैं कूदि परे।
गहि गरदन पटकै नेकु न भटकैं झुकि झुकि झटकैं उमग भरे।
रन करत अड़गे सुभट उमगे बैरिन बंके करि झपटैं।
सांसन की टक्कर लेत उटक्कर घालत छक्कर लरि लपटैं।
तहँ हत्याहत्या मत्यामर्त्या लत्थापत्थी माचि रही।
काटैं कर कट क्कट बिकट सुभट भट कासौं खटपट जात कही।
गहि कठिन कटारी पेलत न्यारी रुधिर पनारी बमकि बहैं।

खञर खिन खनकैं ठेलत ठनकै गतन सनिघनि कै हिलगिर हैं।
गहि गहि पिसकज्जै मरमनि गज्जै तकि तकि नज्जै काटत हैं।
कम्मर तें छूटे, काटत पूरे, रिपुतन रूरे काटत हैं।
करि धक्काधक्की, हक्काहक्की, ढक्काढक्की, मुदित मची।
घन घोर घुमंडी, रारि उमंडी, किलकत चंडी, निरखि नची।
एकै गहि चालै, करि मुख लालै, सुभट उतालै, घालत हैं।
तोरत रिपु-तालै, भाले भाले, रुधिर पनाले चालत हैं।
भारत असि छुरै जे बीरनि उर जे पुरजे पुरजे काटि करैं।
हथियारनि छूटैं नेकु न हूटैं खलदल कूटैं लपटि लरैं।
तहँ ढुक्काढुक्की मुक्कामुक्की डुक्काडुक्की होन लगी।
रन झक्काझक्की झिक्काझिक्की, खिक्काखिक्की जोर जगी।
काटन चिलता हैं इमि असि वाहैं तिनहिं सराहैं बीर बड़े।
टूटैं कटि झिलमैं रिपु रन बिलमैं सोचत दिल मैं खड़े खड़े।
ढालन के ढक्के, लागत धक्के, इतउत थक्के, थरकत हैं।
झक झक्कनि टक्के बँधे झमक्के, तननि तमक्के तरकत हैं।
ललकत फिरि लपटे, छुरिन छपटे, करि अरि चपटे, पेरत हैं।
भट भुजनि उखारत छिति पर डारत हँसि हुङ्कारत हेरत हैं।
ठोंकत भुजदंडनि, उमड़ि उदंडनि, प्रबल प्रचंडनि चा~-भरे।
करि खलदल खंडन बैरि बिहंडन नौऊ खंडन सुजस करे।
दस्ताने करि करि धीरज धरि धरि जुद्ध उभरि भरि हंकत हैं।
पैठत दुरदन में रोपित रन में नेकु न मन में संकत हैं।
निकसी तह खग्गैं उमड़ि उमग्गैं जगमग जग्गैं दुहूँ दल में।
भाँतिन भाँतिन की बहु जातिन की अरि पाँतिन की करि कलमें।
तहँ कढ़ी मगरबी, अरि गन चरबी, चापट करवी-सी काटैं।
जगि जोर जुनब्बै फहरब फब्बै सुंडनि गब्बै फर फाटैं।

बिज्जुलसी चमकैं, घाइन घमकैं, तीखन तमकें, अन्दर की।
बटरी सु खग्गैं, जगमग जग्गैं, लपकत लग्गैं, नहि डर की।
साईं सुभ सुरती, चलत न मुरती, रन में फुरती बीरन की।
लोलम तरवारैं, झुकि झुकि झारैं, तकि तकि मारैं, धीरन कीं।
गजकुम्भ बिदारैं, सु लहरदारैं, लहरनि धारैं, बिधि बिधि की।
लखि लालू वारैं, रिपुगन हारैं, मोल विचारैं, नव निधि की।
तहँ खुरासानी, जग की जानी, चलैं कृपानी, चकचौधैं।
निव्वाज-हु-खानी, दलनिधि खानी, बिज्जु-समानी, रन कौंधें।
असिवर नादौटैं, चलत न लौटैं, मुँडनि मौटैं, काटि करैं।
बर मानासाहीं, भटनि दुबाही, झिलमनि बाहीं, नदीं भरैं।
सुभ समर सिरोही, जगमग जोही, निकसत सोही, नागिन-सी।
कर करी मुकत्ती, तीखन तत्ती, हनि रिपु-छत्ती, नहिं बिनसी।
गंजत गज दुरदा, सहित बगुरदा, गालिब गुरदा, देखि परे।
तुरकन के तेगा, तोरन तेगा, सकल सुबेगा, रुधिर-भरे।
जग जगी जिहाजी, मंजुल माजी, सूरन साजी, सोभि रहीं।
दिपती दरियाई, दोनौं धाई, भटनि चलाई, अति उमहीं।
तहँ सु अलेमानी, और न सानी, सहित निसानी, चसन लगीं।
सुजुनेद-हु-खानी, पूरित पानी, दिपति दिखानी जगाज्गी।
दोनौं दिसि निसरी, लखत न बिसरी, मंजुल मिसरी, तरवारैं।
तन तोरन रुपती, गालिब गुपती, झकझक कुप्ती, झांकझारैं।
हेरी सु हलब्बी, सुँडनि गब्बी, सीस हलब्बी-सी चमकैं।
तहँ करत झपट्टे, बीर सुभट्टे, चहुँ दिसि पट्टे, धमधम कैं।
चालत अति चौड़े, गहि गहि गाड़े, रिपु-सिर भाड़े, से सु ढरैं।
करि करि चित चौपें, रन पग रोपैं, धरि धरि धोपैं, धूम करैं।
जिन ने अति भारे बखतर फारे दलनि दुधारे बहु निकसे।
तहँ सु बरदमानी, खड्ग पिहानी, हर बरदानी, हेरि हँसे।

चरखी जिन चाखी, दबहि न दाखी, दिपति दुताघी, देखि परे ।
मुरि मुरत कहूँना, उत्तम ऊना, सत्र तें दूना, काट करे ।
छालत जे काँचे, रन म नाचे, मुदम तमाचे, ओप धरे ।
रंजित रनभूमी, मुसद्दग रूमी रिपु-सिर तूमी, सी कतरे ।
असिरर अँगरेजैं, घलिघलि तेजें, अरिगन भे, सुरपुर को ।
लखि फरु'कसाहा बीरनबाहीं, खल भजि जाहीं, दुर दुर का ।
रिपु-झलनि झकोरे, मुख नहिं मौरे, बखतर तोरे तकब्बरी ।
इक एकनि मारे धरि ललकारे गहि तरवारे अकब्बरी ।
इमि बहु तरवारें काढि अपारें सुचित विचारें नहिं आवें ।
तिनके बहु खनके झिलमन झनके, टनकत उनके, तन तावै ।
चक चकै चलावे, दुहु दिसि धावै, हयनि कुदावें, फूल भरे ।
गजदत उपाटै, हौदा काटै, बाँधि सपाटै, अति उमरे ।
हथिन सों हत्थी, मत्था मत्थी, रारि अरुत्थी, करन लगे ।
जञ्जीरनि घालै, सुँड उछालै, बाँधत पाँलै, पर उमगे ।
गहि गहि हय झटकै, दिसि दिसि पटकै, भूपर पटकै, नहिं लटकै ।
पायनि सों पीसै, अरिगन मीसै, जम से दीसै, नहिं भटकै ।
पति गजनि उठेलै, दतनि ठेलै, ह्वै भट भेलै, जोर करै ।
जुत्थन सों जूटै, नेकु न टूटै, फिरि फिरि छूटैं, फेरि लरै ।
करि करि इमि टक्कर, हटत न थक्कर, तन तकि तक्कर, तोरत हैं ।
मारे रन गुँडनि भाले झुन्डनि, तऊ न सुँडन, मोरत हैं ।
इमि कुँजर लपटै, दुहुँ दल दपटै, झुकि झुकि झपटत, झूमत है ।
अरि-पटल पटा से फारत खासे सुघन घटा से, घूमत हैं ।
तहँ अर्जुन बका, करि करि हका, दुरद निसका, हूलत है ।
बैठीं जु किलाएँ, मुच्छन ताएँ रन छवि छाएँ फूलत हैं ।
झारत हथियारन, मारत वारन, तन तरवारन, लगत हँसे ।
पेरत भालन कों, सर जालन कों, असि घालन कों, धमकि धँसे ।

तहँ मची हकाहक, भई जकाजक, छिनक थकाथक, होइ रही।
तब नृप अनूपगिरि, सुभट सिन्धु तिरि, अर्जुन सों भिरि, खड्ग गही।
हय दाबि कन्हैया, सुमिरि कन्हैया, सु गज कन्हैया, पर पहुंचौ।
झारत तरवारै, तकि तकि मारैं, प्रबल पमारै, गहि कहुँचौ।
पटक्यौ गज परतें, उमड़ि उभरतें, अरिसिर धरतें, काटि लियौ।
रिपु-रुंड धरा को, अरपत ताको, हरहि हरा को, मुंड दियौ।
लहि अर्जुन-मत्था, गिरिजा-नत्था, अमित अकत्था, नचत भयौ।
डमडमरु बजावै, बिरदनि गावै, भूत नचावै, छबिन छयौ।
किलकिलकत चंडी, लहि निज खंडी, उमड़ि उमंडी, हरषति हैं।
सँग लै बैतालनि, दै दै तालनि, मज्जा-जालनि, करषति हैं।
जुग्गिननि जमातीं, हिय हरषातीं, खदखद खातीं, मांसन कों।
रुधिरन सों भरिभरि, खप्पर धरिधरि, नचतीं करिकरि, हासन कों।
बजत जय टंका, गजत बंका, भजत लंका, लौं अरि गे।
मन मानि अतंका, करि सत संका, सिन्धु सपंका, तरितरि गे।
नृप करि इमि राननि, लरि तरवारनि, मारि पमारनि, फते लई।
लूटे बहु-हय, देत खलनि भय, जग में जय-जय, सुधुनि भई।

छप्पय

जय जय जय धुनि, धन्य-धन्य गज्जिय छिति छज्जिय।
फहरत सुजस-निशान, सान जय-दुंदुभि बज्जिय।
सोर्माहिं सुभट सपूत, खाइ तन, घाइ अतुल्ले।
बिमल बसन्तहि पाइ, मनहु, कल किंसुक फुल्ले।

तहँ पदमाकर कवि बरन इमि, रन उमङ्ग, सफजंग किय।
नृप-मनि अनूपगिरि, भूप जहँ मुख-समूह सु फतूह लिय।

चन्द्रशेखर

चन्द्रशेखर मोअज्जुमाबाद (फतहपुर) निवासी प० मनीराम वाजपेयी के पुत्र थे। इनके पिता भी कवि थे। मोअज्जुमाबाद तथा गोपालपुर के पास असनी नामक एक ग्राम है। इनके

जीवन

काव्य-गुरु महापात्र करनेस* यहीं रहते थे। कहा जाता है कि चन्द्रशेखर सं० १८७७ वि० में प्रथम देशाटन को निकले। उस समय इनकी अवस्था २२ वर्ष की थी तथा इनके पिता भी उस समय जीवित थे। सर्वप्रथम ये दरभंगा गए। वहां इनकी अच्छी प्रतिष्ठा हुई। यहां सात वर्ष रहने के अनन्तर २९ वर्ष की अवस्था में ये जोधपुर पहुँचे। तत्कालीन महाराज मानसिंह कवियों का अत्यन्त आदर करते थे। बांकीदास चारण की सहायता से दरबार उपस्थित होकर इन्होंने यह कवित्त पढ़ा :—

द्वादस कलासौं मारतंड ये उवैंगे चंड सेस वारि मोमनि समरन सचु जलि हैं।
छूटि जैहै अचल अवास अमेरस घोरा फूट जैहै कहलि कच्छो सी भूमि हलि है।
सेसर कहत अलका में बला पान ह्वै है पावक पिनाकी के त्रिसूल से। निकलि है।
तून सान भौंहैं मान थंभो भूप मान नामौं जानि लैहै प्रलय पयोधि फूटि चलि है।

---

*बादशाह अकबर ने नरहरि को महापात्र की उपाधि दी थी अतः उनके वंशज भी महापात्र कहलाते थे।

हाराज ने प्रसन्न होकर इन्हें १००) रु० मासिक पर राज कवियों में रख लिया। ये वहां छः वर्ष रहे। मानसिंह की मृत्यु होने पर तख्तसिंह राजा हुए। उन्होंने व्यय कम करने के लिये सब के वेतन आधे कर दिये। चन्द्रशेखर को आधा वेतन स्वीकार न था। वे वहां से पटियाला नरेश कर्मसिंह के दरबार में जा पहुँचे, जहां इनका अच्छा सम्मान हुआ। जोधपुर के सौ रुपये भी भूल गये। ये अन्ततक पटियाले में ही रहे। तख्तसिंह के अपनी भूल मानकर बुलाने पर भी ये जोधपुर नहीं गए। कभी कभी अवकाश लेकर वृन्दावन जाते थे। वहीं वृन्दावन-शतक की रचना की। कर्मसिंह की आज्ञा से इन्होंने छः हजार श्लोकों का एक नीति-ग्रन्थ रचा। कर्मसिंह के अनन्तर राजा नरेन्द्रसिंह ने भी इनके सम्मान में कमी न होने दी। एक समय महाराज हम्मीर-हठ की चित्रावली देख रहे थे। उन्हें हमीर पर एक काव्य बनवाने की इच्छा हुई। उन्हींकी आज्ञा से चन्द्रशेखर ने हम्मीर हठ की रचना की। इनका स्वर्गवास १९३२ वि० में हुआ था। इनके वंशज अब भी पटियाले में रहते हैं।

इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ माने जाते हैं:— (१) हम्मीर-हठ (२) राजनीति (३) नखशिख (४) रसिक-विनोद (५) वृन्दावन-शतक (६) गुरुपञ्चाशिका (७) ताजक (८) माधवी-वसन्त (९) हरि-भक्ति-विलास। इनमें से रसिक-विनोद, नखशिख, तथा हम्मीर हठ प्रकाशित हो चुके हैं।

हमीर-हठ में समाप्ति-काल इस प्रकार दिया गया है —

हम्मीर हठ "कर नभ रस ग्रह आतमा संवत फागुन मास।
कृष्ण पक्ष तिथि चौथ रवि जेहि दिन ग्रंथ प्रकास।

इससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थ की समाप्ति सं० १९०२ वि० फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी रविवार को हुई।

हम्मीर-हठ में प्रार्थना के अनन्तर पटियाला-नरेश की आज्ञा से ग्रन्थ रचना का उल्लेख है। अलाउद्दीन बेगमों के साथ शिकार खेलने जाता है। वहा एक मरहठी बेगम का महिमाशाह मगोल से प्रेम होने तथा उसके द्वारा एक शेर के वध होने का वर्णन है। एक बार बादशाह चूहे को देखकर डरता है। बेगम से शेर मारने का समाचार सुनकर महिमा पर क्रोधित होता है। बेगम महिमा को बादशाह के कोप की सूचना देती है और वह भागकर हमीर की शरण चला जाता है। शाह हमीर से महिमा को मागता है किन्तु हमीर शरण आये हुए को निराश्रित छोड़ना नहीं चाहता।

सारांश

*अलाउद्दीन ने हमीर पर चढ़ाई कर दी और रणथम्भौर के किले को घेर लिया। हमीर की मार से शाही सेना घबड़ा उठी। हमीर आनन्द में मग्न था। किले में नाच हो रहा था। शाह ने उड़ियान को बुलाकर निशाना मारने को कहा। उडियान के निशाने से नाचती हुई पातुर गिर पड़ी। हमीर यह देखकर अत्यन्त दुखित हुआ। तब महिमाशाह ने उसका ढाढ़स बधाते हुए कहा "यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो बादशाह को मार दूं अथवा इस उडियान को ही नष्ट कर दूं"। इसके अनन्तर हमीर की आज्ञा से मगोल ने बादशाह का छत्र-भग अपने एक तीर से कर डाला। यहां हमीर के युद्ध का प्रशसात्मक वर्णन है। शाही-सेना की दुर्दशा का वर्णन बहुत ही सुन्दर है। अन्त में बादशाह की सेना भागने ही वाली† थी कि हमीर का भाई बादशाह से जा मिला। शाह ने युद्ध की पुनः तैयारी की। हमीर की कन्या ने हमीर से कहा यदि शाह मुझे मागता हो तो मुझे दे दीजिये। किन्तु हमीर को यह स्वीकार न था। युद्ध हुआ और

* इस सग्र० मे यहा से युद्ध अंश लिया गया है।

† यहीं तक का वर्णन इस सग्रह में लिया गया है।

हमीर पुनः विजयी हुआ। इस युद्ध का वर्णन भी प्रभावशाली तथा ओजस्वी है।

हमीर, विजय के आनन्द में गढ़ लौट रहा था। मार्ग में भूल से उसका निशान झुक गया। रानियों ने समझा कि बादशाह विजयी हुआ है। अतः उन्होंने अग्नि में आत्मसमर्पण कर दिया। जब हमीर लौटकर आया तो उसे अपनी भूल का दुष्परिणाम ज्ञात हुआ। यहाँ कवि ने संसार की अनित्यता का विशद वर्णन किया है। हमीर ने पुत्र को राज्य देकर स्वर्ग-गमन किया।

इसके अनन्तर उदार व्यक्तियों का वर्णन कर क्षत्रियों के उच्च आदर्श का वर्णन किया गया है। फिर ग्रंथ समाप्ति का संवत् देकर पटियालानरेश के आशीर्वाद के साथ ग्रंथ समाप्त हुआ है।

हम्मीर-हठ में कई स्थान, नाम तथा घटनाएँ बदल दी गई हैं। अन्य ग्रन्थों में महिमाशाह का प्रतिरूप गभरूशाह है किन्तु इसमें उसका नाम उडियान रखा गया है। इसीप्रकार सुर-

अन्यग्रंथो से भेद

तन के स्थान पर हमीर के भाई रणमल की कल्पना की गई है। छाड़ के राव रणधीर तथा अलाउद्दीन के युद्ध का उल्लेख तक नहीं है। सम्भवतः कवि ने अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा का परिचय देने के लिये ऐसा किया हो।

चन्द्रशेखर की रचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये भूषण के समकक्ष कवि थे। भाषा भाव तथा साहित्य की दृष्टि से इनकी रचना लाल तथा सूदन से अच्छी है। न तो इनकी रचना

आलोचना

में वह शब्दों की तड़क भड़क और न तो केवल इतिवृत्तात्मक वर्णन ही मिलते हैं। इनके वर्णन भूषण के समान आलंकारिक तथा ओजपूर्ण हैं। इन्होंने वीररस के अतिरिक्त भक्ति, शृंगार, ज्योतिष, नीति आदि विषयों पर रचना की इसलिये इनकी भाषा वीर रस

के अनुकूल न हो सकीं फिर भी इनकी भाषा में ओज पर्याप्त है। शृंगार पर इनका एक छन्द देखिये:—

> थोरी थोरी वैसवारी नवल किशोरी सबै,
> भोरी भोरी बातनि बिंहसि मुख मोरतीं।
> बसन विभूषन विराजत विमल,
> वा मदन मरोरनि तरकि तन तोरतीं।
> प्यारे पातशाह के परम अनुराग रगीं,
> चाय भरी चायल चपल दृग जोरतीं।
> काम अबला सी कलाधर की कला सी,
> चारु चंपक लतासी चपलासी चित चोरतीं। ह० ह० १२

हमीर पर काव्य रचनेवाले सभी अन्य कवियों की तरह चन्द्रशेखर ने भी अलाउद्दीन को कायर तथा साहस-हीन चित्रित करने की भूल की है:—

> जब आनन्द सरस रसपागे। निकस्यो एक मुसूषक आगे।
> खरभर सुनत भये उठि ठाढ़े। सिथिलित अंग-अम सुख गाढ़े।
> गहि कमान छाडे सर चारि। मूस मारिकै दीन्हों डारि।

यह भूल अन्य कवियों का अन्धा-अनुकरण करने से ही हुई है। एक दूसरे स्थान पर उन्होंने अलाउद्दीन का वर्णन इस प्रकार किया है—

> बाजीखुर कारनि पछारैं करै छार गढ़,
> गरद मिलावै ,जोरि जगनि जकत है।
> ल्यावै आसमान तैं पताल ते पकरि पारा,
> वारतें कढ़ावें थाह लेत न थकत हैं।
> संक न करत लंकपति सौं जुरत जङ्ग,
> जोहि के जमात जम छोभनि छकत हैं।

कालतें कराल या अलाउद्दीन पातसाह,
ताकों चोर चारों ओर रासि को सकत है।

महिमा शाह की रक्षा करने के लिये हमीर की प्रतिज्ञा देखिए:—

उवै भानु पच्छिम प्रतच्छ दिन चन्द्र प्रकासै।
उलटि गंग बरु बहै काम रति प्रीति विनासै।
तजै गौरि अरधंग अचल ध्रुव आसन चल्लै।
अचल पौन बरु होइ मेरु मन्दर-गिरि हल्लै।
सुरतरु सुखाइ लोमस मरै मीर सक सब परिहरौं।
मुख वचन वीर हम्मीर को बोलिन यह बहुरो टरौं।

मन्त्री के समझाने पर हमीर कहता है:—

धड़ नच्चै लोहू बहै, परि बोलै सिर घोल,
कटि कटि तन रन में परे, तो नहिँ देहुँ मंगोल। ६९।
सिंह-गमन सुपुरुष वचन, कदली फरै इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार। ११।

इन छन्दों में वीर रस कितना भरा हुआ है इसका अनुभव वीर-रस प्रेमी ही कर सकते हैं।

यह एक रौद्र रस का उदाहरण देखिये —

यह सुनत चढ़ी भौंहें कमान। दृग विषम बान से लिए तान।
चंचल चलाँके वेगवन्त अरु बाँके,
बंक ताकै आसमान जे कसत कीर तंग के।
मोहत असीले हेम हीरनि सजीले,
गरबीले गुन आगर फबीले अंग अंग के।
मारैं मन समर सपूती अभिलाषैं लाल,
आसैं करि लखत उमग अंग जङ्ग के।

तामें तेज लच्छी पौन पच्छी से उड़ात,
मजे कच्छीपात साह के मुलच्छी रंग रंग के।

इसमें सेना का कितना सजीव चित्रण किया गया है। अब शान्त रस का एक उदाहरण लीजिए:—

माने देव दुज सनमान • साधु सन्त हित,
सोहत पिछाने सुख जाने याम धाम को।
लाले सुत पाले प्रतिपाले या पुहुमी पर,
घाले मुख काले कै निरलि चोर चाम को।
लीने जग सुजस हमीर करि साके वीर,
कीने लोक अमर जमीले निज नाम को।
मारि अरि समर सुरेस दुख टारे आज,
फारि रविमंडल सिधारे सुरधाम को।३६२।

कवि ने हमीर की माता को वीर-माता के रूप में ही चित्रित किया है:-

तीरों ऊपर तीर सहि, सेलों ऊपर सेल।
खग्ग ऊपर खग्ग इन, रन सनमुख सुत खेल।२७६।
तिल तिल तन कटि कटि परै, तेगों मुक्ख सुवन्न।
दीधो तोहि असीस मैं, नारी गीत गुपन्न।२८१।

किन्तु कन्या के वचनों से त्याग की मात्रा झलकते हुए भी वीर-कन्या का बोध नहीं होता।

कवि ने चौपई तथा चौपाई दोनों को चौपाई नाम से ही व्यक्त करने की भूल की है:—

उठि निज निज गृह गये तुरन्त। लागे सजन सूर सावन्त।२४५।
बढ़ बढ़ि करै सूर सब वार। परीं बान गोलिन की मार।३१७।

इस प्रकार के छन्दों का इनकी रचना में बाहुल्य है।

इनकी भाषा परिष्कृत व्रजभाषा है। यद्यपि वह वीर-रस के उपयुक्त नहीं है, किन्तु इसमें कतिपय उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिसे हम वीर-रस के लिए उपयुक्त कह सकते हैं:—

भाषा

साजि चतुरङ्ग वीर रङ्ग है मतंग चढ़ि,
चलत अलाउदीन दीन अरजत हैं।
धाई धाम धाम धूम धौंसाकी धुकार धूरि,
धाराधर धावत धरा पै गरजत हैं।
पेल परी गैल मैं मतंग मतवारन की,
अड़त अड़ैल न तुरग तरजत हैं।
धावत मरल दल धूजत धरनि फन,
फुकरत फूरत फनीस लरजत हैं।११६।
पर्यौ मीर पाईं धर्यौ दृढ डोला।
द्विये जात नाहीं "कहो पास तेरे" ।६६।

इसमें 'कहो पास तेरे" प्रयोग शुद्ध साहित्यिक व्रजभाषा का नहीं है। यह ग्रामीण प्रयोग माना जाता है। साहित्य में ऐसे प्रयोग उपयुक्त नहीं होते।

इनकी रचना, कतिपय दोषों के रहते हुए भी, उच्चकोटि की है। इन्हें हम वीर रस का एक सफल कवि कह सकते हैं।

हम्मीर-हठ

भुजङ्गप्रयात छंद

दुहूँ ओर सों घोर यों तोप बाजैं। प्रलैकाल के से मनो मेघ गाजैं।
हलै मेरु डोलै मही सेस कपै। उठी धूमधारा धुजै भानु झपैं।
भई बान बंदूक की मार भारी। मनौ वारिधारा महा मेघ वारी।
उडै सोर प्याले निराले चमकैं। घटाजोट मैं दामिनी सी दमकै।
लगैं कोट मैं आनि कै जोर गोला। न पाषान टूटै कहूँ एक तोला।
जहीं साह की फौज मैं आनि लागैं। उडै केतिको केतिको दूरि भागैं।
लगै बान गोली गिरैं सूर ऐसें। गिरह खात पक्षी गिरहबाज जैसे।
परी मार ऐसी दुहूँ ओर भारी। परे साह की फौज मैं खग्गधारी।
फटे टोप कुंडी तन त्रान फूटे। करे अंगअंग नर प्रान छूटे।
उठावत एकै करै एक जंग। लुरै एक लोटैं परे अंग भंग।

दोहा

होत जुद्ध अति क्रुद्ध ह्वै, लरत सुभट रनधीर।
तँह निसंक चहुआनपति, देखत नाच हमीर।
बाजति ताल मृदंग धुनि, नाचति नटी नवीन।
लसत वीर हम्मीर तहँ, राग-रंग-रस-लीन।

कवित्त

रुचित रुचिर मीन मन्दिर मैं राच्यौ रंग,
नाचति सुगंध बार अंगना निहारी है।
मंजु मैनकासी मंजुघोषासी सरस भरी,
रंभासी अनूप रूप भूषन सँवारी है।

तालगति तानैं लेत सात सुर तीन ग्राम,
भावभरी करति अलाप सुकुमारी है।
पूरें सम पायल करति झनकारी नाच,
देखत निसङ्क या हमीर हठधारी है।

सवैया

होति दुहूँ दिसि मार भयङ्कर तोपनि लोप चहूँ करि दीनो।
नाचति बारवधू गढ पै दल बीच कुलाहल भूतनि कीनो।
ताल मृदंगन की धुनि होति सुनैं उतसाह करै मन हीनो।
वीर हमीर हिये हरपै लखि मार भयो सुलतान मलीनो।

छप्पय

तीनि ग्राम सुर सात हात आलाप राग पट।
लाग डाँट सम बिसम तान उनचास कुटि बट।
नचत बार अगना बजत मिरदंग ताल तँह।
लख्यो कोट ऊपर निहारि चहुआन राज जँह।
बैठ्यो हमीर रनधीर अति निडर सक मानै न हिय।
आलाउदीन अन्तक सरिस पातसाह मन कोप किय।

चढे नैन भृकुटी कराल मुख लाल रंग करि।
दाबि दंत फरकत अधर बलवंत क्रोध भरि।
करौं छार छन मैं पहार धरि कोट उलट्टौं।
दुवन देस दलमलौं दलनि देसनि दहपट्टौं।
मारौं हमीर पल मैं पकरि सक न यह मेरी करै।
आलाउदीन जानै न मोहि गढ गँवार गाढौ धरै।

दोहा

पातसाह अति क्रोध करि, दीन्यो हुकुम जरूर।
मुगलबेग उडियान को, हाजिर करो हुजूर।
हुकुम पाइ उडियान को, हाजिर कियो तुरन्त।
करि सलाम ठाडो भयो, दूर निकट सावत।
साह कह्यो उडियान सों, नाचत नटी निहारि।
ओट न एकौ देखिये, चोट तीर की मारि।

छप्पय

करि सलाम उडियान लई कर में कमान गहि।
प्रथम करी टकार फेरि गोसा सँवारि तहि।
लियो तीर तूनीर माहिं तीछन अति जोई।
रोदे पोक जमाइ चाप सज्जित करि जोई।
तान्यो कसीस भरि कान लगि बान बीच छाती हनी।
नाचत नारि भूमै परी चौंकि चमकि चपला मनो।

कवित्त

गुनिन गहीली गति लेति गरबीली अग,
अग दरसावति उलटि पट ओट ते।
काम अबलासी कला कोटिनि करति,
चचला सी चित्त चोरति चलति लचि आटतें।
लाग्यो बान छाती मैं अचानक विषम दग,
कौंधा सी चमकि चक चौंधा लग्यो चाट तें।
हेम की छरी सी मजु मोतिनि जरी सी,
किन्नरी सी टूटि भूमि मैं परीसी परी कोट तें।

दोहा

तरफराति तरनी गिरी, सर मारयो उडियान।
हरषि साह साबस कही, चकित भयो चहुआन।

चौपाई

हरषे पातसाह मन माहीं। कियो हमीर सोच लखि ताहीं।
प्रथम मंत्र मान्यो कछु नाहीं। हठ करि मडयो जग बृथा हीं।
भयो उदास संक कछु आनी। ऐसी बात मीर जब जानी।
आयो जहाँ तुरत मगोल। बोल्यो हाथ जोरि मृदु बोल।

मीर उवाच

महाराज राजनसिरताज। भये उदास आप केहिं काज।
तुरत लेत बदलो मैं देखौ। मरो अलाउद्दीनहि लेखौ।
कह्यौ मीर को सुन मनभायो। धीरज बहुरि भूप मन आयो।
दिवस दूसरे सोई रग। लाग्यो होन दुहूँ दिसि जंग।
पुनि हमीर गढ ऊपर आयो। सुरपति कैसो साज सजायो।
अग अग प्रति भूषन साजै। निरखत कोटि काम छवि लाजै।
उड़त चवँर चारौ दिसि ऐसे। सरदघटा रवि ऊपर जैसे।
भूप भवन बैठ्यो दरबार। दियो नाच को हुकुम उदार।
बहुरि नटी जब निरतन लागी। देखन लग्यो भूप अनुरागी।
देखत साह कोप मन कीन्ह्यो। कोट कटा करिबे मन दीन्ह्यो।
ताही समय तुरत उठि धायो। लिये कमान तीर चलि आयो।
हाजिर भयो तहाँ पुनि मीर। कहे बचन मगोल गभीर।

मीर उवाच

कहो आप उडियान सधारौं। जासो जाइ सोच मिटि सारो।
हुकुम होइ साहै तकि मारौं। छन में छत्र-भग करि डारौं।

हम्मीर उवाच-दोहा

साह न मारत काठ को, जो खेलत सतरंज।
उचित न यह जो डारिये, पातसाह प्रभु भंज।

सोरठा

छोड़ि साह के प्रान, मारि और नेरो हुकुम।
महिमा गही कमान, सुनि आयसु चहुआन की।

दोहा

हाथ जोरि हम्मीर कहँ, महिमा गही कमान।
अर्धचन्द सर साधि कै, तानी कान प्रमान।
वज्र सरिस छोर्‍यो विषम, मीर तीर परचंड।
पातसाहसिरछत्र को, दंड कियो द्वै खंड।
एक तीर सों काटि कै, छत्र दियो महि डारि।
तब हमीर हरहर हँसे, सनमुख मीर निहारि।

कवित्त

खंड ह्वै दुटूक परयो लूक सो लपकि छत्र,
हुकसी समानी हियैं साह सोक सों भरे।
जोहत जके से चौंकि चलत थके से पवै,
सुकुर; मनावत अमीर अतिहीं डरे।
आनि धरयो आगें बान सहित उठाइ हेम,
हीरन रचित गजमुकता लसैं जरे।
मानो आसमान तें नछत्रन समेत परयो,
भूमि मैं कलाधर सपूरन कला धरे।
छत्र के परत सबही की छबि छीन भई,
दीन भयो बदन अलाउदीन साह को।

पीर उठी उर में अचानक अमीरन के,
घीरज घरै को धार धूजत सिपाह को।
सहमि गये से सबै सोचत ससक कहैं,
वैर करी मालिक खुदाय सदराह को।
भयो तो दिली को पति देखत पनाह आज,
दाह मिटि गयो तो हमीर नरनाह को।

दोहा

पीर अमीरन के उठी, धीर तज्यो सुलतान।
तुरत मँगायो आप ढिग, छत्र सहित रिपुबान।
सर में बांच्यो साह तब, गह्यो बली कर अत्र।
तिय बदलें तेरो कियो, मीर भंग सिर छत्र।
महिमा मीर मँगोल मैं, कर वर गह्यो कमान।
है दुरलभ अब आप को, जियत राखिबो प्रान।

चौपाई

सर में लिख्यो मीर को जौन। बाँच्यो पातसाह जब तौन।
भयो सपेद बदन दृग झपे। डोलत दंत गात सब कपे।
करत विचार और सब ठाढ़े। खर भर परी सोच मन गाढ़े।
पीर मनाइ कहत कर जोरी। बच्यो साह साहब गति तोरी।
साह अलाउदीन सुलतान। करत विचार छोड़ि अभिमान।
जुद्ध होत बीते दिन एते। कटे कटक कहि जात न जेते।
अगनित सूर वीर मावंत। गज तुरंग औ सुतुर अनन्त।
पैदल परे भूमि में लोटैं। लगीं बान गोली की चोटैं।
तुपक तीर तोपनि की मार। बरसै मनो मेघ जलधार।
गढ़ गाढ़ो छूटब कठिनाई। नर पाथर की परी लराई।

दोहा

कोट ओट गढपति लरै, अग न आवत घाव।
दह पट्टत दल दूरि तें, चढ़त चौगुनो चाव।
कटा होत दीसत नहीं, मारे सकत न छूटि।
कोट कटक की मार में गयो सकल दल खूटि।

सवैया

मौन भये मन ही मन में सुलतान बिचारत बात अनेकौ।
जो लरिये मरिये इत तौ गढ की चढि पैयत घात न एकौ।
नाहक जात मरे सिगरे भट आवत हाथ लखात न एकौ।
लौटि चलो अपने घर कों जो भई सो भई कहि जात न एकौ।
दीरघ सोच दिलीपति के दल छीन भयो बलहीन मलीनो।
सान गई अरमान अँगे निज प्रान बचे सोइ उत्तम कीनो।
हार लई अपने शिर मानि निदान यहै करि आयस दीनो।
लै अपनो दल सग सबै उठि भाजि चल्यो सहसा भयभीनो।

कवित्त

मारे गढ चाचे हमीर चहुआन चन्न,
डारे गोल गरद मिलाइ मद मानी के।
लार्गे रेत खेत एकै पीटे लेत देत एकै,
चोटनि समेत लहे लाडिले पठानी के।
सारे हरमारे राह बसन हथ्यार डारे,
वाहन सभारे कौन भरे परेसानी के।
भाजे जात दिल्ली के अलाउद्दीनवारे दल,
जैसे मीन जाल तें परत दिसि पानी के।
भागे मीरजादे पीरजादे और अमीरजादे,
भागे खानजादे प्रान मरत बचाइ कै।

भाजि गजबाजी रथ पथ न सभारें पारें,
गोलन पै गोल सूर सहमि सकाइ कै।
भाग्यो सुलतान जान बचत न जानि वेगि,
बलित बितुंड पै बिराजि बिलखाइ कै।
जैसें लगें जंगल में ग्रीषम की आगि चलै,
भागि मृग महिष बराह बिललाइ कै।
भाजे जात रक से ससकित अमीर परें,
भौरन पै भौंर धरै धींग न रहैं थिरे।
जंगल की जार मैं पहार मैं पराइ परे,
एकै यारि घार मे उछार मारि कै परे।
कंपित करी पै साह साहब अलाउदीन,
दीन दिल बदन मलीन मन मैं खिरे।
प्रबल प्रचंड पौन पच्छिमी हमीर मारे,
बद्दल समान मुगल दल उड़े फिरे।

दोहा

भग्यो प्रबल दल संग ले, दिल्ली को सुलतान।
हरष्यो राय हमीर उर, गढ पर बजे निसान।
आइ अरज मंनिन करी, सुनिए राय हमीर।
हिन्दु धनी हद आपकी, पत राखी रघुबीर।
गयो साह दिसि आपनी, रह्यो हमारो खेत।
ऐसें सुजस सुपथ मैं, ईश्वर सन को देत।

———

रेवातट-समयो

टिप्पणियाँ

वर=(शत्रु) अपर

वर अवाज सब मिट्टि कै=अन्य सब विचारो को हटाकर।

संभलि=सुनकर।

वर आखेटक खिल्ल=भली भाति शिकार खेलता है।

पद्धर=घेरा डालकर

सब्ब=सब

मत्त=मत (राय)

मंड्यौ=शोभायमान करना, अभिभूत करना, भावार्थ—शुभ सम्मति देना।

दहगूना दल साहि=सुल्तान गोरी की सेना दशगुनी है।

सज्जि चतुरग=रथ, हाथी, घोड़ा और पैदलों वाली चतुरंगिणी सेना सजाकर।

सजीउर=हृदय में उत्साह से परिपूर्ण।

मवन मंत चुक्कौन सोइ वर मत विचारो=हम लोगों की सम्मति को भली भांति स्वीकार कीजिये। इसमें भूल मत कीजिये। इसी पर चलिये।

वल घट्यौ अप्पनौ=हम लोगों की सेना कम है।

सोचपछ्छिछलौ निहारो=जिससे पीछे पछताना पड़े।

तन सहौं लीजै मुगति=युद्ध मे मारे जाने से यद्यपि मुक्ति मिल जायेगी।

जुगति वध गोरी दूलह=उपाय रचकर गोरी को कुचलना चाहिये।

संग्राम भीरप्रथिराज वल=हे पृथ्वीराज ! युद्ध करने से हमारी सेना पर आपत्ति आने की सभावना है।

अप्प मत्ति किज्जै कलह=अतः आप युद्ध कदापि न कीजिये।
वत्त=बात
परसंग=प्रसंग, विषय
मुसक्यौ=मुसकाया
देव राव=पृथ्वीराज का सरदार
वगारी=कहा
सेन दे पॉव कसक्यौ=संकेत देकर पांव को दवाया। चुप रहने की ओर संकेत किया।
तन सहैं सहि मुकति=युद्ध में मारे जाने के साथ ही मुक्तिमिलती है।
वोल भारथ्थी वोले=महाभारत में इनका वर्णन किया गया है।
लोह अंच उड्डंत पत्त तर वर जिमि डोलै=तलवार की आंच उठते ही जो वृक्ष के पत्ते की तरह कांपने लगता है।
सुरतान चपि मुप्पा लग्यौ=बादशाह गोरी दबकर मुँह के बल गिरा था।
वानिवौ=यह स्वभाव ही है।
भर भीर=अत्यन्त आपत्ति आने पर भी
पटंतर=समानता
कढ्यौ=निकला
तार=दल का दल (श्रेणीबद्ध), ताड़ना देकर।
तत्तारिय=तातार देशवासी। मंगोल वंशी।
वै=वाले, के।
जंगलूराव=दक्षिण देश का एक राजा।
चामुंड राय=पृथ्वीराज का सरदार।
जद्दव=यादव (गुजरात के राजा)
वंभनवास विरास=जिन्होंने ब्रह्मा से अपने वास को विरासत में समझ रक्खा था।

बडगुज्जर = बडगूजर (क्षत्रियों की एक जाति)।
तथ्थे = तथैव, वैसे ही।
निभर = तेजस्वितापूर्ण, शक्तिशाली।
कित्तक = कितना, तुच्छ।
भीम = भोला भीमग (गुजरात का राजा)।
जर समूह तरवर कीनौ = जड समेत वृक्ष को उखाड फेंका अर्थात् नष्ट भ्रष्ट कर दिया।
कौरव = वह भीम कौरवों के समान दुष्ट।
जैत पँवार = धार देश का राजा
नरिन्द्र = नरेन्द्र (राजा)
लाहौर कोटगत = लाहौर के पास आने पर।
किज्जै = कीजिये
इष्ट = जिसको चाहते हैं।
भ्रत्य = भृत्य (नौकर)
सगपन = सगे सम्बन्धी।
हित = हितकारी (भला चाहने वाले)
कागज लिख दिज्जै = पत्र भेज दीजिये, बुलवा लीजिये।
सामि = सामने
अरुजु मत चित्तै नृपति = और जो कुछ राय महाराज के ध्यान में हो उसे कीजिये।
धन रहै धम्म जसु जोग ह्वै = भूमि और कोष की रक्षा होने से धर्म और यश दोनों प्राप्त होते हैं।
डिपति दीप दिन लोकपति = वह जम्बू दीप में वैसा ही प्रकाशमान रहता है जैसा सूर्य आकाश में विराजमान है।
वह वह = मोहम्मदगोरी की ओर सकेत।
रघुवशराय = बड़गूजर जाति का एक क्षत्री राजा।

हकारि उठ्यौ=गर्ज कर उठा।

वल छुट्यौ=सेना को उसके ऊपर छोड दीजिये। अर्थात् आक्रमण कर दीजिये।

गजरु सिंघ सा पुरिप=हाथियों में सिंह के समान जो व्यक्ति आ क्रान्ता बनता है, वही पुरुष है। (पराक्रमशील है)

जहाँ रु धै तहाँ सुजझै=जहा कोई रुकावट करता है वहीं उ देखता (सामना) करता है।

असम समौ जानै नहीं-असम=असमानता (बराबरी का है या नहीं समौ=अवसर, (मौका बेमौका नहीं देखता)

लज्ज पकै आलुझ्झै=वह लज्जारूपी कीचडमे फँस कर अवश्य यु करता है।

सामन्त मन्त जानै नहीं=सांवन्त लोग और कोई राय न जानते।

मरा गहै ईक मरन कौ=वीर पुरुष केवल एक ही मात्र राय जान हैं कि वे मरने के लिये सदैव प्रस्तुत रहते हैं।

मत=मात्र (केवल)।

सुरतानसेन पहले वँध्यौं=प्रथम सुल्तान की सेना को मारूँग फिर सुलतान को कैद कर लूँगा तो मुझे करण का पुत्र कहना

गोंवार=गँवार (ग्रामवासी) ग्रामीण।

राज लै मन्त न होई=केवल शोभा के लिये सलाह नहीं होती।

अंपमर छिज्जै नृपति=अपने (सावन्त लोगों के) मारे जाने राजा क्षीण हो जाता है।

कौन कारज यह जोई=अत. मरने मे कौन सी भलाई देखते हैं।

सब सेवक चहुआन=जब चौहान (पृथ्वीराज) के सभी से मारे जायगे तो देश मे भगदड फैल जायगी और किला ह लिया जायगा।

पच्छिकाम·····इकल्लै = तब अन्त में अकेला रहजाने पर स्वामी युद्ध-
भूमि में क्या काम कर सकता है, अर्थात् कुछ नहीं कर सकता।

पडित भट्ट कवि गाइना नृप सौदागिर वारहुग्र—उस समय पंडित, भाट, कवि, गाने वाले यहाँ तक कि व्यापारी भी बोझ बन जाते हैं।

गजराज सीस·····सो भलद्द = जो भ्रमर हाथी की शोभा को बढ़ाते हैं उन्हें अपने कानों से उड़ाकर क्या कभी वह शोभा पा सकता है।

"परीपोर तन······परवान" = मुझसे कुछ भूल अवश्य हुई इसका मुझे आश्चर्य और रंज है। आगे सुल्तान गोर से युद्ध करना है। अतः अब यह सलाह कीजिये। लड़ना मरना तो अवश्यम्भावी है।

तन = तनक (थोड़ा)।

परवान = आवश्यकीय।

"गजतसंग·····सुरतान" = यह निश्चित दिखलाई देता है कि पृथ्वीराज के साथ ही हम लोग युद्ध में लिप्त हो जावेंगे, क्योंकि शीघ्र ही चौहान पृथ्वीराज और सुल्तान गोरी के बीच युद्ध में कवचों व पाखरों (हाथी-घोड़ों की भूलों) पर तलवार बजने वाली है।

ग्यारह······परवान = कण्ठशोभा छन्द में ११ अक्षर होते हैं ५-६ पर यति होती है, इसमें लघु गुरु समान अक्षर होते हैं।

फिरेहय······रथे = घोड़े रथों में जुते सुन्दर भूलों में शोभायमान ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों हिरणों के शरीर में पंख कस दिये गये हैं। उसी आभा को चन्द कवि इस प्रकार वर्णन करता है मानों पृथ्वी पर सूर्य के सारथी अरुण ने ही रथ को सजाया है।

उर पुट्टिय·····अवत्तनयं = उन घोड़ों की छाती और पुट्ठे बहुत सुन्दर दिखलाई देते थे। और वे जल से पूरित खाइयों को तुरन्त

लाघ जाते थे। वे घोड़े आकाश में उड़कर चारों पैरों पर ही आ कर खड़े हो जाते थे। उनकी खुरताल से लगातार आवाज सुनाई देती रहती थी।

वरप्सर=भूलें।

अग ···घन=आगे सुन्दर सोने की घनी हमेल बंधी हुई थी।

तव चायर ····कुलटा=बाल चौंर के समान चमकदार थे, पवन के चलने से उनमें शब्द हो रहा था। इसकी उपमा कवि इस प्रकार कहते हैं कि तारों के बीच में ग्रह एकत्र हो गये हैं। तथा शनिश्चर के हृदय में सूर्य उदय हो रहा है।

उलटकर रेशमी वस्त्र (दुपट्टा)धारण करके रास्ते में भ्रमण करते हुए शोभायमान हैं। मानों जार पुरुष को देख कुलटा स्त्री उसी ओर को बढ़ती है।

मुख···चली—घोड़े के मुख की कटाने (बनावट) घूंघट के ढकने सी प्रतीत होती थी। मानो कुलवधू घूँघट निकाल कर जा रही हो।

तिनं···मनं=उनकी अधिक उपमा वर्णन ही नहीं की जा सकती। यदि बाग लगी न हो तो पवन और मन भी उसकी समता नहीं कर सकते।

नव···वाजिय=पृथ्वीराज घड़ियाल के नौ बजने पर राजमहल में उठकर चला गया और आधी रात से ऊपर हो जाने पर गौरी शाह का दूत आ पहुँचा। तब तुरन्त पृथ्वीराज को जगाया गया। जब सिंह अधिकार से बाहर होकर स्वतंत्र हो जाता है उसी प्रकार गौरीशाह को पृथ्वीराज ने माना और विचार किया। उसके आठ हज़ार हाथी और अठारह लाख घुड़सवार सेना १४ कोस पर उपस्थित हैं।

बंचि···अरिदाह=चौहान पृथ्वीराज पत्र पढ़ कर चन्द बरदाई के साथ लौट आया, मानों वीर के शरीर में मुक्ति और भोग प्राण

बन कर अकुरित हो गये हों। हिन्दुओं की सेना मे कुहराम मच गया और सब लोग अलग अलग कवच पहनने लगे और दस सहस्र मसालें प्रज्वलित हो गईं और युद्ध के बाजे बजने लगे जिससे शत्रु के हृदय जलने लगे।

वावत्तू···दरबार—राजा का वहीं छोड़कर दूत फिर लौट आया और गोरी ने चिनाब नदी पार करके अपनी सेना को ठीक किया।

पचा सजि···दरबार—नदी पार करने के लिये सुलतान ने अपनी सेना का प्रथम भाग पजा सजाकर आगे किया। तब वीर पुडीर ने सामना करने के लिये सेना को सगठित किया और ठीक ढङ्ग से स्थित करके दिल्ली दरबार में दूत भेजा।

या मारूफ···रच गढ्ढे—तब मारूफ खाँ, तातारी और खिलजी खाँ जो बड़े गम्भीर थे तख्त पर बैठकर चामर छत्र के साथ घूमकर गोल रूप में सेना को सगठित किया।

मुज्जक = तख्त

नारि···सजरत्तियाँ = भिन्न भिन्न प्रकार की तोपें नाली दार, गोर और ज़म्बूर (छोटी तोपें) सजा लीं और हाथियों की कतार को अच्छी प्रकार से ठीक किया और इनका अध्यक्ष नूरीखा हिज्जाब तथा नूर मोहम्मद को बनाया।

वजीर खा गोरी तथा खानखाना हजरति खाँ दोनों को सेना सजाकर हरव किया और वहा पर मुर्तदी के साथ रूसीखा प्रस्तुत खड़ा था।

रचि···लज्जो विना = हरावली सेना इस प्रकार थी। सब का अध्यक्ष शाहजादा था। पैदा खा व महमूद, सबेरे तक पार हो गये। मल्लोलखाँ जो सबको बहुत प्यारा था और बीस टङ्क का धनुष चढाता था और सहबाज खाँ चार तलवारें बाँधता था तथा उसके द्वारा शत्रुओं के प्राण हर लेते थे। जहागीर खाँ ससार को पकड़ने

वाला था तथा हिन्दू खाँ अत्यन्त घुमक्कड़ था। और पठानों के साथ पश्चिमी खा प्रबल हराबल को तैयार करके खड़े हो गये तथा मेलीसाँ और कजरीशाह दोनों सब सेना के निरीक्षक हुए। उस्मान खाँ और गक्खर लोग भी हरावल में आ गये। भट्टीखाँ, महनंगखाँ, ये खुरासानी शेर माने जाते थे तथा हवस खां हुआब संसार में सब से अधिक काबिल व्यक्ति था जिस पर संसार गर्व कर सकता है। उनके आगे हाथियों को अड़ा दिया और उन्हें शराब पिलाकर मस्त कर दिया।

उसके पचन हुए बिना शरीर में जो स्फूर्ति उत्पन्न होती है उसके कारण निर्भीकता से युद्ध होता है।

करितमाय••टुट्यो=गौरीशाह अनेक प्रकार से प्रबन्ध करके तीस चतुर दूतों को छोड़ देता है।

आलमखाँ, गुमानखां, तथा उजबक बिना शस्त्रों के ही छुरिया ढूँढ़कर गुप्त रूप से विचरते थे। तथा प्रचंड शरीरधारी रुस्तमखा भी वहीं था। हिन्दू सेना के ऊपर गौरीशाह प्रबल युद्ध कर रहा था और हिन्दू सेना को हटाकर वह सेना समेत चिनाब नदी से पार हो गया। यह सुनकर सूर सामन्त और पृथ्वीराज अत्यन्त क्रोध में भर गये तथा ओजस्वी वचन कहने लगे।

सामंसि•••साज—उस समय सब सामन्त आवेश में आ गये और पृथ्वीराज भी क्रोध में भर गया। तब तक चंड पुंडीर ने बड़ी वीरता से लड़कर गौरीशाह की सेना को रोका।

जहां उत्तरचौ•••चन्हाव चढ्यौ—

जहा गोरी नदी पार हुआ, वहीं चंड पुंडोर ने उसे रोका। शहाबुद्दीन गोरी ने हाथियों की भीड़ को बढ़ाया और धक्कामुक्की होने लगी।

दोनों दोनों में ऐसी तीक्ष्ण तलवारें निकलीं, मानों बादल में से करोड़ों बिजलियाँ निकल पड़ीं हों।

उस समय सेलों से ढालें छिदकर ऐसी प्रतीत होती थीं मानों बादलों को छेदकर नागिन पार हो गई हो।

म्लेच्छों के भाला मारने से घायल इधर उधर चक्कर काटते फिरते हैं मानों परेवा चक्कर काटकर अड्डी पर टूट पड़ता है।

हृदय को फोड़कर बरछी पार हो गई है, उससे उनकी शोभा नष्ट हो गई है मानो मछली के जाल में फँसने से उसमें से अपना मुँह निकाल रक्खा हो और उनके प्राण निकल गये हैं। वीरों के शरीर कट जाने से लटक पड़े हैं। वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो हार होने के भय से गेंद खेल रहे हैं।

सिर में भाला लगने से उससे मजा निकल पड़ा है। तब ऐसा प्रतीत होता है मानो कौआ भात खाता हुआ शोभायमान लगता है।

बड़े बड़े वीर और धैर्यवान मार मार कर रहे हैं और तीर मेघ की धारा की भाँति बरस रहे हैं।

उस समय पंच पुण्डीर गिर गये और चन्द पुंडीर आगे बढ़ा। इसी बीच में गोरी शाह सेना समेत चिनाब पार हो गया।

उतरि......करी—गोरी चिनाब को पार कर गया और पुण्डीर की लशकर पर बड़े बड़े घाव आ गये थे। उस समय चन्द पुंडीर ने उन पाचों भाइयों को जो पांडवों के समान पड़े थे, उठाया। उस चरित को देख कर दूत पृथ्वीराज के पास आया। उसने कहा—आपके ऊपर बादशाह गोरी आ गया है और सुल्तान अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है। श्रेष्ठ वीर और धीरजवान मारूफखां के आने से पाचों सेनाएँ एकत्र हो गई हैं। तथा लाहौर से पांच कोस पर आकर सारी म्लेच्छ सेना संगठित हो रही है।

वीर ' निधिकट=तब वीर पृथ्वीराज ने क्रोध म भरकर अत्यन्त शत्रुता व्यक्त करते हुए प्रतिज्ञा की कि 'तो मै सोमेश्वर का पुत्र हूँ जो फिर मोहम्मद गोरी को न पकड लूँ ।'

तब उसने चन्द्र व्यूह मे सेना को खडा किया । सभरि नरेश का धन्य है ! बिना सेना क भी अर्थात अति न्यून मात्रा म सेना होने के कारण युक्ति द्वारा उस गौरीशाह सुलतान को बन्धन करने का विचार किया ।

वर मगल .चलिय—श्रेष्ठ पचमी मगलवार को पृथ्वीराज ने युद्ध के लिये प्रस्थान निश्चित किया । राहुकेतु अनुकूल हुए। क्योंकि दुष्ट ग्रह के हटने पर शुभ कार्य की सभावना होती है । अष्ट चक्र मे यगिनी को रखकर, भोग के योग्य होने पर भरणी नक्षत्र के धैर्य पूर्वक आने से, गुरु और सूर्य के पचम स्थान पर होने से अनुकूल थ । तथा आठवे मगल राजा को भारी बतलाये गये थे। सूर्य के उदय होने पर शुभ घडी मे राजा हाथ मे त्रिशूल व चक्र लेकर शक्ति और बुद्धि के उपयोग द्वारा युद्ध के लिये चला ।

मूरह=सूर्य

सो रचि...चद=उस समय कवि चन्द ने यथायोग्य ऊँचे व नीचे स्वर से रचना करके कवित्त कहा जिसने उत्तम उपायों के विधान द्वारा सबको मुग्ध करके उत्तेजित कर दिया । और छन्द द्वारा रहस्य व निषेध समझाकर राजा पृथ्वीराज की वदना की । ऐसा कवि किसे अच्छा न लगेगा, अर्थात् सबने कवि चन्द को उत्तम माना ।

प्रात वछैति उर=प्रात काल ही सूर्य की चाह चकवा चक्वी करते हैं ।

प्रात:काल मनुष्य बुद्धि बल की प्राप्ति के लिये सूर्य की प्रार्थना करते हैं।

प्रात:काल ही वियोगी अपने प्रेमी से मिलने के लिये सूर्य की चाह करते हैं।

उसी प्रकार अधिक रोगी सूर्य की चाह करते हैं। भिखारी कर्ण के समान उदार व्यक्ति की प्रात:काल ही इच्छा करते हैं और सती स्त्री अपने पातिव्रत धर्म की प्रात:काल ही प्रार्थना करती है। उसी प्रकार राजा पृथ्वीराज प्रात:काल होने की उत्कट अभिलाषा करते हैं।

भय. सम्पूरय=चन्द कवि कहता है कि प्रातःकाल लालिमा फैलते ही चन्द्रमा की ज्योति मलीन पड़ गई और अंधकार के स्थान में सूर्य की ज्योति भर गई और उष्णता बढ़ने लगी। उसी प्रकार वीरों में उत्तेजना पैदा होने लगी। श्रेष्ठ बाजे बजने लगे जिसकी ध्वनि से वीरों में उत्तेजना भर गई। उनके दौड़ने से पृथ्वी काँपने लगी, कायरों में उत्साह भर गया और वीर रस से मिश्रित उनके हृदय का प्याला परिपूर्ण हो गया।

गज घट...जिमि भेवरों=हाथियों के घटे घनघना रहे हैं, वीर क्रोध में धनुष टंकार कर रहे हैं। उन्होंने हाथियों को खनखनाती हुई शृङ्खलाऐ पहना दी हैं। युद्ध भेरी बजने लगी। काका कन्ह ने उनका निरीक्षण किया, हाथियों ने मदजल की विस्तृत धारा बहा दी। भेरि को सुनकर वीरगण तुरन्त तैयार होगये, वीर वाक्य कहने लगे तथा उन्होंने सांसारिक माया की भावना को तुरन्त त्याग दिया।

उस स्थान पर पृथ्वीराज की सेना की अनोखी छटा प्रतीत होती है। ये वीर-गण दुष्ट जनों को बाँध कर टुकड़े टुकड़े कर डालने को प्रस्तुत हैं।

वीरगण कवच पहन पहनकर सज जाते हैं जिनके सामने चन्द्रमा भी तुच्छ प्रतीत होता है। उनके प्रतिबिम्ब दर्पण में ऐसे शोभा देते हैं मानों बादलों में चन्द्रमा विराजमान है।

वह सेना दल श्रेष्ठ हथियारों से युक्त होकर मार्ग पर आया और सब वीरगण क्रोध में भरे हुए थे। हस्त नक्षत्र तथा गुरुवार इस प्रकार साथ हो गये, जैसे कमल और मित्र (सूर्य) दोनों साथ साथ आ गये हैं। श्रेष्ठ वीर वेश धारण कर मानों योगीराजों की सेना आ खड़ी हुई है। उसकी उपमा कवि इस प्रकार वर्णन करता है, मानों मोह, माया और ममता छोड़कर श्रेष्ठ सेना का समूह उधर ही चला जा रहा है। जैसे शंकर, गजचर्म ओढ़े हुए हैं। उन्हीं के अनुरूप बनकर अखिल संसार स्वयं हाथियों के घेरे में पड़ गया है, तथा जैसे मस्त हाथी अपने मद को बहा देता है वैसे ही सारी सेना मोह ममता से रहित हो गई है। जैसे योगी प्रबल महत्तत्व के साथ मेल करके मुनि ईश्वर में रमण करता है वैसे ही जिस सामन्त ने वृक्ष के पत्ते के समान सांसारिक सम्बन्ध विच्छेद कर दिया है और युद्ध भूमि में कीर्त्ति करता है वही धन्य है।

क्रम...आनन्द=मुक्ति का एक मात्र मार्ग कर्म की उत्कर्षता है, उसका कहाँ तक वर्णन करें, अर्थात् कर्म मुख्य है, जब सामन्तों के मन में अनख (झुँझलाहट) होती है तब उसकी पत्थर के समान बात भी कच्ची पड़ जाती है।

जिस व्यक्ति की बाहने की शक्ति क्षीण पड़ गई है तो, मानों सूर्य को बादलों ने घेर लिया है ऐसी दशा में किस घर में बधाइयां बजती हैं? अर्थात् शत्रु के घर आनन्द मनाया जाता है।

दिप्ट ..अग=हथियारों की चमचमाहट और कान्ति से गोरीशाह की सेना का अभाग्य सा प्रतीत होता था। आई हुई रात्रि के

लौट जाने से अर्थात् निशा के व्यतीत होने से तारागणों मे धुंधलापन आ जाता है। भावार्थ यह कि गौरी की सेना मलिन पड गई थी।

हवा के योग से ध्वजा तिरछी उड रही है उसका कवि वर्णन करते हैं। मानों राजाश्रय पाकर तारों तथा चन्द्रमा दोनों का ही स्पर्श करती है। वीरों के लाल रग के बाजो के बजने से शेषनाग भयभीत न हो जाय, इसलिये उससे शब्द सुनने के चिन्ह कानों को विधाता ने मेट दिया, जिससे उसको कोई ध्वनि ही सुनाई न पड़े, नहीं तो पृथ्वी पर बड़ा भारी आघात पहुँचेगा।

अनी...घाट=चौहान और गोरी दोनों सेनाओं में हाथ के हथियारों द्वारा घाव का समिश्रण उत्पन्न होगया। चित्तौड नरेश रावल समरसिंह के बिना शत्रुओं को मजीठ के लाल रग से रगकर कौन बरबाद कर सकता है।

पवन सनल=रावल समरसिंह प्रचड पवन के समान अपनी श्रेष्ठ तलवार चलाकर शत्रु के प्राणों को नाश करता है। युद्ध-भूमि मे मारो-मारो शब्द हो रहा है और वृक्ष के पत्ते के समान शत्रुओं के सिरों को गिराता जाता है। सियारनी फें फें शब्द करती हुई हड्डियो के कङ्काल को उखाड डालती है। तलवार से सिर कट कर पडे हैं और अपने दु खों के समूह (शत्रुओं) को नष्ट करता जाता है। मेवाड़पति समरसिंह अत्यन्त प्रबलता से तलवार चला रहा है। इससे सुल्तान की सेना में धूल उड़ादी अर्थात् नष्ट भ्रष्ट करके भगा दिया। इस प्रकार सामर्थ्यशाली समरसिंह पृथ्वीराज से मिला और अपनी सेना मे वह अत्यन्त प्रबल और प्रधान दिखलाई देता था।

रावर . उप्पारि कर=रावल समरसिंह के पश्चात् जैत पँवार क्रोध म भरकर आगे बढा। उसके पीछे चामडराय तथा हुसैन खाँ

ने सजकर प्रस्थान किया। फिर दोना सेनाओं के हरावल बीच में आकर धक्कम धक्का करने लगे। पीछे की सेना ने कुछ हटकर युद्ध के लिये व्यूह रचना की। सुलतान की सेना के गजराज दूसरी पार्श्व में थे। और श्रेष्ठ वीर योद्धाओं की चतुरंगिनी सेना चारों ओर से घेर रही थी। धार के राना को धन्य है। उसने तरवार की धार से भद्दी खाँ के हाथी को काट गिराया।

छत्र...उम्भतिरख=छत्र और सिंहासन प्रदान कर जैत पवार को हरावल का प्रधान बनाया तथा छत्रपति कर दिया। उस समय चन्द्रव्यूह की रचना की, क्योंकि इस समय यहाँ दोनों राज्य एकत्र थे। उनमें से हुसेन खाँ और चड पुंडीर दोनों सब से आगे थे। मध्य भाग में श्रेष्ठ वीर रघुवंश खड़ा हुआ था। हाथियों को वीरों ने शृंखलायें (जजीरें) दे दीं और गौरी खाँ की सेना के सामने ठेल दिया, और हथनालें (हाथियों पर चलने वाली तोपें) गोर तथा जंबूरे (छोटी तोपें) बहुत सी थीं और उन वीरों ने दोनों बाहों से उठा उठाकर उन्हें हाथियों पर रक्खा।

छुट्टि ..भग्गयौ=इन तोपों की लड़ाई में आधी सेना नष्ट हो गई। इतने में दोपहर का सूर्य सिर पर आ गया। उस समय वीर लोग अपने कन्धे उठाकर आगे बढ़ते हैं और कायर लोग धूल में लिपट कर पृथ्वी में पड़ जाते हैं। दोनों सेनाओं के वीर आधी आधी घड़ी तक शस्त्रों को शस्त्रों पर रोकते हैं। उनके मन में आता है कि आगे शत्रु मिले, परन्तु उनके चित्त में कवच खटकता है क्योंकि उनके द्वारा शत्रु का बचाव हो जाता है। फिर चंदपुंडीर जो शत्रु को बात की बात में नाश करने वाला है तिरछा रुख लेकर लड़ने लगा, जैसे नई बहू के हृदय में पति के विषय में अनेक प्रकार की शंकायें उत्पन्न होती हैं,

परन्तु उसके उपस्थित हो जाने पर सब शंकायें लोप हो जाती हैं।
.मेले चाइ...जंग जुट्यौ=पृथ्वीराज चौहान बड़े उत्साह से गौरी-
. शाह से भिड़ने को आगे बढ़ा तो वह बहुत भयभीत हुआ। उस
समय उसके साथ के सैकड़ो निशान बजे और आगे आते हुए
आध आध कोस पर बहुत से नगाड़े बजते हुये मिले।

उत्तम उत्तम स्वच्छ चवर पृथ्वीराज पर झल रहे थे और स्वर्ण
जटित पीत-छत्र उसकी सेना में चमचमा रहा था। वीर गण
अपने पक्ष की सेना में उत्तेजना फैला रहे थे, तथा दोनों सेनायें
युद्ध-भूमि को अधिकृत करने के लिये तीरादि छोड़ रही थीं।
उनके सिर टूटे पड़े हैं और उनसे रक्त बह रहा है, मानों सूखी
लकड़ी में आग लगकर हवा के संयोग से बढ़ रही है।

उस युद्ध-भूमि में कबध नाच रहे थे और सिर हक हक की ध्वनि
कर रहे थे। उसे देख कर युद्ध-देवी स्तंभित सी प्रतीत होती थी।

लंबी सागे लगने से रक्त की धारा बह रही है और दोनों ओर
की सेनायें मार मार के शब्द कर रही हैं। भैरव आनन्द में नाच
रहे हैं और वीर (महादेव के गण) ताल ले रहे हैं, तथा वर्ण
वर्ण की सुन्दर अप्सरायें किनारे पर एकत्रित हो यशोगान कर
रही हैं। ऐसा भारी युद्ध हुआ कि गर्द और धुयें से सूर्य छिप
गया। गोरी और चौहान की सेनायें भयंकर युद्ध कर रही थीं।
वे वीर अपनी तेग को इतनी तेज़ी से चलाते थे कि गोल कुंडली
सी प्रतीत होती थी, मानो श्रीकृष्ण ने आकर रास-मंडल रच
दिया है।

गोरी की सेना के वीर सामन्तों के मारे जाने से उनके शरीर
ऐसे फूट पड़े हैं मानों बिजली चमक रही है। दोनों ओर के वीरों
की तीव्रधार से दोनों के धड़कटकर गिर जाते हैं और दोनों सिर
दूर जा पड़ते हैं तथा टकरा कर कड़ाके की आवाज़ करते हैं।

अत्यन्त भयंकर रक्त की धारा बहने लगी जिसमें बादल का प्रतिबिंब पड़ता हुआ। ऐसा प्रतीत होता है मानों पृथ्वी के जल में डुबकी मार रहे हैं। पृथ्वीराज क्रोध में भरकर प्रबल पराक्रम करताहुआ शोभायमान है और शहाबुद्दीन गोरी के साथ युद्ध करके रण में उसे कँपा दिया।

तेज...बार—इस युद्ध की भयकरता से वीर गोरी का तेज फीका पड़ गया, तब तातारखाँ ने उसे धीरज बँधाया और कहा कि मेरी उपस्थिति में इस समय आप के ऊपर आपत्ति आना मेरे लिये लज्जा की बात है।

रतिराज...चंद कठोर—बसंत और युवावस्था प्रबलता पूर्वक शोभायमान है। उस समय शीतकाल और बालपन दोनों का किनारा सङ्कुचित हो गया। उन्हीं के बीच-बीच में चैत्र और मद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जिन्हें देखकर उनकी उपमा कवि इस प्रकार वर्णन करते हैं—

युवावस्था के आगमन पर उसको यह वाणी सुनाई दी कि कामदेवका कार्य कभी भी प्रतिपादित होता नहीं पाया जाता। कभी आँखें कानोंके पास जाकर यह पूछती हैं कि अब तुम यह क्यों नहीं बतलाते कि (रसिकता की) बातें क्यो मनोहर प्रतीत होतीं हैं ! बालपन की शरारतें सब दूर हो गई हैं। सर्वत्र युवावस्था के ही नगाड़ेबज रहे हैं और बसत तथा युवावस्था दोनो ही अपनी सजावटें कर रहे हैं। कहीं पर उनका सुन्दर यश रंग बिरंगा रूप धारण कर शोभायमान है और स्थान स्थान पर चुपके से भागता चला आता है। ये ही दोनों (यौवन और बसंत) अनुराग से शोभायमान होकर नेत्रों में रस सलग्न कर रहे हैं। और ऐश्वर्य व यश के विस्तार से लज्जा धारण कर गंभीर बन गये हैं।

स्वच्छताव अपना सुगन्ध मे लपेटने हुये बसन्त ने पवन को सब से प्रथम भेजा, उसकी मन्दता से प्रतीत होता था कि लज्जा और सकोच की चाल भी कहीं से आकर बसत में मिल गई है। बसत के आगम पर शीत नष्ट हो गया और बादलो में जल नहीं है। हृदय मे छाडे २ कुच प्रकट हो गये हैं वे भी भय उत्पन्न करते हैं। बिना पत्ते, कली और तार के केले शोभायमान हैं और स्त्री बिना गहने के ही मनोहर प्रतीत होती है। भौंरे पख फैलाये सुन्दर गुञ्जार कर रहे हैं और और स्त्रियों की कमल रूपी आखो पर मडरा रहे हैं हटते नहीं।

यौवन और बसत की चतुरगिणी सेना सज गई और जङ्गल शोभायमान हो गया। इन सब की शैशव (बालपन) पर चढाई हो गई। कवि लोग वहाँ के सघन स्थानो और वहाँ के सौदर्य को देखकर मस्त हो जाते हैं। वह ऐसा घना था कि उस वन मे चन्द्रमा की किरणें कठिनता से प्रवेश कर सकती थीं।

लपुञ्जै···जूर्नी टटी—दोनों सेनाओं के कटु वाक्य चुभने वाले थे। वे मन मे अपने स्वामी की प्रशसा करते थे। शरीर में क्रोध भरा हुआ था और मन में सिंह का सा स्वाभिमान था। उस समय दया ओर मोह नष्ट हो गया था। हाथियो का दान (मद का जल) छूटना बन्द हो गया था, वीरता के कारण नाम अधिक प्रसिद्धि पा रहा था, धर्म मे सतोगुणी भाव की विशेषता थी। म्लेच्छ गणों की बाढ़ और कधे में रक्त सन रहा था। जो नितान्त शिथिल थे व ढाल के धक्के से ही गिरा दिये गये थे। ऐसे व्यक्ति जीवित ही मृतवत् हो रहे थे।

जो बान छोड़े जाते थे उनमे पख लगे हुये थे और श्याम, श्वेत, पीली और लाल सेनायें अत्यधिक सख्या में थीं। युद्ध-भूमि मे अत्यन्त कोलाहल हो रहा था क्योंकि हाथी क्रोध में भरे

घूम रहे थ। इसके कारण फौजें तितर बितर हो गई, तो भी बहुत से वीर मैदान में डटे हुये थे।

'हाथी को पकडो' कह कर शत्रुगण ने तलवारें निकाल ली परन्तु शाकंभरी के कान्ह को देकर बडे बडे उमराव हट जाते थे।

चारणगण हक्हक [उचित] शब्द कहते हैं, उनके नेत्र अत्यधिक लाल हो रहे हैं। वे शत्रु के अंगों को टुकडे-टुकडे करके तोल देते हैं तथा वीरता पूर्ण वचन कहते हैं। वीरगण बडी तेजी से धावे बनाते हैं और हाथियों को तीरों से पाट दिया और उनकी तेजी को कम कर दिया तो भी हाथियों ने सेना का पैल फुट कर दिया।

हाथियों के अवरुद्ध होने पर भी वे बाण उनके फूल से लगते थे, मानो सुनहली नाली में महावर डाल दिया गया हो। वीर मुँह से हाँक लगाते थे और आगे जाना चाहते थे। वे अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये अर्जुन सदृश तीर चलाने में दक्ष थे। उस युद्ध में दोनों सेनायें ऐसी फट गई जैसे कि पुराना टट्टा जार्ण होने पर टूटी सी प्रतीत होती थी।

सोलंकी · डिन्नौ मरन—राजा माधव सालंकी खिलजी खाँ के सामने जाकर युद्ध करने लगा। उस श्रेष्ठ अग्रणी वीर ने चाररस में पग कर युद्ध किया। शत्रु ने युद्ध में बु.. लगाकर अपनी तलवार दोनों हाथों से चलाई जिससे सालंकी की तलवार टूट गई। तब उसने बगल में पडी हुई कटारी निकाल ली। तब उसे आगे रोक कर भल्लमों से उसे ठेल दिया और शत्रुगण पाप मय युद्ध करने लग फिर उसे धनुष में बाँधकर बहुत घाव उसके अंग में कर दिये तब गौरी की सेना ने उसे मार डाला।

पग्ग···चढि गयो—माधव ने एकत्रित गौरी की अपार सेना को तलवार के टूट जाने पर भी मारकर उसके उत्तम हाथी घोडों को मथ डाला और मरते हुये सुसज्जित भगवान कृष्ण के दर्शन किये।

यह वीर न तो झुकने वाला था, न हटाया ही जा सकता था। और न मारा ही जा सकता था, परन्तु पानीदार तलवार को युद्ध में मीर ने खंडित कर दिया और बड़ी भारी सेना से घेर कर पीछे से थकित दशा में वार किया। ऐश्वर्य को छोड़कर बिना रनमूतीके बिना वह कभी जीता नहीं रहा अर्थात् वीरता और ऐश्वर्य सदैव उसके साथ रहे। फिर तनक तनक कर टुकडे टुकडे हो गया, परन्तु उसे सांसारिक माया कुछ भी न व्यापी और न कलंकित हुआ, इसीलिये अप्सराओं ने उसे गोदी में ले लिया, और वह देवताओं के विमान पर चढ गया।

रि पतग • पुञ्जैक वन—हट जयसिंह शत्रुओं के बीच में पडकर युद्ध रूपी अग्नि में शलभ की भांति अपने को जला देता है। जैसे नवीन पतंग को तेज वायु नष्ट भ्रष्ट कर देती है इसी प्रकार शत्रु को वह टुकडे टुकडे कर डालता है।

यदि तेल, बत्ती, अग्नि एक कर दिये जाय तो वह प्रकाश देता है अर्थात् शक्ति, साहस और शस्त्र सञ्चालन से आत्मा को दृढता आती है और वह पाँच शत्रुओं को मार गिराता है, अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद को नष्ट कर देता है। इस प्रकार युद्ध भूमि रूपी कुमारी का वरण करता है, और शत्रु रूपी पतगे को जला डालता है। इस प्रकार पृथ्वी मंडल में असुरों को जीत लेता है फिर ऐसे वीर का अन्य कौन सामना कर सकता है?

रच्चौ • जुधुञ—वीर पुंडीर चढ पुंडीर का भाई युद्ध भूमि में डट गया और सुल्तानी पारस लौट आया। वीरगण शस्त्र चमका रहे थ और तेजस्विता उनके मस्तक पर विराजमान थी। सिर के टोप पर शस्त्र पड़ने से किरचें टूटने लगीं और लोहे से लोहा लड़कर भारी जलन पैदा हो रही है मानो चन्द्रमा से रोहिणी

नक्षत्रिका आ मिली हो और उसके सिर के चार टुकड़े तारे से चमक रहे हों। वह गिर गया और फिर उठ कर शत्रुओं को कबंध ने नष्ट करना प्रारंभ कर दिया। उस समय स्वर्ग में जय-जय शब्द होने लगा और ४५ पल तक कबंध लड़ता रहा। किस भाव का लेकर वह वीर कट गया कि उसको अटल पदवी प्राप्त हुई।

दुज्जन "भारथ नयो—दुष्टों के लिये दुखदायी कूर्म वंशी पल्हन राय आत्मशोध के लिये (बदला लेने को) आगे बढ़ा। उस समय खुरसान खाँ ने सामना करके लंबी तलवार उठाकर चलाई जिससे उसका टोप टूट गया और सिर पर गिरकर उस तलवा ने सिर को अलग कर दिया जिससे कबंध उठा और वह मार मार शब्द करता हुआ नाचने लगा। तब चन्द कवि कहता ह कि उसके वीर युद्ध को देखकर ग्यारह रुद्र हँसने लगे औ नन्दीगण हा, हा, हा प्रसन्नता सूचक शब्द कहने लगे। पार्व. अचभित हो गई।

सोलंकी" बँधे धुनह—सारंग सोलंकी और खिलजी का मुकाबिला हुआ। इनमें खिलजी खाँ तो गोरी का वैतनिक नौकर था परन्तु सोलंकी चौहान का विशेष सम्बन्धी था। इसी समय कन्धों पर पैर रखते हुये काका कन्ह उत्तर की ओर लड़ने लगे। उस समय गर्जने की गूँज तथा हुँकार से पृथ्वी तथा पहाड़ों की गुफायें गुञ्जार करने लगीं। युद्ध में मरे हुये सोलंकी की जल और पुष्पदान से सब लोग पूजा करते हैं। तब कन्ह ने सब मारे गये वीरों का शोध किया। केवल वह वीर प्राप्त न हुआ।

करी मुक्ख'''अवर डुल्यो—फिर वीर गोविंद राय ने कह कर तातार खाँ का सामना किया मानो दूसरा कन्ह ही युद्ध कर रहा हो और उसने काबली हाथी के कठोर दाँतों को पकड़ कर उखाड़

फेंका। सोटे के समान प्रबल सूँड़ के टुकड़े-टुकड़े हो गये और उसके पीलवान को भी मार गिराया, तथा गीध, सिद्ध, बेताल आदि ने आकर आँखों का मांस खींच लिया। इस प्रकार श्रेष्ठ वीर ने युद्ध-भूमि में महाभारत मचा दिया और तलवारों की चमचमाहट ने तरङ्गमाला सी उठाकर चकाचौंध पैदा कर दी। इस प्रकार तातार खाँ के सामने ही उस वीर-सिंह ने हुँकार से आकाश कपा दिया।

खोलिखग्ग...धज्जां लहर—तब नृसिंह राय ने तलवार खींच कर शत्रुओं के सीस पर चलाई जिससे उनके सिर व धड़ टूट टूट कर धरती पर पड़ते हैं। पड़ते ही कड़ाके की आवाज़ होती है। उस वीर की मार से शत्रुओं के पैर भागते हुये उलझ जाते हैं! अर्थात् घबड़ाहट फैल जाती है, क्योंकि कूर्म वंशी नृसिंह राय बड़ा ही प्रबल वीर था। उसकी तलवार का दाव कभी चूकता ही न था। जिसकी झड़झड़ाहट की ध्वनि सर्वत्र सुनाई देती थी। इस प्रकार मार काट करता हुआ वीर आगे बढ़ता चला गया, किञ्चित्मात्र भी न घबड़ाया और अन्त में शरीर घायल होकर हाथी पर गिर गया। उसके गिरते ही दाहर के पुत्र चामुंड राय ने तलवारों से उसकी रक्षा की।

छुटी छदनी···सालोप थानं—रात्रि हो गई और सब अपने इच्छित स्थानों पर पहुंच गये और यात्री के धन के समान अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया। रात्रि जानकर प्रबलता से बाजे बजने लगे। और सारी पृथ्वी को अत्यन्त गहरे धुआँधार से पूरित कर दिया। सुल्तान की सेना भी पीछे लौट गई। फिर प्रातः पृथ्वीराज ने सामना करके ईरानियों की सेना को घेर लिया और राइयों में युद्ध का मोर्चा लगा दिया तथा चारों ओर दीवार सी खड़ी करदी।

जैत बंध सुकी वधुअ—लाखा, लक्ष्मण जो कि शत्रुओं की गति को रोकने वाला और जैत पँवार का भाई था मारा गया। इसे जिसने पैदा किया था, वह बड़ी भाग्यवाली थी। उस समय देवी महामाया उसने लेने के लिये झगड़ने लगी और हुँकार करने लगी। इसी समय गिद्धों के झुड ने उसे उड़ा लिया। उनसे अप्सरायें लेना चाहती थीं परन्तु नहीं पायीं। वह स्वामी अब उद्धार के लिये दूसरी ओर ही चला गया, जिससे स्वर्ग में अचभा पैदा हो गया। वह वीर न यमलोक मे गया, न शिवलोक में गया और न ब्रह्मलोक मे ही पहुँचा वरन् वह सूर्य-मडल को वेध कर पार चला गया।

उस पँवार का शरीर जर्जर होकर पृथ्वी पर पड़ा रह गया और ब्रह्मा ने उसे मोक्ष दी। और भाग्य के श्रेष्ठ अक्षरों को भी मिटा दिया और नाना प्रकार के माया जालों को छुटाकर हृदय में ईश्वर को अनुरक्त कर लिया। उसकी भलाई के लिये तुरत सरस्वती सलप के भाई लाखा के पास आई और उसके अग मे ब्रह्मा के विचारों को लिख दिया तथा वहीं बाच कर दिखा दिया। पैदा होना और मरना, दुख सहना और स्वर्ग पाना ये सब बातें अमिट हैं परन्तु तुमको ये बाते नहीं भोगनी पड़ेंगी। इस बार सुन्दर वरदान को नाश मत करो। कीर्तिरूपी वधू से गठ बधन कर लो।

राम बंध.. ललचाइ —लक्ष्मण का उत्तम सिर महादेव ने इतनी उत्सुकता से ग्रहण किया जैसे धन का दरिद्री विपुल धन-राशि देख देखकर ललचाता है।

जाम एक...मीर—एक पहर दिन चढते ही जयारों जोगी वीर युद्ध-भूमि मे झुक पडा। वह तीर के समान तेज हो कर टूट पडा और मीर को मैदान मे पकड लिया।

योगियों का राजा जघारा जागी, जो कि अत्यन्त प्रबल था युद्ध के लिए ऊचा त्रिशूल हाथ मे लेकर निकला। वह शत्रुओं को वश में करने वाला था। वह जटाधारी वेश धारण किए और नरसिंहा लिए था, भस्म लगाये श्रेष्ठ शिव की सार नाशक वृत्ति लिए हुए था। सावर-मत्र का जाप करता था, उसके शरीर से अत्यन्त गहरी शराब की गध का लपटें निकल रही थीं। अपनी सेना मे सबसे ऊँचे आसन पर था जिससे उसे सब देख सकते थे। सिर पर चन्द्रमा का चिन्ह लगाये देवताओं की भांति अमर पद से युक्त था। उसने ऐसा भारी युद्ध किया मानों राम और रावण लड रहे हों, इतना युद्ध पहले नहीं हुआ था।

सिलह सज्जि तेग उभार्यौ—जब गोरी ने सुना कि लगरीराय लगातार युद्ध में सलग्न है तो वह शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर रण-भूमि मे जाकर जोर से युद्ध करने लगा और सौ सामतों क बीच में हुँकार करता हुआ दौड पडा तब उसने देखा कि इन सामतों के बीच मे दीन (इसलामी धर्म) नष्ट होने का भय है तो युद्ध-क्षेत्र मे हाक लगाता और आतक फैलाता हुआ वह तलवार खोल कर बढता जाता था। वह हिंदुओं के भस्म, तिलक, चदन से द्वेष के कारण दीन (धार्मिक भाव) को उत्तेजित कर रहा था। फिर लगरी राय घुमड कर और शस्त्र लेकर सेना के बीच में आक्रमण करने लगा। तलवार से तलवार भिड रही थीं। कुछ बादल की कोर सी दिखलाई देती थी (विजय की आशा प्रतीत होती थी) इस प्रकार गोरी की प्रबल सेना पर आग बरसा रहा था। जैसे हनूमान ने प्राचीन काल मे लका मे आग लगाई थी।

किसी को मारा, किसी का अखाडे की मल्ल विद्या मे बरबाद किया, किसी को काट गिराया। यदि एक हाथ मे किसी प्रकार

कोई बच भी गया तो, दूसरी तलवार में वह खड़ा नहीं रह सकता था।

तेगमारि...तेग—वह तलवार चला कर अच्छों अच्छे को नष्ट कर रहा था। उसकी उपमा कवि इस प्रकार वर्णन कर रहे थे, जैसे नेत्र रूपी बाण से प्रेम का अंकुर होता है। फिर शरीर उसी के हाथ पड़ जाता है अर्थात् उसी के वश में हो जाता है। शरीर जिसके हाथ हो श्रेष्ठ वीर वही है। जिन्होंने अपने चित्त में मृत्यु निश्चित कर ली है और जन्म के बधनों को त्याग दिया है वह हाथ की वस्तु निकल जाने पर तब अपने हृदय वेग की ओर ध्यान देता है। और लगड़ा लंगरी राय अपनी तेग उठाकर युद्ध करने लगा।

लोहानौ'''राजपारि—लोहाना मद में मस्त होकर बड़े भारी बान छोड़ता है उससे जवानों के शरीर फूट कर पीठ के पार निकल जाते हैं। मानों किवाड़े लगे हुए हैं और पीछे खिड़की खोल दी है। उसने शत्रुओं को बड़े बुट्टों की तरह काटकर अनिम युद्ध को सँभाल लिया।

एक ओर से सब बड़े बड़े मीरों के हृदय फोड़ दिये और उन्हें शत्रुओं में सुमेर बना दिया। इस प्रकार गोरी के ६४ खाँ मारे गये और पृथ्वीराज की ओर से तीन राव और एक राजा युद्ध में काम आये।

मानीलोह'''तेजपति—लोहाना की तलवार को प्रसिद्ध मानकर शत्रु क्रोध में विचलित होकर उसको पकड़ लेने को सन्नद्ध हो गये। मानों सिंह के सिर पर चोट करने से तुरन्त गर्जना करके उछलता है। उसी प्रकार दोनों मीरों ने चमचमाती तलवार सिंह लोहाना के सिर पर चलाई। तो टोप टूटकर दो टूक होगये उस समय उसने चन्द्रमा की उपमा प्राप्त की। मानों सिर पर

दो शृंग पैदा होगये हैं इससे उसकी कान्ति नष्ट होगई है। और सिर दो टूक होकर ऐसे शोभायमान हैं मानों तारापति (चन्द्रमा) तेज से क्षीण होगये हैं।

परेसान ''मुष्प खान''—गोरीशाह के चौंसठ खान युद्ध में मारे गये और चौहान के तेरह सामन्त काम आये जिनके नाम चन्द कवि ने इस प्रकार कहे हैं.—

लोथ पर लोथ पड़ी हुई सेना ऐसी उलझी है कि सच्चे गणितज्ञ के बिना कोई ठीक ठीक सख्या समझ ही नहीं सकता था। गोरी की जितनी सेना लड़कर पड़ी थी उनके बीच में भूमि बाकी न थी और सर्वत्र सेना पड़ी हुई थी। जिन्होंने अजमेर की पूरी मर्यादा की रक्षा की थी। (ग्यारहवीं शताब्दी में चौहानों और मुसलमानों में युद्ध हुआ था जिसमे ८०००० मुसलमान मारे गये थे।) कनक खा और गोविन्द दोनों के शरीर आपस में लड़कर पड़े थे। ये फारिस के म्लेच्छ सब कुछ खाने वाले थे।

रघुवंश वीर पृथ्वी पर पड़ा था जिसने खधार खा गोरी को गिराया था। उसी युद्ध भूमि में जैत पँवार का कान्तिमान शरीर पड़ा था जिस धनुषधारी ने बाण से मीर को मार गिराया था। वहाँ वे जोधा जो सग्राम करके पड़े थे जिनके भय से यवनों ने हाक देना बन्द कर दिया था। और जिसने गोहन्त गोरी को काट गिराया था, भगवान नृसिंह के अंश से उत्पन्न हुआ दाहिमा पड़ा था। जिसने गसी खा को मार गिराया था और फिर गौरीशाह से युद्ध करके मारा गया था। वीर बानैत भयकर आवाज़ करता हुआ युद्ध-स्थल में पड़ा था। जिसने गोरीशाह के शाहजादे को मार डाला था।

जल्हन वीर ने जावली खा को मारकर बहुत सी सेना काट डाली और मुख्य मुख्य गोरी के सरदारों को गिराकर मारा गया। वह उस युद्ध भूमि से निकल न सका।

पालन खाँ का शरीर पडा था जिससे मालहन अत्यन्त प्रसन्न मुख था और उसके आगे से गोरी की सेना टीडी दल की भाँति भाग रही थी। वीर चौहान और सारग धनुष टकार करते हुये पडे थे जिन दोनों के तीर आकाश मे घूम रहे थ।

राव भट्टी युद्ध स्थल मे पडा था जिसने अच्छे पाँच खानों को मार गिराया था जिसके सत्य ने उसे मुक्ति के माग पर चलाया। वहीं चन्द पु डीर पडा था जिसने कर्म चन्द्रमा क समान शान्ति और उज्वलता फैलाने वाले थ। जो युद्ध भूमि में खूब रुक कर लडा था जिसका शरीर युद्ध भूमि में वज्र के समान था।

राव प्रसग के छोटे भाई का शरीर भी युद्ध भूमि मे पडा था जिसने एक क्षण मे ही मुक्ति का मार्ग पा लिया था और पृथ्वीराज की सेना से लडकर गोरीशाह के सरदार पडे हुये थे। इस प्रकार अलग-अलग प्रधान प्रधान खान मरे पडे थे।

दसहत्थी ''कोट हुवा—प्रात काल ही तत्तार खा ने दस हाथियों को गोरीशाह के सम्मुख कर दिया ताकि उसकी रक्षा करें। और शून्य वादी नास्तिक तातारियों का उसके चारो ओर व्यूह मे खडा कर दिया।

बडी नलीदार तोपें, गोर देश की तोपें तथा जॅबूरे (छोटी तोपें) और श्रेष्ठ कुहक बान चलाने वाले खड़े किये गये। इतना होने पर भी पृथ्वीराज ने उसे नष्ट करने और तोडने के लिए अपने चित्त मे प्रबल उत्सुकता की। फिर मोह और क्रोध छोड कर उत्तेजित हो उन्होंने चलने और आक्रमण करने का निश्चय किया। उस समय बड़े बडे सामन्त, शूर और श्रेष्ठ वीर जोश में आकर उठ खड़े हुए।

आधे आधे योजन (दो दो कोस) पर जो मीरों की चौकिया थीं व भाग गई और गोरी मे जा मिले। तब सामन्तों ने क्रोधित होकर सुल्तान गोरी को घेर लिया। चक्र, पाट, चौडोल, आग

फेंकने वाले अस्त्र और पचासा आदि लेकर सब वीर व्यूह रचकर युद्ध करने के लिए उत्साहित हुए।

शत्रु की ओर से खूब आग बरस रही थी, परन्तु सामन्तों ने कोई आवाज नहीं की। और गोरी के व्यूह के पीछे एकत्रित होगये। फिर श्रेष्ठ वीर युद्ध में संलग्न होकर एकबारगी आक्रमण कर शत्रु के व्यूह पर लोहा बरसाने लगे।

मेलि साह...खोले कर—हिन्दू लोग शाही सेना से जा भिड़े और अपने अपने सुन्दर शस्त्र खोल लिए तथा म्लेच्छों को मारने लगे मानों इन्द्र युद्ध कर रहा हो। हाथियों के दाँत उखाड़ लिए और उनके ऊपर चढ़ गये। बहुत से भील भी लड़ने लगे तथा बढ़कर हाथ मारने लगे। उन्होंने शत्रुओं के कंधे अलग अलग कर दिये और जिस समय कि शत्रु अपने शिविर की ओर भाग रहे थे तब वे लोग हाथों में तीर छोड़ रहे थे मानो बड़ी बड़ी बूंदों से मेघ बरस रहा हो। शस्त्रों की झड़ी लग रही थी और बड़ी तीव्रता से वे तलवार चला रहे थे। चन्द कवि कहता है कि तलवार बिजली सी चमक रही थी और शत्रुके तुरन्त दो टुकड़े कर डालते थे। दोनों एक दूसरे को मारने का प्रयत्न करते हैं, अपनी कीर्ति को फैलाते हैं, शत्रुओं को ढूंढते फिरते हैं और विजय की अभिलाषा करते हैं।

स्थान स्थान पर मनुष्य तलवारों की धार से कट रहे हैं। और घूम घूमकर जहाँ गोरी था उसी स्थान पर आक्रमण कर रहे थे। तब गोरीशाह खाली हाथ खोले फिर रहा था।

खाँ खुरसान...चतुरंग सजि—खुरासान खाँ तातारी दुष्ट चिढ़कर चौहान सेना को मार रहा था। उसको स्वामी गोरी की बात चुभ रही थी, इसलिए उसने हाथ से भाला फेंककर डाल दी। उसकी मार से हाथियों की काली पांति पैर फूट हो गई जो कि सेना के मध्य में थी। अपने को अजेय समझ कर जय की इच्छा

से युद्ध कर रहा था। इससे पृथ्वीराज के दूसरे तेरह सरदार दब गये। उस समय वह तलवार निकाल कर फिर यवना का प्रसन्न करने के लिये सामतों ने शरीरा को नष्ट करने लगा और सामन्त गण भागने लगे। तब चौहान श्रेष्ठ वीर तातारी सेना पर आपत्ति ढा रहा था और चतुरंगिणी सेना सजाकर उन पर टूट पड़ा।

परयौ रघुवर्सी...द्विज मेरी—तब रघुवंशी राम सामने का बड़ी भारी सेना पर टूट पड़ा। वह बाल अवस्था का ही था इससे उसके मित्रों का भी लज्जा जलाने लगी। उस समय बिना लज्जा के उसे इन्द्राणी ढूंढ फिरी, मानों आटा समझकर मछली उस ओर आकर्षित हुई हो। वह युद्ध रूपी नाटों में घलुआ के समान वीर शत्रु सेना पर टूट पड़ा उसकी तलवार ऐसा काट कर रही थी मानों पानी को भी जला रही है। वे वीर इधर उधर सर्वत्र मार काट कर रहे थे जिनकी उपमा नहीं हो सकती। ये विश्व कर्मा वंशी अत्यन्त कठोर और गम्भीर थे। हिन्दू लोग यवनों पर टूट कर नष्ट भ्रष्ट कर रहे थे जिनको देखकर भैरव नाद करते हुए ताता थेई ताता थेई नाच रहे थे। बड़े बड़े गृद्ध जो महा भयंकर प्रतीत होते थे आते लिए हुए थे। वे ऐसे ज्ञात होते थे मानों कमल की नाल काट कर लिए हुए शोभायमान हैं। जब जोर से तलवार चलाते हैं तो कोई कोई कट जाते हैं। गोविन्द राय अपना पराक्रम दिखा रहा था। वह युद्ध मनुष्यों का नहीं दैत्यों का सा प्रतीत होता था। निश्चय हा इन्द्र, तारकासुर और महाभारत के समान था। वीर वहना छोड़कर जोर से तलवार चलाते जाते हैं जिससे चमचमाहट पैदा होती है। इसमें पाच देवताओं [विष्णु आदि] को प्राप्त होते हैं और मारे जाने से पचतत्वों से बना शरीर छूट जाता है। मानों सिंह टूटता है और उलझ कर व शिकार मार कर अलग हो जाता

है। युद्ध की देवी और स्वामी रुद्र उसी प्रकार नाश कर रहे हैं।
घनघोर युद्ध मे बड़ी उत्कण्ठा से रुद्रादि चक्कर लगा रहे हैं मानों हजारों जीव भगट रहे हैं। अच्छे अच्छे वीरों के सिर और धड तोडते जाते हैं और राककर वर देने को उत्सुक होते हैं। फिर दोनों देवता भेरी बजाकर हर्ष प्रकट कर रहे हैं।

पच्छै भौ··देसीय तथ—सग्राम पीछे हुआ उससे पूर्व ही अप्सराएँ सोचने लगी, और रम्भा मेनका से पूछती है कि आज तू उदास क्यों है। तब मेनका उत्तर देती है आज बहुत से मेहमान आये हैं, रथ मे बैठकर उस स्थान पर ढूँढने गई परन्तु पति न मिला। इस महाभारत में लडकर बहुत से वीर पड़े हुये हैं जिन्होंने चुप चाप विजय श्री पाने के साथ स्थानों को भी प्राप्त किया है स्वर्ग लोक के मार्ग मे एक भाड़ की भीड़ जा रही है और सुस्थिर होकर वहा सब को देखा।

कहै रभ ··वरहै कही—रम्भा कहती है कि मेनका सुन, जो युद्ध मे नहीं लड़े वे ही रह गये हैं। जो शत्रु से लड़े हैं उनके लिये घर पर रथ जुतकर आ गये हैं और उन्होंने ब्रम्हा और शिव का लोक छोड़कर विष्णु लोक को घर किया अथवा सूर्य लोक वेध कर गये हैं। उस समय इन्द्र वधूटियो ने रोमाञ्चित होकर ज्यों ही तिलक किया कि वशीभूत होकर उनको वरण कर लिया। परन्तु मेरी समता का कोई नहीं था अब विधाता कब मेरावरण करेगा।

षाहुसैन फिरि पुक्करी—हुसैन खाँ घोड़े से गिर पडा और घोड़ा भी तलवार से कट गया। खाँ अत्यन्त वीरता से युद्ध करते मारा गया। मारूफखाँ और तत्तार खाँ हार कर भाग गये तब गोरी मुल्तान स्वय प्रात.काल आकर दुष्ट भावना लेकर सामना करने लगा। हाथ में चमचमाती तलवार पकड़ कर वह वीर आगे बढा और तनिक भी भयभीत न हुआ। यदि उसके पक्ष मे

बड़ी भारी हार पलट जाय तभी सुल्तान फिर युद्ध के लिये पुकार करेगा अर्थात् फिर युद्ध को आवेगा।

तब साहिब... गुज्जर गहिय—तब शहाबुद्दीन गोरी ने युद्ध के लिये सात बाण तैयार किये। पहले बाण से उस वीर ने रघुवश गोसाईं को मारा। दूसरे बाण से भट्टी भीम का गला काट दिया। तीसरे बाण से चौहान को काटने का विचार किया। कि उसने कमान फैंक कर उसे पकड़ लिया और उसका तीसरा बाणहाथ के हाथ में ही रह गया। तब तक पृथ्वीराज और गज्जर ने गोरी को पकड़ लिया।

गहि गोरी... दिवलोकपति—गोरी सुल्तान को पकड़कर हुसैन खाँ को भगा दिया और तत्तारखाँ व निसुरत्तिखाँ को परस्त कर दिया। शाही चौंर तख्त और छत्र लूट लिये उस समय पृथ्वीराज की जै जै कार होने और विजय दु दुभी बजने लगी।

हाथियों को पकड़ कर और गोरी सुल्तान को बाँधकर दिल्ली नरेश पृथ्वीराज दिल्ली को लौट गये। उस समय मनुष्य, नाग, देवता सब स्तुति करने लगे और उसके यश से द्वीप, स्वर्ग और दिक्पाल सब कान्तिमान हो गये।

समै... मध्यान—एक समय पृथ्वीराज ने प्रसन्न होकर गोरी सुलतान को छोड़ दिया था इस समय पृथ्वीराज का प्रताप ऐसा फैला हुआ था जैसा कि ग्रीष्म के दोपहर को सूर्य तपता है।

मास एक... पठ्यो सुधरि—एक महीने तीन दिन तक बादशाह गोरी को कैद में सकट सहने पड़े। जब उमराओं ने प्रार्थना की तो अरबी घोड़े दड में माँगे। उस समय नौ हजार सात से अरबी घोड़े और अट्ठाईस सफेद हाथी जो कभी युद्ध से मुड़ना जानते ही न थे, दिये। और उत्तम नये रत्न, मोती मणिक देकर मेल व सधि कर ली और पृथ्वीराज की बहुत सी खुशामद करने पर गोरी को गजनी भेज दिया।

नामानुक्रमणिका

ग्रि

घ

घा

च

चा

चि

चू

चौ

छ

छा

ज

भै

भो

म

मा

मि

मी

मु

मे